श्री गणेश स्मृति ग्रंथमाला-ग्रंथाङ्क—३०

# जैनसिद्धान्त-प्रवेशिका

## द्वितीय खंड

( श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड बीकानेर की
'जैनसिद्धान्त-प्रवेशिका' परीक्षा के लिए निर्धारित।

*श्री रतनकुमार जैन 'रत्नेश'*

प्रकाशक

श्री गणेश स्मृति ग्रन्थमाला, बीकानेर

( श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित )

प्रकाशक :

श्री गणेश स्मृति ग्रन्थमाला
( श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित )
रांगड़ी मोहल्ला, बीकानेर (राजस्थान)

●

प्रथम संस्करण– २२००
श्रावण शुक्ला १०, सं० २०३१.

●

जुलाई १९७४

●

मूल्य—तीन रुपया

●

मुद्रक —
जैन आर्ट प्रेस
( श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित )
रांगड़ी मोहल्ला, बीकानेर (राजस्थान)

# प्रकाशकीय

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की अभिवृद्धि करने के उद्देश्य से श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ ने वालकों के धार्मिक, नैतिक संस्कारों को सबल बनाने, युवा एवं प्रौढ़ वर्ग के भाई-बहिनों को क्रमवद्ध पाठ्यक्रमानुसार धार्मिक, सैद्धान्तिक ग्रन्थों के अध्ययन की अभिरुचि जाग्रत करने एवं तलस्पर्शी ज्ञान कराने के लिये श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड की स्थापना की थी।

विगतवर्षों में परीक्षा बोर्ड द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार अध्ययन करने से समाज के आबाल-वृद्ध वर्ग में धार्मिक जिज्ञासा में वृद्धि हुई है और बालकों को नैतिक संस्कार मिले हैं।

परीक्षा बोर्ड के पाठ्यक्रम को और अधिक सुरुचिपूर्ण एवं ज्ञान की विविध विधाओं से सम्पन्न बनाने तथा बालोपयोगी परीक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों में धार्मिक, नैतिक संस्कारों की शिक्षा देने वाले विशेष उपयोगी विचारों को गर्भित करने की दृष्टि से गतवर्ष बीकानेर में शिक्षा-शास्त्रियों, मर्मज्ञ विद्वानों की पं. र. मुनि श्री संपतमुनि जी म. सा., पं. र. श्री धर्मेशमुनि जी म. सा. एवं श्री पारसमुनि जी. म. सा. आदि संत-सतियां जी म. सा. के सान्निध्य में विद्वद्गोष्ठी का आयोजन किया गया था।

विद्वद्गोष्ठी ने पाठ्यक्रम निर्धारण करने के साथ-साथ जैन सिद्धान्त-परिचय, प्रवेशिका की पूर्व निर्धारित पुस्तकों में अभिनव शैली में नव-निर्माण कराने, शिक्षाप्रद विषयों

का समावेश कराने एवं मद्य-मांस आदि कुव्यसनों के प्रति ग्लानि-भाव पैदा कराने तथा इसी प्रकार के सभ्यशिष्ट जीवन की बातें समझाने के लिये उपयोगी बातों का समावेश करने का निश्चय किया था।

उक्त निर्णयानुसार श्री रतनकुमार जी 'रत्नेश' ने जैन सिद्धान्त परिचय और प्रवेशिका के पाठ्यक्रम की पुस्तकों के संपादन, लेखन में उपयोगी बातें सरल, सुबोध शैली में प्रस्तुत की हैं। बालकों को प्रश्नोत्तरों, लघुकथाओं और गीतों आदि की ओर विशेष आकर्षण होता है और उनसे मिलने वाली शिक्षा को भी वे शीघ्र ग्रहण करते हैं। इसलिये इन पुस्तकों में इन्हीं माध्यमों का विशेष ध्यान रखा गया है। पुस्तकें बालोपयोगी होने के साथ ही साधारण पाठक के लिये भी रुचिकर होंगी।

प्रस्तुत पुस्तक में जैन-सिद्धान्त प्रवेशिका परीक्षा के द्वितीय खंड के विद्यार्थियों के योग्य पाठ्य-सामग्री संकलित की गई है।

इस पुस्तक का प्रकाशन श्री हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम की निधि से जो संघ को साहित्य प्रकाशन आदि कार्यों के लिये प्राप्त हुई है, किया जा रहा है। इसके लिये मण्डल के सभी सदस्यों के आभारी हैं।

मन्त्री,

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ

गंगाशहर मोहल्ला, बीकानेर

# विषय-सूची

का समावेश कराने एवं मद्य-मांस आदि कुव्यसनों के प्रति ग्लानि-भाव पैदा कराने तथा इसी प्रकार के सभ्यशिष्ट जीवन की बातें समझाने के लिये उपयोगी बातों का समावेश करने का निश्चय किया था ।

उक्त निर्णयानुसार श्री रतनकुमार जी 'रत्नेश' ने जैन सिद्धान्त परिचय और प्रवेशिका के पाठ्यक्रम की पुस्तकों के संपादन, लेखन में उपयोगी बातें सरल, सुबोध शैली में प्रस्तुत की हैं । बालकों को प्रश्नोत्तरों, लघुकथाओं और गीतों आदि की ओर विशेष आकर्षण होता है और उनसे मिलने वाली शिक्षा को भी वे शीघ्र ग्रहण करते हैं। इसलिये इन पुस्तकों में इन्हीं माध्यमों का विशेष ध्यान रखा गया है । पुस्तकें बालोपयोगी होने के साथ ही साधारण पाठक के लिये भी रुचिकर होंगी ।

प्रस्तुत पुस्तक में जैन-सिद्धान्त प्रवेशिका परीक्षा के द्वितीय खंड के विद्यार्थियों के योग्य पाठ्य-सामग्री संकलित की गई है ।

इस पुस्तक का प्रकाशन श्री हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम की निधि से जो संघ को साहित्य प्रकाशन आदि कार्यों के लिये प्राप्त हुई है, किया जा रहा है । इसके लिये मण्डल के सभी सदस्यों के आभारी हैं ।

मन्त्री,

**श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ**

रांगड़ी मोहल्ला, बीकानेर

# विषय-सूची

# जैनसिद्धान्त-प्रवेशिका

## द्वितीय खंड

# जैन सिद्धान्त प्रवेशिका

## द्वितीय खण्ड

### प्रार्थना

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर,
शिशुगण की अब पूरो आश ।
ज्ञान-भानु का उदय करो अब,
मिथ्या-तम का होय विनाश ।
जीवों की हम करुणा पालें,
झूठ वचन नहीं कहें कदा ।
चोरी कबहुं न करिहैं स्वामी,
ब्रह्मचर्य - व्रत रखें सदा ।
तृष्णा-लोभ बढ़े न हमारे,
तोष-सुधा नित पिया करें ।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा,
उसकी सेवा किया करें ।

दूर भगावें बुरी रीतियां,
सुखद रीति का करें प्रचार।
मेल-मिलाप वढ़ावें हम सव,
धर्म-नीति का करें विचार।
सुख-दुख में हम समता धारें,
रहें अटल जिमि सदा अचल।
न्याय मार्ग को लेश न त्यागें,
वृद्धि करें नित आतमवल।
अष्ट कर्म जो दुःख हेतु हैं,
उनके क्षय का करें उपाय।
नाम आपका जपें निरन्तर,
विघ्न शोक सब ही टल जाय।
हाथ जोड़ कर शीश नवावें,
वालक जन सब खड़े खड़े।
आशाएं सब पूर्ण करो प्रभु,
चरण-शरण में आन पड़े।

❀ श्री वीतरागाय नमः ❀

# श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र

सामायिक की तरह प्रतिक्रमण भी आत्म-शुद्धि का एक मुख्य अंग है । प्रतिक्रमण के द्वारा आत्मा को अशुभ भावों से हटा कर शुभ भावों की तरफ ले जाया जाता है । जानबूझ कर या अनजान में अपने द्वारा किये गये पापों की आलोचना करना और फिर से नहीं करने की प्रतिज्ञा करना प्रतिक्रमण कहलाता है । 'प्रतिक्रमण' शब्द का छोटा-सा अर्थ 'पीछे हटना' भी होता है, अर्थात् अपने पाप कर्मों से पीछे हटने को प्रतिक्रमण कहते हैं । प्रतिक्रमण दो बार किया जाता है । एक सुबह और एक शाम । सुबह सूर्योदय से पूर्व जो प्रतिक्रमण किया जाता है उसे राइसी यानी रात्रि सम्बन्धी प्रतिक्रमण कहते हैं और जो शाम को सूर्यास्त के बाद किया जाता है, उसे देवसी यानी दिन सम्बन्धी प्रतिक्रमण कहते हैं। सुबह के प्रतिक्रमण में रात के पापों की आलोचना की जाती है और शाम के प्रतिक्रमण में दिन के पापों की ।

प्रतिक्रमण के दो भेद होते हैं— एक द्रव्य-प्रतिक्रमण और दूसरा भाव-प्रतिक्रमण। अपने दोषों की पाठों से शब्द रूप आलोचना कर लेना और दोष शुद्धि कर कुछ भी विचार नहीं करना द्रव्य-प्रतिक्रमण कहलाता है । इस से आत्मा की शुद्धि नहीं होती किन्तु आत्म-वंचना होती है । जैसे कुम्हार के बरतनों को बार-बार फोड़ कर माफी मांगना व्यर्थ है, वैसे ही यह द्रव्य-प्रतिक्रमण भी भाव

प्रतिक्रमण के बिना सारहीन होता है । प्रतिक्रमण में अपने दैनिक दोषों की आलोचना करना और फिर उन दोषों का दुबारा सेवन नहीं करना भाव-प्रतिक्रमण कहलाता है।

प्रतिक्रमण का दूसरा नाम 'आवश्यक सूत्र' भी है। श्रावक के लिये यह अवश्य करने योग्य है, अतः इसे आवश्यक सूत्र कहते हैं। इसके ६ प्रकार हैं— १. सामायिक, २. चतुर्विंशति स्तव, ३. वन्दना, ४. प्रतिक्रमण, ५. काउसग्ग (ध्यान) और ६. पच्चक्खाण के नाम से कहे जाते हैं। इन छहों आवश्यकों की शुद्ध भाव से जो प्रतिदिन आराधना करता है वह पाप-भार से हलका होकर शीघ्र ही संसार-सागर को पार कर लेता है । इसके आचरण से कोई भी आत्मा अपने आप को निर्मल बना सकती है।

## इच्छामि णं भंते का पाठ

**इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे देवसियं पडिक्कमणं ठाएमि, देवसियणाणदंसणचरित्ताचरित्ततवअइयारचिंतणत्थं करेमि काउस्सग्गं ॥**

| **मूल शब्द-** | **अर्थ** |
|---|---|
| इच्छामि— | मैं इच्छा करता हूं। |
| णं— | (यह अव्यय है, वाक्य अलंकार में आता है) |

| मूल शब्द | अर्थ |
|---|---|
| भंते— | हे पूज्य ! हे भगवन् ! |
| तुब्भेहिं— | आपकी । |
| अब्भणुण्णाए समाणे— | आज्ञा होने पर । |
| देवसियं पडिक्कमणं— | दिन सम्बन्धी प्रतिक्रमण को । |
| ठाएमि— | करता हूँ । |
| देवसिय— | दिवस सम्बन्धी । |
| णाण दंसण— | ज्ञान, दर्शन (श्रद्धान) |
| चरित्ताचरित्त— | देशव्रत (श्रावक धर्म) |
| तव— | तप (इनके) |
| अइयार— | अतिचारों (दोषों) का । |
| चिंतणत्थं— | चिन्तन करने के लिए । |
| करेमि— | करता हूँ । |
| काउसग्गं— | कायोत्सर्ग को । |

भावार्थ—हे भगवन् ! मैं आपकी आज्ञा होने पर दिन में लगे हुए दोषों से निवृत्त होना चाहता हूं। दिन में जो ज्ञान, दर्शन, देशव्रत तथा तप में अतिचार लगे हों, उनका चिन्तन करने के लिये कायोत्सर्ग करता हूं ।

## प्रश्नोत्तर

प्र०—अतिचार किसे कहते हैं ?

उ०—प्रमाद और अविवेक आदि से धर्म में कुछ दोष लगाना अतिचार है। पूरा दोष लगा देना अनाचार है, जिस से कि पूरा व्रत भंग हो जाता है।

प्र०—अतिचारों का प्रायश्चित्त क्या है ?

उ०— मन्द अतिचारों का प्रायश्चित्त 'मिच्छामि दुक्कडं' हार्दिक पश्चात्ताप है। मध्यम और तीव्र अतिचारों का प्रायश्चित्त 'नवकारसी' आदि पच्चक्खाण लेना है। अनाचार का प्रायश्चित्त पुनः व्रत ग्रहण करना है।

प्र०—कायोत्सर्ग किसे कहते हैं ?

उ०—अज्ञान, मिथ्यात्व, अव्रत आदि की सामान्य शुद्धि के लिये अथवा अनजान में लगे हुए अतिचारों की शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त के रूप में नियत कुछ समय तक देह की ममता छोड़ कर तीर्थंकरों ( भगवान ) का ध्यान लगाना कायोत्सर्ग है।
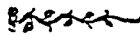
## इच्छामि ठामि का पाठ

***इच्छामि ठाइउं काउस्सग्गं जो मे देवसिओ अइयारो कओ, काइओ, वाइओ, माणसिओ, उस्सुत्तो, उम्मग्गो, अकप्पो, अकरणिज्जो, दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ, अणायारो अणिच्छिअव्वो, असावगपाउग्गो, नाणे तह दंसणे, चरित्ताचरित्ते, सुए, सामाइए, तिण्हं गुत्तीणं, चउण्हं कसायाणं, पंचण्हमणुव्वयाणं,**

---

* कायोत्सर्ग के पहले 'इच्छामि ठाइउं काउस्सग्गं' और कायोत्सर्ग में 'इच्छामि आलोउं' तथा अन्य स्थानों पर 'इच्छामि पडिक्कमिउं' बोलना चाहिये।

तिण्हंगुणव्वयाणं, चउण्हं सिक्खावयाणं, बारसविहस्स सावगधम्मस्स, जं खंडियं, जं विराहियं तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

| मूल शब्द | अर्थ |
| --- | --- |
| इच्छामि ठाइउं— | मैं करने की इच्छा करता हूं । |
| काउस्सग्गं— | एक स्थान में स्थिर रहने रूप कायोत्सर्ग को । |
| जो मे— | जो मैंने । |
| देवसियो— | दिन सम्बन्धी । |
| अइयारो कओ— | अतिचार ( दोष ) किया हो । |
| काइओ— | काया सम्बन्धी । |
| वाइओ— | वचन सम्बन्धी । |
| माणसिओ— | मन सम्बन्धी । |
| उस्सुत्तो— | सूत्र-विपरीत कथन किया हो । |
| उम्मग्गो— | उन्मार्ग ( जैन मार्ग से विपरीत ) का कथन किया हो । |
| अकप्पो— | अकल्पनीय ( नहीं कल्पने योग्य ) |
| अकरणिज्जो— | नहीं करने योग्य कार्य किया हो । |
| दुज्झाओ— | दुष्ट ध्यान किया हो । |
| दुव्विचिंतिओ— | दुष्ट चिन्तन किया हो । |
| अणायारो— | अनाचार का सेवन किया हो— नियमों का सर्वथा भंग किया हो । |
| अणिच्छिअव्वो— | इच्छा नहीं करने योग्य पदार्थ की इच्छा की हो । |

| मूल शब्द | अर्थ |
| --- | --- |
| असावग पाउग्गो— | श्रावकवृत्ति से विरुद्ध काम किया हो। |
| नाणे— | ज्ञान में। |
| तह— | तथा। |
| दंसणे— | दर्शन में। |
| चरित्ताचरित्ते— | देशव्रत ( श्रावकव्रत ) में |
| सुए— | सूत्र-सिद्धान्त में। |
| सामाइए— | समताभाव रूप सामायिक में। |
| तिण्हं गुत्तीणं— | तीन गुप्ति ( मन, वचन, काया वश में रखना ) की। |
| चउण्हं कसायाणं— | चार कषाय ( क्रोध, मान, माया, लोभ ) की। |
| पंचण्हमणुव्वयाणं— | पांच अणुव्रत ( स्थूल हिंसा का त्याग, स्थूल मृषावाद-असत्य का त्याग, स्थूल अदत्तादान-चोरी का त्याग, स्वदार-सन्तोष परदार-विवर्जन रूप मैथुन सेवन का त्याग, परिग्रह परिमाण ) की। |
| तिण्हं गुणव्वयाणं— | तीन गुणव्रत ( दिग्व्रत, उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत, अनर्थदण्ड त्याग व्रत) की। |
| चउण्हं सिक्खावयाणं— | चार शिक्षाव्रत ( सामायिक, देशावकाशिक व्रत, पौषधोपवास व्रत, अतिथि संविभाग व्रत ) की। |
| बारसविहस्स— | इस प्रकार बारह प्रकार के। |
| सावगधम्मस्स— | श्रावक-धर्म की। |
| जं खंडियं— | जो देश से खंडना की हो। |
| जं विराहियं— | जो सर्वथा विराधना की हो। |

**शब्द** **अर्थ**

तस्स मिच्छामि दुक्कडं—मेरे वे सब पाप निष्फल हों।

भावार्थ— मैं स्थिरचित्त होकर कायोत्सर्ग करने की इच्छा करता हूं। मैंने मन, वचन, काया से जो कोई अतिचार किया हो, सूत्र विरुद्ध भाषण किया हो, जैन मार्ग से प्रतिकूल आचरण किया हो, अकल्पनीय काम किया हो, नहीं करने योग्य काम किया हो, आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान ध्याया हो, मेरी आत्मा में दुष्ट विचार उत्पन्न हुए हों, नियमों का सर्वथा भंग किया हो, अयोग्य वस्तु की इच्छा की हो, श्रावक धर्म से विपरीत काम किया हो, ज्ञान, दर्शन, देशव्रत, सूत्र तथा सामायिक विषयक अतिचार सेवन किया हो, मन, वचन, काया को वश में न रखा हो, क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों का दमन न किया हो, पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, इस प्रकार श्रावक के बारह व्रतों का देश से खंडन किया हो तथा सर्व देश से विराधना की हो तो इससे उत्पन्न हुए मेरे सब पाप निष्फल हों।

## प्रश्नोत्तर

प्र०—अणुव्रत किसे कहते हैं ?

उ०—जो महाव्रतों की अपेक्षा छोटे हों। अणु अर्थात् छोटे।

प्र०—गुणव्रत किसे कहते हैं ?

उ०—जो अणुव्रतों को लाभ पहुंचाते हों। गुण अर्थात् लाभ।

प्र०—शिक्षाव्रत किसे कहते हैं ?

उ०—जो बारंबार शिक्षा अर्थात् अभ्यास करने योग्य हो।

# ज्ञान के अतिचारों का पाठ

आगमे तिविहे पण्णत्ते, तंजहा—सुत्तागमे, अत्थागमे, तदुभयागमे, इस तरह तीन प्रकार आगमरूप ज्ञान के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं जं वाइद्धं, वच्चामेलियं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीणं, घोसहीणं, सुट्ठुदिण्णं, दुट्ठुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, असज्झाए सज्झाइयं, सज्झाए, न सज्झाइयं, भणते गुणते विचारते ज्ञान और ज्ञानवंत पुरुषों की अविनय आशातना की हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

| शब्द | अर्थ |
|---|---|
| आगमे— | आगम। |
| तिविहे— | तीन प्रकार का। |
| पण्णत्ते— | कहा गया है। |
| तंजहा— | जैसा कि। |
| सुत्तागमे— | सूत्रागम—मूलपाठ रूप आगम। |
| अत्थागमे— | अर्थरूप आगम। |
| तदुभयागमे— | मूल और अर्थ इन दोनों रूप आगम। |
| जं— | जो। |
| वाइद्धं— | सूत्र के अक्षर उलट-पलट पढ़े हों। |

| | |
|---|---|
| वच्चामेलियं— | *एक ही शास्त्र में अलग अलग स्थानों पर आये हुए समान अर्थ वाले पाठों को एक स्थान पर लाकर पढ़ा हो अथवा अस्थान में विराम लिया हो या अपनी बुद्धि से शास्त्र के समान सूत्र बना कर आचाराङ्ग आदि सूत्र में डाल कर पढ़े हों। |
| हीणक्खरं— | हीन अक्षर युक्त पढ़ा हो। |
| अच्चक्खरं— | अधिक अक्षर युक्त पढ़ा हो। |
| पयहीणं — | पदहीन पढ़ा हो। |
| विणयहीणं— | विनय-रहित पढ़ा हो। |
| जोगहीणं— | योगहीन (मन, वचन, काया इन तीनों योगों की एकाग्रता से रहित) पढ़ा हो। |
| घोसहीणं— | उदात्त[1] आदि स्वर पढ़ा हो। |
| सुट्ठुदिण्णं[2] — | शिष्य में शास्त्र ग्रहण करने की जितनी शक्ति, हो उससे न्यूनाधिक पढ़ाया हो। |

* अनुयोगद्वार सूत्र, सूत्र १३ मलधारी श्री हेमचन्द्रसूरिकृत टीका के अनुसार यह अर्थ है।

1. स्वर के तीन भेद हैं—उदात्त, अनुदात्त, स्वरित।
'उच्चैरुपलभ्यमान उदात्तः, नीचैरनुदात्तः, समवृत्या स्वरितः।

अर्थात्—ऊंचे स्थान से बोले जाने वाला उदात्त और नीचे स्थान से बोले जाने वाला अनुदात्त तथा समान-स्थान से बोले जाने वाला स्वरित स्वर कहलाता है।

जो स्वर जिस स्थान से बोला जाना चाहिये, उसको उस स्थान से न बोलना 'घोषहीन' अतिचार है।

दुट्ठुपडिच्छियं— आगम को बुरे भाव से ग्रहण किया
अकाले कओ सज्झाओ–अकाल में स्वाध्याय की हो।
काले न कओ सज्झाओ–काल में स्वाध्याय न किया हो।
असज्झाए सज्झाइयं–अस्वाध्याय काल में स्वाध्याय किया ह
सज्झाए न सज्झाइयं–स्वाध्याय काल में स्वाध्याय न किया ह
तस्स— उससे उत्पन्न हुआ।

भावार्थ—मूल पाठ रूप, अर्थरूप और मूलपाठ-अर्थ रूप इस तरह तीन प्रकार के आगम-ज्ञान के विषय में ज कोई अतिचार लगा हो तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ यदि सूत्र के अक्षर उलट-पलट पढ़े हों, एक ही शास्त्र मे अन्यान्य स्थानों पर दिये गये एकार्थक सूत्रों को एक स्थान पर लाकर पढ़ा हो अथवा अस्थान में विराम लिया हो या आचाराङ्गादि सूत्रों में स्वमति-चर्चित सदृश सूत्र बनाकर प्रक्षेप कर पढ़े हों, हीनाधिक अक्षर पढ़े हों, कहीं पद हीनाधिक पढ़ा हो, उदात्तादि स्वर रहित पढ़ा हो, शक्ति से अधिक पढ़ाया हो या पढ़ा हो, आगम को बुरे भाव से ग्रहण किया हो, अकाल में स्वाध्याय किया हो, काल में स्वाध्याय न किया हो, अस्वाध्याय के समय स्वाध्याय किया हो, स्वाध्याय के समय स्वाध्याय न किया हो तथा पढ़ते समय, मनन करते समय, विचारते समय ज्ञान तथा ज्ञानवन्त पुरुषों की अविनय आशातना की हो तो मेरा वह सब पाप निष्फल हो।

## प्रश्नोत्तर

**प्र०—आगम किसे कहते हैं ?**

उ०—सर्वज्ञ-कथित पूर्ण सिद्धान्त को, जिससे जीवादि नव तत्त्वों का सम्यग्ज्ञान हो, आगम कहते हैं।

प्र०—सूत्रागम किसे कहते हैं ?

उ०—तीर्थंकरों ने अपने श्रीमुख से जो भाव कहे, उन्हें अपने कानों से सुन कर गणधरों ने जिन आचारांग आदि आगमों की रचना की, उस शब्दरूप आगम को सूत्रागम कहते हैं।

प्र०—अर्थागम किसे कहते हैं ?

उ०—तीर्थंकरों ने अपने श्रीमुख से जो भाव प्रकट किये, उस भावरूप आगम को अर्थागम कहते हैं।

## दर्शन सम्यक्त्व का पाठ

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवाए सुसाहुणो गुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहियं ॥१॥
परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि।
वावण्णकुदंसणवज्जणा य, सम्मत्तसद्दहणा ॥२॥

इअ सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा ते अलाउं—शंका, कंखा, वितिगिच्छा, परपासंडपसंसा, परपासंडसंथवो इस प्रकार श्री समकितरत्न पदार्थ के विषय जो कोई

अतिचार लगा हो तो आलोउं— १. वीतर
वचन में शंका की हो, २. परदर्शन की आः
की हो, ३. धर्म के फल में सन्देह किया हो,
परपाखण्डी को प्रशंसा की हो, ५. परपाखण्डी
परिचय किया हो । मेरे सम्यक्त्वरूप रत्न
मिथ्यात्वरूपी रज मैल लगा हो तो तस्स मिच्छा
दुक्कडं ।

| शब्द | अर्थ |
|---|---|
| अरिहंतो— | अरिहंत भगवान् । |
| मह— | मेरे । |
| देवो— | देव है । |
| जावज्जीवाए— | जीवन पर्यन्त । |
| सुसाहुणो— | उत्तम ( निर्ग्रन्थ ) साधु । |
| गुरुणो— | गुरु है । |
| जिणपण्णत्तं— | जिनेन्द्र कथित । |
| तत्तं— | तत्त्व ( धर्म ) है । |
| इअ— | इस प्रकार । |
| सम्मत्तं— | सम्यक्त्व । |
| मए— | मैंने । |
| गहियं— | ग्रहण किया है । |
| परमत्थसंथवोवा— | जीवादि नव पदार्थों का सम्यग्ज्ञान । |
| सुदिट्ठपरमत्थ-सेवणा वावि | जिन्होंने भली प्रकार जीवादि तत्त्वों को जान लिया है, उनकी सेवा तथा गुण कीर्तन करने रूप । |

| | |
|---|---|
| वावण्ण कुदंसण-वज्जणा य | तथा सम्यक्त्व के भ्रष्ट और मिथ्या-दृष्टि जीवों की संगति त्याग करने रूप। |
| सम्मत्तसद्दहणा— | सम्यक्त्व पर श्रद्धा बनी रहे । |
| इअ— | इस प्रकार । |
| सम्मत्तस्स— | सम्यक्त्व के । |
| पंच— | पांच । |
| अइयारा— | अतिचार । |
| पेयाला— | प्रधान । |
| जाणियव्वा— | जानना चाहिए, किन्तु । |
| न समायरियव्वा— | आचरण नही करना चाहिये । |
| तं जहा— | वे अतिचार निम्न प्रकार से हैं । |
| ते आलोउं— | उनकी आलोचना करता हूं । |
| संका— | वीतराग के वचन में शंका की हो । |
| कंखा— | जो मार्ग वीतराग कथित नहीं है, उसकी कांक्षा-चाहना की हो । |
| वतिगिच्छा— | धर्म के फल में सन्देह किया हो या त्यागी महात्माओं के वस्त्र, पात्र, शरीर आदि उनकी त्यागवृत्ति के कारण मलिन देख कर घृणा की हो । |
| परपासंडपसंसा— | पर-पाखण्डो ( अन्यतीर्थी ) की प्रशंसा की हो । |
| परपासंडसंथवो— | पर-पाखण्डो का परिचय किया हो । |

भावार्थ— जीवन-पर्यन्त मेरे अरिहंत तो देव हैं, निर्ग्रन्थ गुरु हैं तथा वीतराग कथित धर्म है, इस प्रकार मैंने सम्यक्त्व को ग्रहण किया है । मुझको जीवादि पदार्थों

का परिचय हो, भली प्रकार जीवादि तत्त्वों को तथा सिद्धान्त के रहस्य को जानने वाले साधुओं की सेवा प्राप्त हो, सम्यक्त्व से भ्रष्ट तथा मिथ्यात्वी जीवों की संगति कदापि न हो, ऐसी सम्यक्त्व के विषय में मेरी श्रद्धा बनी रहे। यदि मैंने वीतराग के वचन में शंका की हो, जो धर्म वीतराग से कथित नही है उसकी चाहना की हो, धर्म के फल में सन्देह किया हो, या साधु—साध्वी आदि महात्माओं के वस्त्र, पात्र, शरीर आदि को मलिन देख कर घृणा की हो, परपाखण्डी की प्रभावना देख कर उसकी प्रशंसा की हो तथा परपाखण्डी से परिचय किया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। मेरा वह सब पाप निष्फल हो।

## प्रश्नोत्तर

प्र०—सम्यग्दर्शन किसे कहते ?

उ०—मिथ्यात्व का अभाव- शुद्ध दृष्टि या श्रद्धा होना सम्यग्दर्शन है।

प्र०—सम्यग्दर्शन की विशेषता क्या है ?

उ०—सम्यग्दर्शन के अभाव में जीव को मुक्ति नहीं हो सकती है। सम्यग्दर्शन से जीव का संसार सीमित हो जाता है। सद्धा परम दुल्लहा है, कदाचित् सम्यग्ज्ञान सुनने को मिल सकता है, परंतु उस पर श्रद्धा होना परम दुर्लभ है। जिसे सम्यग्दर्शन (श्रद्धा) नहीं है, उसका ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान नहीं होता है।

प्र०—मिथ्यात्वियों की संगति या परिचय क्यों नहीं करना चाहिये ?

उ०—जो ज्ञानादि में परिपक्व न हों, उनको मिथ्यात्वियों की संगति या परिचय से बचना चाहिये। उनकी संगति करने पर वे दूसरों को भी मिथ्यादृष्टि बनाते हैं।

प्र०—जिन-वचन में शंका क्यों होती है? उसे कैसे दूर करना चाहिये?

उ०—श्री जिन-वचन में कई स्थानों पर सूक्ष्म तत्त्वों का विवेचन हुआ है, कई स्थानों पर नय और निक्षेप के आधार पर वर्णन हुआ है। वह स्थूल बुद्धि से समझ में न आने के कारण शंका हो सकती है। तब उनका केवलज्ञान और वीतराग दशा का विचार कर तथा अपनी मंद बुद्धि समझ कर ऐसी शंका दूर करनी चाहिये।

प्र०—क्या जिज्ञासा-रूप शंका अतिचार है?

उ०—नहीं। लेकिन उसका भी ज्ञानियों से शीघ्र समाधान कर लेना चाहिये। अन्यथा वह भी अतिचार रूप शंका बन सकती है।

# बारहव्रतों के अतिचार

**पहला स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत**—के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं—(१) रोष वश गाढ़ा बंधन बांधा हो, (२) गाढ़ा घाव घाला हो, (३) अव-

यव (चाम आदि) का छेद किया हो, (४) अधिक भार भरा हो, (५) भात-पानी का विच्छेदन किया हो, जो मे देवसियो[1] अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं अर्थात् जो मैंने दिवस सम्बन्धी अतिचार किया हो तो उससे उत्पन्न हुआ मेरा पाप निष्फल हो ।

**दूसरा स्थूल मृषावाद विरमण व्रत**— के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं – (१) सहसाकार से किसी के प्रति कूडा आल (झूठा दोष) दिया हो, (२) एकान्त में गुप्त बातचीत करते हुए व्यक्तियों पर झूठा आरोप लगाया हो, (३) अपनी स्त्री के मर्म (गुप्त बात) प्रकाशित किये हों. (४) मृषा (झूठा) उपदेश दिया हो, (५) झूठा लेख लिखा हो इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

**तीसरा स्थूल अदात्तादान विरमण व्रत**— के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं—(१) चोर की चुराई हुई वस्तु ली हो, (२) चोर को सहायता दी हो, (३) राज्य-विरुद्ध काम किया हो, (४) कूड़ा तोल, कूड़ा माप किया हो, (५) वस्तु में भेल-सम्भेल की हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

---

१. प्रतिदिन शाम के प्रतिक्रमण मे 'देवसियो', सुबह के प्रतिक्रमण में 'राईओ', पाक्षिक (पक्खी के) प्रतिक्रमण में 'पक्खीओ', चौमासी प्रतिक्रमण में 'चउम्मासिओ' और संवत्सरी प्रतिक्रमण में 'संवच्छरिओ' बोलना चाहिये ।

**चौथा स्थूल*** **स्वदार-संतोष परदारविवर्जन रूप मैथुन विरमण व्रत**—के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं—(१) इत्तरियपरिग्गहिया से गमन किया हो, (२) अपरिग्गहिया से गमन किया हो, (३) अनंगक्रीड़ा की हो, (४) पराये का विवाह, नाता कराया हो, (५) कामभोग की तीव्र अभिलाषा की हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

**पांचवां स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत**— के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं—(१) खेत्तवत्थु का परिमाण अतिक्रमण (उल्लंघन) किया हो, (२) हिरण्य सुवर्ण का परिमाण अतिक्रमण किया हो, (३) धन-धान्य का परिमाण अतिक्रमण किया हो, (४) दोपद-चोपद का

---

* स्त्री को 'स्वपतिसंतोष परपुरुष विवर्जन रूप' बोलना चाहिये।

जहां जहां 'स्त्री' शब्द आया है, वहां वहां स्त्रियों को पुरुष' शब्द बोलना और समझना चाहिये। क्योंकि पुरुष का त्याग करना स्त्री के लिये और स्त्री का त्याग करना पुरुष के लिये मैथुन-विरमण व्रत कहलाता है।

अपरिग्गहिया— अपरिगृहीता के साथ गमन किया हो, ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये। स्त्री को इत्तरियपरिग्गहिय-इत्वरपरिगृहीत (थोड़े काल के लिये पतिरूप से स्वीकार किया हुआ) और अपरिग्गहिय-अपरिगृहीत (पतिरूप से स्वीकार नहीं किए हुए जार वगैरह) पुरुष से गमन किया हो, ऐसा बोलना चाहिये।

परिमाण अतिक्रमण किया हो, ( ५ ) कुविय धातु ( कांसी, पीतल, ताम्बा, लोहा आदि धातु का तथा इन से वने हुए वर्तन आदि और शय्या, आसन वस्त्र आदि घर संवन्धी वस्तुओं ) का परिमाण अतिक्रमण किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

**छठा दिशिव्रत**—के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं—( १ ) ऊंची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, (२) नीची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, ( ३ ) तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, (४) क्षेत्र बढ़ाया हो, ( ५ ) क्षेत्र का परिमाण भूल जाने से पंथ का संदेह पड़ने पर आगे चला हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

**सातवां उपभोगपरिभोग परिमाण व्रत**—के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं— ( १ ) पच्चक्खाण उपरान्त सचित्त का आहार किया हो, ( २ ) सचित्त पडिबद्ध का आहार किया हो, ( ३ ) अपक्क ( अपक्व ) का आहार किया हो, ( ४ ) दुपक्क ( दुष्पक्व ) का आहार किया हो, ( ५ ) *तुच्छौषधि का आहार किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

---

* जिसमें खाने योग्य अंश तो थोड़ा हो और अधिक फेंकना पड़े, उसे तुच्छौषधि कहते हैं, जैसे मूंग की कच्ची फली, सीताफल, गन्ना ( गंडेरी ) आदि।

पन्द्रह कर्मादान[1] सम्बन्धी जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं —(१) इंगालकम्मे, (२) वणकम्मे, (३) साडी-कम्मे, (४) भाडीकम्मे, (५) फोडीकम्मे, (६) दन्तवाणिज्जे, (७) लक्खवाणिज्जे, (८) रसवाणिज्जे, (९) केसवाणिज्जे, (१०) विसवाणिज्जे, (११) जंतपीलणकम्मे, (१२) निल्लंछण-कम्मे, (१३) दवग्गिदावणया, (१४) सर-दह-तलाय सोस-णया, (१५) असईजणपोसणया इन में से कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

१—इंगाल कम्मे (अंगार कर्म)—जंगल को खरीद कर व ठेके लेकर कोयले बनाने और बेचने का धंधा करना अंगारकर्म है। इसमें छः काय का वध होता है।

२—वण कम्मे (वन कर्म)—जंगल को खरीद कर वृक्षों को काट कर बेचना और इससे आजीविका करना वनकर्म है।

३—साडी कम्मे (शाकटिक कर्म)—वाहन सहित गाड़ी, तांगा, इक्का आदि बनाने और बेचने का धन्धा कर आजीविका करना शाकटिक कर्म है।

४—भाडी कम्मे (भाटी कर्म)—गाड़ी आदि से दूसरों का सामान भाड़े पर ले जाना तथा बैल-घोड़े आदि को

---

१. अधिक हिंसा वाले धन्धों से आजीविका चलाना कर्मा-दान है अथवा जिन धन्धों से उत्कट ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का बन्ध होता है, उन्हें कर्मादान कहते हैं। ये श्रावक के जानने योग्य हैं, किन्तु आचरण करने योग्य नहीं हैं।

भाड़े देना—इस प्रकार भाड़े से आजीविका करना भाटी कर्म है।

५—फोडी कम्मे (स्फोटक कर्म)—हल, कुदाली, सुरंग आदि से पृथ्वी को फोड़ना और खान से निकले हुए पत्थर, मिट्टी, धातु आदि खनिज पदार्थ को बेच कर आजीविका करना अथवा जमीन खोदने का ठेका लेकर जमीन खोदना और इस प्रकार आजीविका करना स्फोटक कर्म है।

६—दंत वाणिज्जे (दन्त वाणिज्य)—हाथी दांत, शंख, चर्म, चामर आदि खरीदने-बेचने का धन्धा कर आजीविका करना दन्त-वाणिज्य है। ये धन्धे करने वाले लोग हाथी-दांत आदि निकालने वालों को पहले से इनके लिये अग्रिम मूल्य दे देते हैं और वे लोग हाथी आदि की हिंसा कर हाथी-दांत आदि लाकर देते हैं। इस प्रकार ये व्यापार महाहिंसाकारी हैं।

७—लक्ख वाणिज्जे (लाक्षावाणिज्य)— लाख का क्रय-विक्रय कर आजीविका करना लाक्षा-वाणिज्य है। इसमें त्रस जीवों की बड़ी हिंसा होती है।

८—रस वाणिज्जे (रस वाणिज्य)— मदिरा आदि बनाने और बेचने का कलाल आदि का धन्धा कर आजीविका करना रस वाणिज्य है। मदिरा बनाने में हिंसा तो होती ही है किन्तु इसके पीने से अन्य बहुत से दोषोंका होना संभव है।

९—केसवाणिज्जे (केश वाणिज्य)—दासी को खरीद कर दूसरी जगह अधिक मूल्य में बेचने का धन्धा करना

केश वाणिज्य है ।

१०—विस वाणिज्जे ( विष वाणिज्य )—विष शंखिया आदि वेचने का धन्धा करना विषवाणिज्य है । इसमें बहुत जीवों की हिंसा होती है ।

११—जंतपीलणकम्मे ( यंत्र पीड़न कर्म ) तिल, ईख आदि पीलने के यन्त्र कोल्हू, चरखिये आदि से तिल आदि व ईख पीलने का धन्धा करना यन्त्रपीड़न कर्म है । उस समय में प्रायः ये ही यन्त्र प्रसिद्ध थे । आज के युग के महा आरम्भ पोषक जितने भी यन्त्र हैं, उनको भी उपलक्षण से यन्त्रपीड़न कर्म में शामिल किया जा सकता है ।

१२—निल्लंछणकम्मे ( निर्लाञ्छन कर्म )—बैल, घोड़े आदि को नपुंसक बनाने का धन्धा करना निर्लाञ्छन कर्म है ।

१३—दवग्गिदावणया ( दावाग्नि दापनता )—क्षेत्रादि साफ करने के लिये जंगल में आग लगा देना दावाग्नि-दापनता है । इसमें लाखों जीवों की हिंसा होती है ।

१४—सरदह तलाय सोसणया (सरोह्रद तडाग शोषणता )—गेहूं आदि धान बोने के लिये सरोवर, ह्रद और तालाब को सुखाना सरोह्रद-तडाग शोषणता है ।

१५—असईजणपोसणया ( असती जन पोषणता )—आजीविका के लिये दुश्चरित्र स्त्रियों का पोषण करना असती-जन-पोषणता है ।

तरह से न देखी हो; ४. पूंजी न हो या अच्छी तरह से न पूंजी हो, ५ उपवासयुक्त पोषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

**बारहवें अतिथिसंविभाग** – व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं – १. अचित्त वस्तु सचित्त पर रखी हो, २. अचित्त वस्तु सचित्त से ढांकी हो, ३. साधुओं को भिक्षा देने के समय को टाल दिया हो, ४. दान नहीं देने की बुद्धि से अपनी वस्तु दूसरे की कही हो, ५. ईर्ष्या भाव से दान दिया हो इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

## संलेखना के पांच अतिचार का पाठ

अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा आराहणाय पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं-इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

अपच्छिम— अन्तिम ।
मारणन्तिय— मरण समय सम्बन्धी ।

संलेहणा— संलेखना–कषाय और शरीर कृश (दुर्बल) करने के लिये जो तप विशेष होता है वह संलेखना है ।

इहलोगासंसप्पओगे—इस लोक में राजा चक्रवर्ती आदि के सुख की कामना करना ।

परलोगासंसप्पओगे—परलोक में देवता इन्द्र आदि के सुख की कामना करना ।

जीवियासंसप्पओगे— महिमा, प्रशंसा फैलने पर बहुत काल तक जीवित रहने की आकांक्षा करना ।

मरणासंसप्पओगे— कष्ट होने पर शीघ्र मरने की इच्छा करना ।

कामभोगासंसप्पओगे–काम भोग की अभिलाषा करना ।

भावार्थ— अन्तिम मरण समय सम्बन्धी संलेखना के विषय कोई दोष लगा हो— मैंने राजा, चक्रवर्ती आदि के इस लोक सम्बन्धी सुख की आकांक्षा की हो, देव इन्द्र आदि के परलोक सम्बन्धी सुख की आकांक्षा की हो, प्रशंसा फैलने पर बहुत काल तक जीवित रहने की इच्छा की हो, दुःख से व्याकुल होकर शीघ्र मरने की अभिलाषा की हो तथा काम-भोग की अभिलाषा की हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं । मेरा वह सब पाप निष्फल हो ।

# अठारह पापस्थान का पाठ

**अठारह पापस्थान आलोउं—पहला प्राणातिपात,**

| | |
|---|---|
| कलह— | क्लेश, झगड़ा । |
| अभ्याख्यान— | झूठ आल देना, कलङ्क लगाना । |
| पैशुन्य— | दूसरे की चुगली करना, दोष प्रगट करना । |
| परपरिवाद— | दूसरे की निन्दा करना, दूसरे की बुराई करना । |
| रति— | बुरे कार्यों में चित्त का लगना । |
| अरति— | ध्यान संयम आदि में चित्त का न लगना । |
| माया मृषावाद— | कपट सहित झूठ बोलना । |
| मिथ्यादर्शनशल्य— | अतत्त्व में तत्त्व और तत्त्व में अतत्त्व की श्रद्धा होना, श्रद्धा का विपरीत होना । |

# इच्छामि खमासमणो का पाठ

इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए अणुजाणह मे मिउग्गहं निसीहि अहो कायं कायसंफासं खमणिज्जो भे किलामो अप्पकिलंताणं बहुसुभेणं भे दिवसो वइक्कंतो जत्ता भे जवणिज्जं च भे खामेमि खमासमणो ! देवसिअं वइक्कमं आवस्सियाए पडिक्कमामि । खमासमणाणं देवसिआए आसायणाए तित्तीसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए मणदुक्कडाए

**वयदुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोहाए सव्वकालिआए सव्वमिच्छोवयाराए सव्वधम्मा-इक्कमणाए आसायणाए जो मे देवसियो अइयारो कओ, तस्स खमासमणो! पडिक्कमामि निंदामि गरि-हामि अप्पाणं वोसिरामि।**

| | |
|---|---|
| इच्छामि— | मैं चाहता हूँ। |
| खमासमणो— | हे क्षमावान् श्रमण ! |
| वंदिउं— | वंदना करना। |
| जावणिज्जाए— | शक्ति के अनुसार। |
| निसीहिआए— | अपने शरीर को पाप क्रिया से हटाकर। |
| अणुजाणह— | आज्ञा दीजिये। |
| मे— | मुझे। |
| मिउग्गहं— | परिमित भूमि (अवग्रह) में प्रवेश करने की। |
| निसीह— | पाप क्रिया को रोक कर। |
| अहो कायं— | (आपके) चरण को। |
| कायसंफासं— | मस्तक से स्पर्श करता हूँ, मेरे छूने से। |
| खमणिज्जो— | क्षमा के योग्य हैं। |
| भे— | आपको। |
| किलामो— | बाधा हुई हो। |
| अप्प किलंताणं— | अल्प देह ग्लानि वाले। |
| बहुसुभेणं— | बहुत शुभ क्रियाओं से। |
| भे— | आपका। |
| दिवसो— | दिन। |

| | |
|---|---|
| वइक्कतो— | व्यतीत हुआ है ? |
| जत्ता— | संयम यात्रा। |
| भे— | आपकी ( निर्वाध है ? ) |
| जवणिज्जं— | मन तथा इंद्रियों के दोप शान्त होने से स्वस्थ है ? |
| च— | और। |
| भे— | आपका ( शरीर ) |
| खामेमि— | खमाता हूं। |
| खमासमणो— | हे क्षमाश्रमण ! |
| देवसिअं— | दिवस सम्बन्धी। |
| वइक्कमं— | अपराध को। |
| आवस्सियाए— | आवश्यक क्रिया करने में जो भी विपरीत अनुष्ठान हुआ हो उससे। |
| पडिक्कमामि— | निवृत्त होता हूं। |
| खमासमणाणं— | आप क्षमाश्रमण की। |
| देवसिआए— | दिवस सम्बन्धी। |
| आसायणाए— | आशातना द्वारा। |
| तित्तीसन्नयराए— | तेतीस में से किसी भी। |
| जं किंची— | जिस किसी। |
| मिच्छाए— | मिथ्या भाव से की हुई। |
| मणदुक्कडाए— | दुष्ट मन से की हुई। |
| वयदुक्कडाए— | दुर्वचन से की हुई। |
| काय दुक्कडाए— | शरीर की दुष्ट चेष्टा से की हुई। |
| कोहाए— | क्रोध से की हुई। |
| माणाए— | मान से की हुई। |
| मायाए— | माया से की हुई। |

लोहाए— लोभ से की हुई ।
सव्व कालियाए— सर्व काल में की हुई ।
सव्व मिच्छो— सर्व मिथ्या आचार से पूर्ण ।
वायराए—
सव्वधम्मा— पांच समिति तीन गुप्ति रूप धर्मो का ।
इक्कमणाए— उल्लंघन करने वाली ।
आसायणाए— आशातना से ।
जो— जो ।
मे— मैंने ।
देवसिओ— दिवस सम्बन्धी ।
अइयारो— अतिचार ।
कओ— किया हो ।
तस्स— उसका ।
खमासमणो— हे क्षमाश्रमण !
पडिक्कमामि— प्रतिक्रमण करता हूं ।
निंदामि— ( उसकी ) निन्दा करता हूं ।
गरिहामि— गुरु साक्षी से विशेष निन्दा करता हूं ।
अप्पाणं— ( आशातना करने वाली ) अपनी आत्मा को ।
वोसिरामि— त्याग करता हूं अर्थात् पाप व्यापारों से अलग करता हूं ।

भावार्थ— हे क्षमावान् श्रमण ! मैं अपने शरीर को पाप क्रिया से हटा कर शक्ति के अनुसार वन्दना करना चाहता हूं । इसलिये मुझको परिमित भूमि ( अवग्रह ) म प्रवेश करने की आज्ञा दीजिये । पाप क्रिया को रोक कर

मैं आपके चरण का अपने मस्तक से स्पर्श करता हूं। मेरे छूने से आपको बाधा हुई हो तो उसे क्षमा कीजिये। आपने अल्पग्लान अवस्था में रह कर बहुत शुभ क्रियाओं से तो दिवस विताया है ? आपकी संयम यात्रा तो निर्बाध है ? और आपका शरीर, मन तथा इन्द्रियों के दोषों के शान्त होने से स्वस्थ है ? हे क्षमावान् श्रमण ! मैं आपको दिवस सम्बन्धी अपराध के लिये खमाता हूं और आवश्यक क्रिया करने में जो विपरीत अनुष्ठान हुआ है उससे निवृत्त होता हूँ। आप क्षमाश्रमण की दिन में की हुई, तेतीस में से किसी भी आशातना द्वारा मैंने जो दिवस सम्बन्धी अति-चार सेवन किया हो उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ तथा किसी मिथ्याभाव से की हुई, दुष्ट मन, वचन और काया से की हुई, क्रोध, मान, माया, लोभ से की हुई आशाताना के द्वारा जो मैंने दिवस संबन्धी अतिचार सेवन किया हो, उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूं तथा सर्वकाल संबन्धी, सर्व मिथ्या आचरणों से परिपूर्ण और सब प्रकार से धर्म का उल्लंघन करने वाली आशातना से जो मैंने दिवस सम्बन्धी अतिचार किया हो, हे क्षमाश्रमण ! उससे मैं निवृत्त होता हूं, उसकी मैं निन्दा करता हूँ और आत्मा को पाप संबन्धी व्यापारों से निवृत्त करता हूं।

---

## समुच्चय पाठ

इस प्रकार १४ ज्ञान के, ५ दर्शन ( सम्यक्त्व ) के, ६० बारह व्रतों के, १५ कर्मादान के, ५ संलेखना के— इन

९९ अतिचार में से किसी भी अतिचार का मैंने जानते-अजानते-मन वचन-काया से सेवन किया हो, कराया हो, करते को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान् की साक्षी से तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।
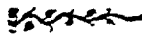
# समुच्च पाठ

इस प्रकार १४ ज्ञान के, ५ दर्शन ( सम्यक्त्व ) के, ६० बारह व्रतों के, १५ कर्मादान के, ५ संलेखना के— इन ९९ अतिचारों में से किसी भी अतिचार का मैंने जानते-अजानते—मन—वचन—काया से सेवन किया हो, कराया हो, करते को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान् की साक्षी से तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

---
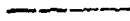
# तस्स सव्वस्स का पाठ

**त स सव्वस्स देवसियस्स अाइयारस्स दुब्भासिय-दुच्चितिय-दुचिट्ठियस्स आलोयन्तो पडिक्कमामि ।**

तस्स— उस ।
सव्वस्स— सर्व ।
देवसियस्स— दिवस सम्बन्धी ।
अइयारस्स— अतिचार की ।

दुब्भासिय दुच्चितिय–दुर्वचन, दुष्ट विचार तथा काया द्वारा किये।

दुच्चिट्ठियस्स— गये दुष्ट व्यवहार की।

आलोयतो— आलोचना करता हुआ।

पडिक्कमामि— निवृत्त होता हूं।

भावार्थ— दुर्वचन बोल कर, मन से बुरे विचार उत्पन्न करके तथा काया द्वारा दुष्ट व्यवहार (प्रवृत्ति) करके दिन में जो मैंने अतिचार किये हों उनकी आलोचना करता हुआ उन पापों से मैं निवृत्त होता हूं।

## चत्तारि मंगलं का पाठ

चत्तारि मंगलं–अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णतो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णतो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पवज्जामि, अरिहंते सरणंपवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलिपण्णतं धम्मं सरणं पवज्जामि।

अरिहंतों का शरणा, सिद्धों का शरणा, साधुओं का शरणा, केवलिप्ररूपित धर्म का शरणा।

**चार शरणा दुःख हरणा, और न शरणा कोय ।**
**जो भवि प्राणी आदरे, अक्षय अमर पद होय ॥**

चत्तारि— चार ।
मंगलं— मंगल है ।
अरिहंता मंगलं— अरिहंत मंगल है ।
सिद्धा मंगलं— सिद्ध मंगल हैं ।
साहू मंगलं— साधु मंगल हैं ।
केवलिपण्णत्तो— धम्मो मंगलं— केवली प्ररूपित धर्म मंगल है ।
चत्तारि लोगुत्तमा— चार लोक में उत्तम हैं ।
अरिहंता लोगुत्तमा— अरिहंत लोकोत्तम हैं ।
सिद्धा लोगुत्तमा— सिद्ध लोकोत्तम हैं ।
साधु लोगुत्तमा— साधु लोकोत्तम हैं ।
केवलिपण्णत्तो— धम्मो लोगुत्तमो— केवली प्ररूपित धर्म लोकोत्तम हैं ।
चत्तारि सरणं पवज्जामि—चार शरणों को ग्रहण करता हूँ ।
अरिहंते सरणं पवज्जामि—अरिहंत भगवान् की शरण ग्रहण करता हूं ।
सिद्धे शरण पवज्जामि–सिद्ध भगवान् की शरण ग्रहण करता हूँ।
साहू सरणं पवज्जामि–साधुओं की शरण ग्रहण करता हूँ ।
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि— केवली प्ररूपित धर्म की शरण ग्रहण करता हूँ ।

भावार्थ— इस लोक में अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म ये चार मंगल है तथा लोक में श्रेष्ठ हैं । मैं इन चारों की शरण लेता हूँ ।

# दंसण समकित का पाठ

दंसणसम्मत-परमत्थसंथवो वा,
सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि ।
वावण्णकुदंसणवज्जणा य,
सम्मत सद्दहणा ॥

एवं समणोवासएणं सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं—संका, कंखा, वितिगिच्छा, परपासंडपसंसा, परपासंडसंथवो, इन पांच अतिचारों में से जो कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

——:0:——

# बारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ

पहला अणुव्रत—थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं त्रस जीव बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदिय, पंचिंदिय जान के पहिचान के संकल्प करके उसमें स्वसम्बन्धी शरीर के भीतर में पीड़ाकारी, सापराधी को छोड़ निरपराधी को आकुट्टी (हनने) की बुद्धि से हनने का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि,

**मणसा वयसा कायसा, ऐसे पहले स्थूल प्राणातिपात वेरमण व्रत के पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं—बंधे वहे छविच्छेए अइभारे भत्तपाणविच्छेए तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।**

| | |
|---|---|
| अणुव्रत— | महाव्रत की अपेक्षा छोटा व्रत । |
| थूलाओ— | स्थूल–मोटा । |
| पाणाइवायाओ— | प्राणातिपात से—जीव हिंसा से । |
| वेरमणं— | निवृत होना, अलग होना । |
| पच्चक्खाण— | त्याग । |
| पेयाला— | प्रधान । |
| बन्धे— | बांधना । |
| वहे— | निर्दयता से पीटना, गहरा घाव करना । |
| छविच्छेए— | शरीर की चमड़ी का छेदन करना । |
| अइभारे— | अधिक भार लादना । |
| भत्तपाणविच्छेए— | खाने–पीने में रुकावट डालना । |

भावार्थ— मैं स्वसम्बन्धी–शरीर में पीड़ाकारी तथा अपराधी जीवों को छोड़ कर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय त्रस जीवों की हिंसा संकल्प करके मन, वचन और काया से न करूंगा और न कराऊंगा। जो मैंने किसी जीव को बंधन से बांधा हो चाबुक, लाठी आदि से मारा हो, पीटा हो, किसी जीव के चर्म का छेदन किया हो. अधिक भार लादा हो तथा अन्न–पानी का विच्छेद किया हो तो ये मेरे सब पाप निष्फल हों ।

## प्रश्नोत्तर

प्र०—सूक्ष्म प्राणातिपात किसे कहते हैं ?

उ०—स्थावर जीवों की हिंसा को :

प्र०—प्राणातिपात किसे कहते हैं ?

उ०—जीव को मिले हुए प्राणों के वियोग करने को।

प्र०—श्रावक त्रस जीव की हिंसा का त्याग क्यों करता है ?

उ०—त्रस जीवों की हिंसा से पाप अधिक होता है इसलिये।

प्र० -आकुट्टी से मारना किसे कहते हैं ?

उ०...यह जीवित भी रहेगा या नहीं ? इसका ध्यान न रखते हुए कषाय वश निर्दयता पूर्वक मारने को।

——:0:——

दूजा अणुव्रत थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं, कन्नालीए, गोवालीए, भोमालीए, णासावहारो (थापण मोसो); कूडसक्खिज्जे ( कूडी साख ) इत्यादि मोटा झूठ बोलने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, एवं दूजा स्थूल मृषावाद वेरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा ते आलोउं—सहसब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदारमन्तभेए, मोसोवएसे, कूडलेहकरणे तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

| | |
|---|---|
| मुसावायाओ— | मृषावाद से । |
| कन्नालीए— | कन्या वर आदि मनुष्य संबन्धी भूठ । |
| गोवालीए— | गाय, भैंस आदि, पशु सम्बन्धी भूठ । |
| भोमालीए— | भूमि सम्बन्धी भूठ । |
| णासावहारो— (थाषणमोसो) | धरोहर को दबाना अथवा धरोहर के विषय में भूठ बोलना । |
| कूडसक्खिज्जे— | भूठी साक्षी देना । |
| सहसब्भक्खाणे— | बिना विचारे किसी पर भूठा आरोप लगाना । |
| रहस्सब्भक्खाणे— | एकान्त में मंत्रणा (सलाह) करते हुए व्यक्तियों पर भूठा आरोप लगाना । |
| सदारमंतभेए— | अपनी स्त्री के गुप्त विचार प्रकट करना । |
| मोसोवएसे— | भूठा उपदेश देना । |
| कूडलेहकरणे— | भूठा लेख लिखना । |

भावार्थ— मैं जन्म पर्यन्त मन वचन काया से स्थूल भूठ नहीं बोलूंगा, न बोलाऊंगा, कन्या-वर के सम्बन्ध में, गाय, भैंस आदि पशुओं के विषय में तथा भूमि के विषय

## प्रश्नोत्तर

प्र०—झूठ के कितने प्रकार है ?

उ०—झूठ के कई प्रकार हैं— जैसे झूठा आरोप लगाना, विश्वासघात करना, भगवान आदि की झूठी शपथ करना, मृषा उपदेश करना, राजकीय, सामाजिक, व्यापारिक या साहित्यिक बड़ी झूठ बोलना आदि-आदि । फिर भी हम झूठ के दो प्रकार कर सकते हैं— द्रव्य और भाव। झूठ की भावना से किसी गुण हीन कन्या को गुणवती कहना, द्रव्य और भाव दोनों से झूठ हैं तथा गुणहीन कन्या के संवन्ध में कहना कि—" मैं उसके गुण क्या बताऊं? उसके गुण अवर्णनीय हैं, यह द्रव्य से तो झूठ नही है, पर भाव से झूठ है। ये दोनों ही प्रकार के झूठ त्याज्य है।

प्र०—क्या सच्ची बात प्रकट करना भी अतिचार है ?

उ०—हां, ऐसा करने से स्त्री आदि का विश्वासघात होता है; वह लज्जित होकर मर सकती है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण कर सकता है। अतः विश्वासघात और हिंसा की अपेक्षा से सत्य बात प्रकट करना भी अतिचार है।

---

**तीजा अणुव्रत थूलाओ अदिण्णा दाणाओ वेरमणं**

**खात खून कर, गांठ खोल कर, तारे कुंजी लगा कर, मार्ग में चलते को लूट कर**

धणियाती मोटी वस्तु जान कर लेना इत्यादि मोटा अदत्तादान का पच्चक्खाण, सगे संबन्धी, व्यापार संबन्धी तथा पड़ी निर्भ्रमी वस्तु के उपरान्त अदत्तादान का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं—न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं तीजा स्थूल अदत्तादान वेरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा ते आलोउं—तेनाहडे, तक्करप्पओगे, विरुद्धरज्जाइक्कमे, कूडतुल्लकूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

| | |
|---|---|
| अदिण्णादाणाओ— | अदत्तादान से--स्वामी की विना आज्ञा वस्तु को लेने से । |
| निर्भ्रमी— | शंका रहित । |
| तेनाहडे— | चोर की चुराई हुई वस्तु को लेना । |
| तक्करप्पओगे— | चोर को सहायता देना । |
| विरुद्ध— रज्जाइक्कमे— | राज्य के नियमों का भंग करना, निषिद्ध वस्तुओं का लेन-देन करना, कर न देना आदि । |
| कूडतुल्लकूडमाणे— | भूठा तोल (बाट) रखना तथा भूठा गज आदि का माप रखना । |
| तप्पडिरूवग— ववहारे— | अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु को मिलाना । उत्तम वस्तु को दिखला कर निकृष्ट वस्तु देना । |

भावार्थ— मैं किसी के मकान में खात लगा कर अर्थात् भींत फोड़ कर, गांठ खोल कर, ताले पर कुंची लगा कर अथवा ताला तोड़ कर किसी की वस्तु नहीं लूंगा, मार्ग में चलते हुए को नहीं लूटूंगा, मार्ग में पड़ी हुई किसी मोटी वस्तु का स्वामी जानते हुए उसे नहीं लूंगा इत्यादि रूप से, सगे-सम्बन्धी, व्यापार सम्बन्धी तथा पड़ी हुई शंका रहित वस्तु के उपरान्त, स्थूल चोरी को मन वचन काया से न करूंगा और न कराऊंगा। यदि मैंने चोरी की वस्तु ली हो, चोर को सहायता दी हो, या चोरी करने का उपाय बतालाया हो, लड़ाई के समय विरुद्ध राज्य में आया गया होऊं, झूठा तोल व माप रक्खा हो, अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिलाई हो अथवा उत्तम वस्तु दिखा कर खराब वस्तु दी हो तो मैं इन कुकृत्यों ( बुरे कामों ) की आलोचना करता हूँ और चाहता हूं कि मेरे वे सब पाप निष्फल हों।

## प्रश्नोत्तर

प्र०—अदत्तादान किसे कहते हैं ?

उ०—स्वामी की आज्ञा बिना कोई वस्तु ले लेना आदत्तादान है।

प्र०— इस व्रत में 'सगे-संबन्धी' का आगार क्यों रखा गया है ?

उ०—मिलजुल कर रहने वाले सगे-संबन्धी परस्पर में एक दूसरे के मकान का ताला खोलते हैं और चीज-वस्तु लेते-देते रहते हैं, व्यापार में भी बढ़िया माल दिखा

कर कुछ हल्का माल दे दिया जाता है। इस वस्तु का स्वामी कौन है, इसकी सामान्यतः जानकारी न होने पर भी वह वस्तु ले ली जाती है, ये सब चोरियां तो है, पर बड़ी चोरियां नही है । अतः इनका आगार समझने की दृष्टि से रखा गया है ।

---

चौथा अणुव्रत थूलाओ मेहुणाओ वेरमणं* सदारसंतोसिए अवसेसमेहुणविहिं पच्चक्खामि जावज्जीवाए देव देवी सम्बन्धी दुविहं तिविहेणं—न करेमि, न कारवेमि मणसा, वयसा, कायसा, तथा मनुष्य तिर्यंच सम्बन्धी एगविहं एगविहेणं— न करेमि, कायसा, एवं चौथा स्थूल स्वदार संतोष परदार विवर्जन रूप मैथुन वेरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं— इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे, अनंगक्रीड़ा परविवाहकरणे, कामभोगतिव्वाभिलासे तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

सदारसंतोसिए— अपनी विवाहित स्त्री से संतोष रखते हुए।
अवसेस मेहुणविहिं— अन्य समस्त प्रकार के मैथुन सेवन ।

---

* 'स्वदार संतोष' ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये और स्त्री को 'स्वपति सन्तोष' ऐसा बोलना चाहिये । जिसको सर्वथा प्रकार से मैथुन सेवन का त्याग हो उनको 'सदार संतोसित अवसेस मेहुण विहिं' के स्थान पर 'सव्वप्पगार मेहुण' बोलना चाहिये ।

| | |
|---|---|
| पच्चक्खामि— | त्याग करता हूँ । |
| एगविह एगविहेणं— | एक करण एक योग से । |
| इत्तरिअ— परिग्गहिया— गमणे — | कुछ समय के लिये अपने आधीन की हुई स्त्री इत्वरपरिगृहीता कहलाती है, उसके साथ क्रीड़ा करने के लिये आलाप संलापादि करना अथवा अल्पवय वाली अर्थात् जिसकी उम्र अभी भोग योग्य नहीं हुई है ऐसी अपनी विवाहिता स्त्री से गमन करने के लिये आलाप संलापादि करना । |
| अपरिग्गहियागमणे— | वेश्या, अनाथ, कन्या, विधवा, कुलवधू, आदि अपरिगृहीता कहलाती है, इनके साथ क्रीड़ा करने के लिये आलाप संलापादि करना अथवा जिस कन्या के साथ सगाई तो हो चुकी है किन्तु अभी विवा नहीं हुआ है ऐसी कन्या के साथ गमन करने के लिए आलाप संलापादि करना अतिचार है क्योंकि वह अपनी होते हुए भी अपरिगृहीता है । |
| अनंगक्रीड़ा— | काम सेवन के प्राकृतिक अंग के सिवाय अन्य अंगों से, जो कि काम सेवन के लिये अनंग हैं, क्रीड़ा करना अनंग क्रीड़ा है । स्वस्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों के साथ मैथुन क्रिया वर्ज कर अनुराग से उनका आलिंगन आदि करने वाले के |

व्रत मलीन होता है इसलिये यह अति-
चार माना गया है ।

परविवाहकरणे— अपना और अपनी संतान के सिवाय
दूसरों का विवाह कराने के लिए
उद्यत होना ।

कामभोगतिव्वाभिलासे—कामभोगों की उत्कृष्ट अभिलाषा
करना ।

भावार्थ— मैं जन्मपर्यन्त अपनी विवाहिता स्त्री में ही सन्तोष रखकर शेष सब प्रकार के मैथुन सेवन का त्याग करता हूँ अर्थात् देव-देवी संबन्धी मैथुन का सेवन मन-वचन काया से न करूंगा और न कराऊंगा, तथा मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी मैथुन सेवन काया से न करूंगा। यदि मैंने इत्वरिकपरिगृहीता अथवा अपरिगृहीता से गमन करने के लिये आलाप संलापादि किया हो, प्रकृति के विरुद्ध अंगों से काम क्रीड़ा करने की चेष्टा की हो दूसरे के विवाह कराने का उद्यम किया हो, कामभोग की तीव्र अभिलाषा की हो तो मैं इन दुष्कृत्यों की आलोचना करता हूँ कि मेरे सब पाप निष्फल हों ।

## प्रश्नोत्तर

प्र०—स्व-स्त्री संतोष कितने प्रकार से हो सकता है ?

उ०—नाना प्रकार से हो सकता है । जैसे—एक विवाह के वाद दूसरा विवाह नही करूंगा । वर्तमान स्त्री का स्वर्गवास हो जाने पर या इतने वर्ष वाद स्वर्गवास

हो जाने पर अन्य विवाह नहीं करूंगा । वर्ष में या मास में इतने दिन से अधिक अब्रह्म का सेवन नहीं करूंगा । इतने वर्ष बाद सर्वथा ब्रह्मचारी रहूँगा । अमुक तिथियों पर— पर्व या श्रावण, भाद्रपद मास में पूर्ण ब्रह्मचारी रहूँगा आदि–आदि ।

प्र०— वेश्यागमन अतिचार है या अनाचार ?

उ०—वेश्या को वेश्या समझ कर गमन करना अनाचार है । उससे आलाप–संलाप करना अतिचार है ।

——:0:——

**पांचवां अणुव्रत थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं खेत्तावत्थु का यथा परिमाण, हिरण्य सुवण्य का यथा परिमाण, धन–धान्य का यथा परिमाण, दुपय, चउ-प्पय का यथा परिमाण, कुविय धातु का यथा परिमाण, जो परिमाण किया है उनके उपरांत अपना करके परिग्रह रखने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा, एवं पांचवां स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं–खेत्ता-वत्थुप्पमाणाइक्कमे हिरण्णसुवण्णप्पमाणाइक्कमे, धण-धण्णप्पमाणाइक्कमे दुपयचउप्पयप्पमाणाइक्कमे, कुवि-यप्पमाणाइक्कमे तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।**

खेत्तवत्थुप्पमाणाइक्कमे— खेत और घर आदि के परिमाण (मर्यादा) का उल्लंघन करना।

हिरण्णसुवण्णप्पमाणाइक्कमे— सोना-चांदी के परिमाण का उल्लंघन करना।

धण धण्णप्पमाणाइक्कमे— धन और धान्य के परिमाण का उल्लघन करना।

दुपयचउप्पयप्पमाणाइक्कमे—दास, दासी तथा गाय, घोड़ा, हाथी आदि के परिमाण का उल्लंघन करना।

कुवियप्पमाणाइक्कमे— कांसी, पीतल, तांवा, लोहा आदि धातु का तथा इनसे वने हुए वर्तन आदि और शय्या आसन वस्त्र आदि घर संवन्धी वस्तुओं के परिमाण का उल्लंघन करना।

भावार्थ— खेत, महल, मकान, सोना, चांदी, दास, दासी, गाय, हाथी, घोड़ा, चौपाये आदि, धन, धान्य तथा सोना-चांदी के सिवाय कांसी, पीतल, तांवा, लोहा आदि धातु तथा इनसे वने हुए वर्तन आदि और शय्या, आसन, वस्त्र आदि घर सम्वन्धी वस्तुओं का मैंने जो परिमाण किया है इसके उपरान्त मैं सम्पूर्ण परिग्रह का मन, वचन, काया से जन्म पर्यन्त त्याग करता हूं। यदि मैंने खेत, मकान का परिमाण उल्लंघन किया हो, सोना-चांदी के परिमाण का उल्लघन किया हो, दास-दासी आदि द्विपद और हाथी, घोड़ा, आदि चतुष्पद की संख्या के परिमाण का उल्लंघन किया हो, धन-धान्य के परिमाण का उल्लंघन

किया हो, सोना, चांदी के सिवाय दूसरे धातुओं के बने बर्तनों तथा शय्या, आसन, वस्त्र आदि की मर्यादा उल्लंघन किया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं चाहता हूँ कि मेरे सब पाप निष्फल हों ।

## प्रश्नोत्तर

प्र०—स्थूल अपरिग्रह विरमण कितने प्रकार का है ?

उ०—तीन प्रकार का है— १. जितना परिग्रह वर्तमान स्वयं के पास है, उससे डेढे-दूने आदि से अधिक प ग्रह नहीं रखूंगा उससे अधिक प्राप्त हुआ तो ग्र नहीं करूंगा या शुभ कार्य में व्यय कर दूंग यह जघन्य स्थूल परिग्रह विरमण है । २. जित पास में है उससे अधिक का विरमण करना मध्य प्रकार का विरमण है । ३. जितना पास में है उर भी घटा कर अधिक का विरमण करना उत्तम प्रक का विरमण है । शीघ्र मोक्षार्थी को उत्तम प्रक का विरमण अपनाना चाहिये। जिसकी प्राप्ति असंभ है, उसका त्याग करना तो मात्र बाहरी त्याग है ऐसा त्याग फलदायी नहीं है ।

**छठा दिशिव्रत उड्ढदिसि का यथा परिमाण अहोदिसि का यथा परिमाण, तिरियदिसि का यथ परिमाण एवं यथा परिमाण किया है, उसके उप रांत स्वेच्छा काया से आगे जाकर पांच आश्र**

**सेवन का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं* तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा, एवं छठे दिशिव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा-तंजहा ते आलोउं—उड्ढदिसिप्पमाणाइक्कमे, अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे, तिरियदिसिप्पमाणाइक्कमे, खित्तवुड्ढी, सइअन्तरद्धा तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।**

उड्ढदिसिप्पमाणाइक्कमे— ऊर्ध्व (ऊंची) दिशा के परिमाण (मर्यादा) का उल्लंघन करना ।

अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे— अधो (नीची) दिशा के परिमाण उल्लंघन करना ।

तिरियदिसिप्पमाणाइक्कमे— तिरछी दिशा के परिमाण का उल्लंघन करना ।

खित्तवुड्ढी— क्षेत्र बढ़ाना

सइअन्तरद्धा— क्षेत्र परिमाण में संदेह होने पर आगे चलना ।

भावार्थ—जो मैंने ऊर्ध्वदिशा, अधोदिशा और तिर्यक्दिशा का परिमाण किया है उसके आगे गमनागमन आदि क्रियाओं को मन, वचन, काया से न करूंगा । यदि मैंने ऊर्ध्वदिशा, अधोदिशा और तिर्यक्दिशा के परिमाण का उल्लंघन किया हो, क्षेत्र को बढ़ाया हो, क्षेत्र परिमाण में सन्देह होने पर आगे चला होऊं तो मैं उसकी आलोचना करता हूं कि मेरे वे सब पाप मिथ्या हों ।

---

* 'एगविहं तिविहेणं न करेमि' की जगह कोई-कोई 'दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि बोलते हैं ।

ऊंची, नीची, तिरछी दिशाओं के उल्लंघन को यहां अतिचार कहा है इसका तात्पर्य यह है कि मर्यादा की हुई भूमि से बाहर जाने की इच्छा कर रहा है लेकिन बाहर गया नहीं है, तब तक अतिचार है, बाहर चले जाने पर अनाचार है।

## प्रश्नोत्तर

प्र०—दिशा परिमाण कितने प्रकार का है ?

उ०—जिस दिशा में जितना जाना पड़े, उससे—१. अधिक, २. उतना ३. और उससे कम का परिमाण करना—यों- जघन्य, मध्यम और उत्तम तीन प्रकार का हैं।

प्र०—दिशाव्रत से क्या लाभ है ?

उ०—इससे मर्यादित क्षेत्र से बाहर के आस्रव रुक जाते हैं। सूक्ष्म तथा स्थावर हिंसा से भी बचाव होता है।

**सातवां व्रत—उवभोगपरिभोगविहि पच्चक्खायमाणे— १. उल्लणियाविहि, २. दंतणविहि, ३. फलविहि, ४. अब्भंगणविहि, ५. उवट्टणविहि, ६. मज्जणविहि, ७, वत्थविहि, ८. विलेवणविहि, ९. पुप्फविहि, १०. आभरणविहि, ११. धूवविहि, १२. पेज्जविहि, १३. भक्खणविहि, १४. ओदणविहि, १५.**

सूपविहि, १६. विगयविहि, १७. सागविहि, १८. मावहुरविहि १९. जीमणविहि, २०. पाणीयविहि, २१. मुखवासविहि, २२. वाहणविहि, २३. उवाणह-विहि, २४. सयणविहि, २५. सचित्तविहि, २६. दव्वविहि— इन २६ बोलों का यथा परिमाण किया है, इसके उपरांत उवभोगपरिभोग वस्तु को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एग-विहं तिविहेणं—न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं सातवां उवभोग परिभोग दुविहे पण्णत्ते तंजहा—भोय-णाओ य कम्मओ य, भोयणाओ समणोवासएणं, पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं—सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धाहारे, अप्पउलि ओसहिभक्खणया दुप्पउलिओसहिभक्खणया, तुच्छो-सहिभक्खणया, कम्मओ य णं समणोवासएणं पण्णरस कम्मादाणाइ जाणियव्वाइं न समायरिवव्वाइं तंजहा ते आलोउं इंगालकम्मे, वणकम्मे, साडीकम्मे, भाडी-कम्मे, फोडीकम्मे, दन्तवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, रस-वाणिज्जे, केसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, जंतपीलणकम्मे, निल्लंछणकम्मे, दवग्गिदावणया, सरद्दहतलायसोस-णया, असईजणपोसणया तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

---

(१) उल्लणियाविहि- शरीर पोंछने के अंगोछे, आदि वस्त्रों को काम में लाने की मर्यादा करना।

(२) दंतणविहि— दांतों को साफ करने के लिये दत्तौन आदि पदार्थों की मर्यादा करना।

(३) फलविहि— आंवला आदि फल से बाल धोने की मर्यादा करना।

(४) अब्भंगणविहि— शरीर पर मालिश करने के लिए तैलादि द्रव्यों की मर्यादा करना।

(५) उवट्टणविहि— शहीर पर उवटन ( पीठी आदि ) की मालिश करने की मर्यादा करना।

(६) मज्जणविहि— स्नान के लिये स्नान की संख्या और जल का परिमाण करना।

(७) वत्थविहि— वस्त्र की मर्यादा करना।

(८) विलेवणविहि— चन्दनादि का लेपन करने की मर्यादा करना।

(९) पुप्फविहि— फूलों की तथा फूलमाला की मर्यादा करना।

१०) आभरणविहि— आभूषणों की मर्यादा करना।

११) धूवविहि— धूप के द्रव्यों की मर्यादा करना।

१२) पेज्जविहि— पीने की वस्तुओं की मर्यादा करना।

१३) भाक्खणविहि— घेवर आदि पक्वान्न की मर्यादा करना।

१४) ओदणविहि— रन्धे हुए चावल (भात), गेहूं (थूली) आदि की मर्यादा करना।

| | |
|---|---|
| ❀ उवभोग— | जो पदार्थ एक वार भोगने में आता हैं, जैसे— अन्न, जल आदि । |
| ❀ परिभोग— | जो पदार्थ वार-वार भोगने में आता हैं, जैसे—वस्त्र, आभूपण इत्यादि । |
| दुविहे— | दो प्रकार का । |
| पण्णत्तो— | कहा गया है । |
| तंजहा— | वह इस प्रकार । |
| भोयणाओ— | भोजन की अपेक्षा से । |
| य— | और । |
| कम्मओ— | कर्म की अपेक्षा से । |
| समणोवासएणं— | श्रावक के । |
| पंच अइयारा— | पांच अतिचार । |
| जाणियव्वा— | जानने योग्य हैं । |
| न समायरियव्वा— | आचरण करने योग्य नही हैं । |
| सचित्ताहारे— | [1]मर्यादा से अधिक सचित्त वस्तु का भोजन करना । |

---

❀ उवभोग परिभोग शब्दों का उपरोक्त अर्थ भगवती शतक ७ उद्देशा २ में तथा हरिभद्रीयावश्यक अध्ययन ६ सूत्र ७ में मिलता है । उपासक दशांग प्रथम अध्ययन सूत्र ७ में इनका अर्थ उपरोक्त भी किया है और इस प्रकार भी किया है । बार-बार भोगे जाने वाले पदार्थ उपभोग और एक बार भोगे जाने वाले पदार्थ परिभोग कहलाते हैं ।

१. सचित्त त्यागी श्रावक का सचित्त वस्तु जैसे नमक पृथ्वी पानी वनस्पति आदि का आहार करने के लिए उद्यत होना तथा सचित्त वस्तु का परिमाण करने वाले श्रावक का परिमाण किये हुए पदार्थों के उपरांत सचित्त वस्तु को खाने के लिए उद्यत होना सचित्ताहार अतिचार है.

सचित्तपडिबद्धाहारे—सचित्त वृक्षादि से सम्बन्ध ( लगे हुए ) गोंद, पक्के फल आदि खाना।

अप्पउलि— अग्नि से बिना पकी वस्तु का आहार करना,

ओसहिभक्खणया— जिसमें जीव के प्रदेशों का सम्भव हो ऐसी तत्काल पीसी हुई या मर्दन की हुई वस्तु का भोजन करना।

दुप्पउलि—
ओसहिभक्खणया— } अधपकी वस्तु का भोजन करना।

तुच्छोसहिभक्खणया—तुच्छ औषधि ( जिसमें सारभाग कम है उस वस्तु) का भक्षण करना।

भावार्थ— मैंने शरीर पोंछने के अंगोछे आदि वस्त्र का, दतौन करने का, आंवला आदि फल से बाल धोने का, तेल आदि की मालिश करने का, उबटन करने का, स्नान करने के जल का, वस्त्र पहनने का, चन्दनादि का लेपन करने का, पुष्प सूंघने का, आभूषण पहनने का, धूप जलाने का, दूध आदि पीने का, चांवल-गेहूं आदि का, मूंग आदि की दाल का, दूध-दही आदि विगय का, शाक का, मधुर रस वाले फलों का, जीमने के द्रव्यों का, पीने के पानी का, इलायची, लौंग इत्यादि मुख को सुगन्धित करने वाली वस्तुओं का, घोड़ा, हाथी, रथ आदि सवारी का, जूते आदि पहनने का, पलंग आदि पर सोने का, सचित्त वस्तु के सेवन का, तथा इनसे बचे हुए बाकी के पदार्थों का, जो परिमाण ( मर्यादा ) किया है उसके सिवाय उपभोग तथा परिभोग में आने वाली सब वस्तुओं का त्याग करता हूं। जीवन पर्यन्त उनका मन वचन काया से सेवन नहीं करूंगा।

उ०—ऐसे कार्य या व्यापार को जिनमे ज्ञानावरणादि कर्मों का अधिक बंध होता हो, कर्मादान कहते हैं।

प्र०—क्या कर्मादान १५ ही होते हैं ?

उ०—नहीं, जुआ खेलना आदि जितने भी महा आरंभी काम है, वे सब कर्मादान समझने चाहिये।

प्र०—कुम्हार, सुनार, किसान वगैरह अंगारकर्म आदि करते हैं, क्या वे कर्मादानों की अपेक्षा सातवां व्रत नहीं अपना सकते हैं ?

उ०—पन्द्रह कर्मादानों में जो असंतिजन पोषणता आदि अत्यन्त ही निन्दनीय कर्म हैं, जिनमें त्रसादि जीवों की हिंसा हो, उनको तो यथासंभव छोड़ ही देना चाहिये। शेष जिनमें स्थावरकाय के जीवों की हिंसा होती हो, उनका परिमाण कर लेना चाहिये। परिमाण करने वाले कुम्हार, किसान आदि भी सातवें व्रतधारी हो सकते हैं।

खेती करने वाले श्रावक कर्मादानी होते हुए भी महारम्भी नहीं समझे जाते है।

---

**आठवां अणट्ठादण्ड वेरमण व्रत— चउव्विहे अणट्ठादण्डे पण्णत्ते तंजहा—अवज्झाणायरिए, पमायायरिए, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवएसे, एवं आठवां अणट्ठादंड सेवक का पच्चक्खाण (जिसमें आठ आगार- आए वा, राए वा, नाए वा, परिवारे वा, देवे वा,**

नागे वा, जक्खे वा, भूए वा, एत्तिएहिं आगारेहिं अण्णत्थ) जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं आठवां अणट्टा-दण्ड वेरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं— कंदप्पे, कुक्कुइए, मोहरिए, संजुत्ताहिगरणे, उवभोगपरिभोगाइरित्ते, तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

| | |
|---|---|
| अणट्ठादंड— | बिना प्रयोजन ऐसे काम करना जिसमें जीवों की हिंसा होती है अथवा जीवों को पीड़ा होती है। |
| अवज्झाणायरिए— | आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान के वश होकर इष्ट संयोग अनिष्ट वियोग की चिंता करना तथा किसी प्राणी को हानि पहुँचाने आदि का विचार करना। |
| पमायायरिए— | प्रमाद पूर्वक आचरण करना अर्थात् मद्य॰ विषय कषाय, निद्रा और विकथा में लगे रहना तथा प्रमाद से काम करना जिससे जीवों की हिंसा होती है |

१. मज्जं विसय कसाया, निद्दा निवहा य पंचमी भणिया।
एए पंच पमाया, जीवं पाडेंति संसारे ॥ १ ॥
भावार्थ— मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा ये पांच प्रमाद जीव को संसार में गिराते हैं।

जैसे–बिना देखे चलना, फिरना, वस्तु को उठाना, रखना, पानी, तेल, घी आदि के वर्तनों को उघाड़ा रखना इत्यादि ।

हिंसप्पयाणे— ( अनर्थ ) जिनसे जीवों की घात होती है ऐसी तलवार बन्दूक कुदाली फावड़ा आदि वस्तुएं दूसरे को देना ।

पावकम्मोवएसे— (अनर्थ) जिन कामों से जीव की हिंसा होती है जैसे मकान बनवाने, वृक्ष कटवाने आदि का उपदेश देना ।

कन्दप्पे— काम उत्पन्न करने वाली कथाएं करना

कुक्कुइए— दूसरों को हंसाने के लिये भांडों की तरह हंसी दिल्लगी करना या किसी की नकल करना ।

मोहरिए— ढीठता से निरर्थक बोलना ।

संजुत्ताहिगरणे— पूरी तरह काम देने वाले ऊखल, मूसल, शिला, लोढा, तलवार आदि हिंसाकारी हथियार या औजारों का प्रयोजन से अधिक संग्रह करना ।

उवभोगपरिभोगाइरित्ते— उपभोग और परिभोग में आने वाली खाने–पीने, पहनने आदि की वस्तुओं का अधिक संग्रह करना ।

भावार्थ— बिना प्रयोजन दोषजनक काम करने का नाम अनर्थदंड है, इसके चार भेद हैं—अपध्यान, प्रमादचर्या,

हिंसादान और पापोपदेश। इष्ट संयोग अनिष्ट वियोग की चिंता करना तथा दूसरों को हानि पहुंचाने आदि का विचार करना अपध्यान है। असावधानी से काम करना, धार्मिक कार्यों को त्याग कर दूसरे प्रमाद के कार्यों में लगे रहना प्रमादचर्या है। बिना प्रयोजन दूसरों को हल, ऊखल, मूसल, तलवार, बन्दूक आदि हिंसा के उपकरण देना हिंसादान है। मकान बनाने आदि पाप कार्यों का दूसरों को उपदेश देना पापोपदेश है। मैं इन चारों प्रकार के अनर्थदंड का त्याग करता हूं। (यदि आत्मरक्षा के लिये, राजा की आज्ञा से, जाति तथा परिवार (कुटुम्ब) के मनुष्यों के लिए तथा नाग, यक्ष, भूत आदि देवों के वशीभूत होकर अनर्थदंड का सेवन करना पड़े तो इसका आगार रखता हूं। इन आगारों के सिवाय) मैं जन्मपर्यन्त अनर्थदण्ड का मन वचन काया से स्वयं सेवन नहीं करूंगा न कराऊंगा। यदि मैंने काम जागृत करने वाली कथाएं की हों, भांडों की तरह दूसरों को हंसाने के लिए हंसी-दिल्लगी की हो या दूसरों की नकल की हो, निरर्थक बकवास की हो, तलवार, ऊखल-मूसल आदि हिंसाकारी हथियारों या औजारों का निष्प्रयोजन संग्रह किया हो, अपनी तथा कुटुम्बियों की आवश्यकताओं के सिवाय अन्न, वस्त्र आदि का संग्रह किया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं और मैं चाहता हूं कि मेरे वे सब पाप निष्फल हों।

## प्रश्नोत्तर

प्र०—अपध्यान किसे कहते हैं ?

उ०—रौद्रध्यान करना, विना कारण आर्तध्यान करना तथा सकारण तीव्र आर्तध्यान करना।

प्र०—क्या शिक्षा, अनुभव आदि देने वाले नाटक या सिनेमा देखना भी अनर्थदण्ड है?

उ०—ऐसा कोई एकान्त नियम तो नहीं होता है कि इन्हें देखना अनर्थदण्ड ही होता है। परन्तु नाटक, सिनेमा आदि अधिकतर विषय, कषाय और विकथा बढ़ाने वाले ही होते हैं अतः इनसे बचते रहना ही हितावह है। फिर भी कोई देखना चाहे तो इनकी मर्यादा रख कर आगार रूप में रख लेना चाहिये जिससे कि व्रत-भंग न हो।

---

नवमा सामायिक व्रत सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावनियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा ऐसी सद्दहणा प्ररूपणा तो है सामायिक का अवसर आये सामायिक करूं तब फरसना करके शुद्ध होऊं, एवं नवमे सामायिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं— मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठिसस्स करणया तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

| | |
|---|---|
| सावज्जं— | पाप युक्त। |
| जोगं— | मन, वचन, काया की प्रवृत्ति का। |
| पच्चक्खामि— | त्याग करता हूं। |
| जावनियमं— | नियम पर्यन्त। |
| पज्जुवासामि— | उपासना करता हूं, सेवन करता हूं। |
| सद्दहणा— | श्रद्धा, रुचि। |
| प्ररूपणा— | विवेचना ( प्रतिपादन करना )। |
| मणदुप्पणिहाणे— | मन में बुरे विचार उत्पन्न करना। |
| वयदुप्पणिहाणे— | कठोर या पापजनक वचन बोलना। |
| कायदुप्पणिहाणे— | बिना देखे पृथ्वी पर बैठना उठना आदि। |
| सामाइयस्स सइ-अकरणया- | सामायिक करने का काल विस्मरण करना। |
| सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया | समय होने से पहले ही सामायिक पार लेना या अनवस्थित रूप से सामायिक करना। |

भावार्थ— मैं मन वचन और काया की दुष्ट प्रवृत्ति को त्याग कर जितने काल का नियम किया है उसके अनुसार सामायिक व्रत का पालन करूंगा। मन में बुरे विचार नहीं करने से, कठोर या पापजनक वचन नहीं बोलने से, काया की हलन-चलन आदि क्रिया को रोकने से आत्मा में जो शांति उत्पन्न होती है उसको सामायिक कहते हैं। इसलिए मैं नियम पर्यन्त मन वचन काया से पापजनक क्रिया न करूंगा और न दूसरों से कराऊंगा। यदि मैंने सामायिक के समय मन में बुरे विचार किए हों, कठोर या पापजनक वचन बोले हों, अयतना पूर्वक शरीर से चलना फिरना, हाथ पांव को फैलाना संकोचना आदि क्रियाएं की

हों, सामायिक करने का काल याद न रखा हो तथा अल्प-काल तक या अनवस्थित रूप से जैसे-तैसे सामायिक की हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं और चाहता हुं कि मेरे सम्पूर्ण पाप निष्फल हों।

## प्रश्नोत्तर

प्र०— सामायिक किसे कहते हैं ?

उ०—जिससे समभाव की प्राप्ति हो उसे सामायिक कहते हैं।

---

दशवां देसावगासिक व्रत— दिनप्रतिदिन प्रभात से प्रारम्भ करके पूर्वादिक छहों दिशा में जितनी भूमिका की मर्यादा रखी है उसके उपरांत आगे जाने का तथा दूसरों को भेजने का पच्चक्खाण जाव अहो-रत्तं दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा । जितनी भूमिका की हद रखी है उसमें जो द्रव्यादिक की मर्यादा की है उसके उपरांत उपभोग परिभोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं दसवें देशावकाशिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते

**आलोउं—आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, बहिया पुग्गलपक्खेवे तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।**

जाव अहोरत्तं— एक दिन रात पर्यन्त ।

आणवणप्पओगे— मर्यादा किये हुए क्षेत्र से आगे की सचित्तादि वस्तु को मंगाना ।

पेसवणप्पओगे— परिमाण किये हुए क्षेत्र से आगे की वस्तु को मंगवाने के लिये या लेन-देन करने के लिये अपने नौकर आदि आज्ञाकारी मनुष्य को भेजना ।

सद्दाणुवाए— सीमा से बाहर के मनुष्य को खांस करके या और किसी शब्द के द्वारा अपना ज्ञान कराना ।

रूवाणुवाए— सीमा के बाहर के मनुष्य को अपने पास बुलाने के लिए अपना या पदार्थ का रूप दिखाना ।

बहियापुग्गलपक्खवे—सीमा से बाहर के मनुष्य को बुलाने के लिए कंकर आदि फेंकना ।

भावार्थ— छठे दिग्व्रत में सदा के लिये जो दिशाओं का परिमाण किया है, देशावकाशिक व्रत में उसका प्रतिदिन संकोच किया जाता है । मै उस संकोच किये गये दिशाओं के परिमाण से बाहर के क्षेत्र में जाने का तथा दूसरों को भेजने का त्याग करता हूं । एक दिन और एक रात तक

परिमाण की गई दिशाओं से आगे मन वचन काया से न स्वयं जाऊंगा और न दूसरों को भेजूंगा । मर्यादित क्षेत्र में द्रव्यादि का जितना परिमाण किया है उस परिमाण के सिवाय उपभोग परिभोग निमित्त से भोग का त्याग करता हूं। मन वचन काया से मैं उनका सेवन नहीं करूंगा। यदि मैंने मर्यादा से बाहर की कोई वस्तु मंगाई हो, मर्यादा से बाहर के क्षेत्र में किसी वस्तु को मंगाने के लिये या लेन-देन करने के लिए किसी को भेजा हो, मर्यादा से बाहर के क्षेत्र में रहने वाले मनुष्य को शब्द करके अपना ज्ञान कराया हो, मर्यादा से बाहर के मनुष्य को बुलाने के लिए अपना या पदार्थ का रूप दिखाया हो या कंकर आदि फेंक कर अपना ज्ञान कराया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं और चाहता हूं कि मेरे वे सब पाप निष्फल हों।

## प्रश्नोत्तर

प्र०—देसावगासिक व्रत किसे कहते हैं?

उ०—छठे व्रत में यावज्जीवन, वर्ष, चातुर्मास आदि के लिये जो दिशा की मर्यादा की थी, उसका पक्ष, दिन, मुहूर्तादि के लिये और भी अधिक संक्षेप करना, तथा दिशा की मर्यादा एक करण एक योग से की थी, उसे दो करण तीन योग से करना देसावगासिक व्रत है। इसी तरह पूर्व व्रतों में जो मर्यादा की है उनमें कमी करना भी देसावगासिक व्रत है।

ग्यारहवां प्रतिपूर्ण पौषधव्रत—असणं पाणं खाइमं साइमं का पच्चक्खाण, अबंभ सेवन का पच्चक्खाण, अमुक मणि सुवर्ण का पच्चक्खाण, मालावन्नगविलेवण का पच्चक्खाण, सत्थमुसलादिक सावज्ज जोग सेवन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं- न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है पौषध का अवसर आये पौषध करूं तब फरसना करके शुद्ध होऊं एवं ग्यारहवे प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समारियव्वा तंजहा ते आलोउं अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सेज्जासंथारए, अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय सेज्जासंथारए, अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमि, अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमि, पोसहस्स सम्मं अणणुपालणया, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

| | |
|---|---|
| असणं— | दाल, भात, रोटी आदि अन्न तथा दूध आदि विगय । |
| पाणं— | जल धोवन आदि पीने की वस्तु । |
| खाइमं— | फल मेवा औषधि आदि । |
| साइमं— | लौंग सुपारी इलायची चूर्ण आदि भोजन के बाद खाने लायक स्वादिष्ट पदार्थ । |

| | |
|---|---|
| अवंभसेवन— | मैथुन सेवन । |
| अमुक मणि सुवर्ण— | मणि, मोती तथा सोने-चांदी के आभूषण आदि । |
| माला— | फूलमाला । |
| वन्नग— | सुगन्धित चूर्णादि । |
| विलेवण— | चन्दन आदि का लेप । |
| सत्थ— | तलवार आदि शस्त्र । |
| मुसलादि— | मूसल आदि औजार । |
| सावज्ज जोग— | पाप सहित व्यापार । |
| अप्पडिलेहिय— | सोने के लिये कुश कम्बल आदि का जो संस्तारक । |
| दुप्पडिलेहिय— सेज्जासंथारए | आसन है उसको नहीं देखा हो या अच्छी तरह न देखा हो । |
| अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय सेज्जासंथारए | सोने के लिये कुश कम्बल आदि का जो संस्तारक आसन है उसका प्रमार्जन (पड़िलेहण) नहीं किया हो या अच्छी तरह न किया हो । |
| अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमि | मल मूत्र त्याग करने की भूमि को नही देखा हो या असावधानी से देखा हो । |
| अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय उच्चारपासवण भूमि | मल मूत्र त्याग करने की भूमि का प्रमार्जन नहीं किया हो या अच्छी तरह नहीं किया हो । |
| पौसहस्स— | पौषध का । |

सम्मं— सम्यक् प्रकार।
अणणुपालणया— पालन नहीं किया हो।

भावार्थ— मैं प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के विषय में एक दिन रात के लिए अशन पान खाद्य (खादिम) और स्वाद्य (स्वादिम) इन चारों प्रकार के आहार का त्याग करता हूं। अब्रह्मचर्य सेवन का, अमुक मणि, सुवर्ण आदि के आभूषण पहिनने का, फूलमाला पहिनने का, सुगन्धित चूर्ण और चन्दनादि के लेपन करने का, तलवार आदि शस्त्र और हल-मूसल आदि औजारों से होने वाले सभी सावद्य व्यापार का मैं त्याग करता हूं. यावत् एक दिन रात एक पौषध व्रत का पालन करता हुआ मैं उक्त पाप क्रियाओं को मन वचन काया से नहीं करूंगा और न दूसरों से करवाऊंगा, ऐसी मेरी श्रद्धा और प्ररूपणा तो है किन्तु पौषध का समय आने पर जब उसका पालन करूंगा तब शुद्ध होऊंगा। यदि मैंने पौषध में शय्या के लिए जो कुश कम्बल आदि का आसन है उसका पडिलेहन और प्रमार्जन न किया हो, अथवा अच्छी तरह पडिलेहन और प्रमार्जन न किया हो ऐसे ही मल मूत्र त्याग करने की भूमि का पडिलेहन और प्रमार्जन न किया हो अथवा अच्छी तरह न किया हो तथा सम्यक् प्रकार पौषध का पालन नहीं किया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं और चाहता हूं कि मेरा वह सब पाप निष्फल हो।

## प्रश्नोत्तर

प्र०—पौषध का न्यूनतम काल कितना है?

उ०—पौषध का न्यूनतम काल चार प्रहर ( १२ घंटे ) का बताया गया है । पौषध में अब्रह्म, शरीर सत्कार और सावद्ययोग का त्याग करना आवश्यक है। आहार का त्याग ऐच्छिक है ।

प्र०—पौषध कितने प्रकार का है ?

उ०—दो प्रकार का— १. प्रतिपूर्ण और २. देश । जिसमें चारों आहार सर्वथा छोड़े जाय, वह प्रतिपूर्ण पौषध है । जिसमें आहार किया जाय वह देश पौषध है।

प्र०—वर्तमान में देश पौषध को क्या कहते हैं ?

उ०—जिसमें केवल पानी पिया जाता है, ऐसे तिविहार उपवास युक्त को दसवां पौषध कहते हैं। जिसमें चारों आहार किये जाते हैं– ( असण, पाण, खाइम, और साइम ) ऐसे दिन के या दिन–रात्रि के पौषध को दया कहते हैं । जिसमें चारों आहार किये जाते हैं, ऐसे रात्रि के पौषध को संवर कहते हैं ।

प्र०—सामायिक और पौषध में क्या अन्तर है ?

उ०—एक सामायिक केवल एक मुहूर्त ( ४८ मिनिट ) की होती है, जब कि पौषध कम से कम भी चार प्रहर का ( लगभग १२ घंटे का ) होता है । सामायिक में निद्रा और आहार का त्याग करना ही होता है, जब कि पौषध में निद्रा भी ली जा सकती है और आहार भी किया जा सकता है । जैसे दिशावकाशिक व्रत पहले के आठ व्रतों का विशिष्ट वडा रूप है, वैसे ही पौषध व्रत भी सामायिक व्रत का वड़ा रूप है ।

प्र०—प्रतिलेखन और प्रमार्जन किसे कहते हैं ?

उ०— मुखवस्त्रिका आदि में कोई जीव है या नहीं ? इस दृष्टि से उन्हें बराबर देखना 'प्रतिलेखन' है। जीवादिक दिखाई देने पर उन्हें कष्ट न हो इस तरह पूंजनी से या हल्के हाथों से किसी एकान्त सुरक्षित स्थान पर ले जाकर छोड़ना 'प्रमार्जन' है। जीव न दिखाई देने पर भी रात्रि को रजोहरण से आगे चलने की भूमि शुद्ध करना तथा दिन को पौषधशाला की सचित्त रज साफ करना आदि भी प्रमार्जन है।

---

**बारहवां अतिथिसंविभागव्रत— समणे णिग्गंथे फासुयएसणिज्जेणं–असण पाण खाइम साइम वत्थपडिग्गहकंबलपायपुंच्छणेणं पडिहारियपीढफलगसेज्जासंथारएणं ओसहभेसज्जेणं पडिलाभेमाणे विहामि ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा है, साधु साध्वी का योग मिलने पर निर्दोष दान दूं तब शुद्ध होऊं। एवं बारहवें अतिथिसंविभाग व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं— सचित्तनिक्खेवणया, सचित्तपिहणया, कालाइक्कमे, परववएसे, मच्छरिआय तस्स मिच्छामि दुक्कडं।**

अतिथिसंविभागव्रत—जिसके आने की कोई तिथि या समय

समय साधु भोजन नही लेंगे और मेरा दानीपना प्रकट होगा।

परववएसे— दान नहीं देने की बुद्धि से अपनी वस्तु को दूसरे की कहना।

मच्छरियाए— अमुक पुरुष ने दान दिया है, क्या मैं उससे कृपण हूं या हीन हूं ? इस प्रकार ईर्षा करके दान देने में प्रवृत्ति करना या दान देकर पश्चाताप करना।

भावार्थ— मैं अतिथिसंविभाग व्रत का पालन करने के लिये निर्ग्रन्थ साधुओ को अचित्त दोष रहित अशन पान खाद्य स्वाद्य आहार का, वस्त्र पात्र कम्बल पादपौंछन चौकी पट्टा संस्तारक औषधि आदि का साधु-साध्वी का योग मिलने पर दान दूं तब शुद्ध होऊं ऐसी मेरी श्रद्धा प्ररूपणा है। यदि मैंने साधु को देने योग्य अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु पर रखा हो, अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु से ढका हो, भोजन के समय से पहले या पीछे साधु को भिक्षा के लिये प्रार्थना की हो, (या भोजन के समय साधु-साध्वी को दान देने की भावना न भाई हो), दान करने योग्य वस्तु को दूसरे की बता कर साधु को दान नहीं दिया हो, दूसरे को दान देते ईर्षा की हो, मत्सर भाव से दान दिया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं और चाहता हूं कि मेरा वह सब पाप निष्फल हो।

## प्रश्नोत्तर

प्र०— क्या साधु-साध्वियां ही दान के पात्र हैं ?

उ०—दान के उत्कृष्ट पात्र साधु-साध्वियां ही है अतः उनका बारहवें व्रत में उल्लेख किया गया है। वैसे प्रतिमाधारी श्रावक, व्रतधारी श्रावक और सामान्य स्वधर्मी सम्यक्त्वी भी दान के पात्र हैं। प्रतिमाधारी श्रावक दान के उत्तम पात्र की गणना में आता हैं। व्रतधारी मध्यम पात्र है और स्वधर्मी (सम्यक्त्वी) जघन्य पात्र है।

प्र०—क्या दीन-दुखियों को दान देना इस व्रत में आता है?

उ०—दीन-दुःखी अनुकम्पा—दान के पात्र हैं। अनुकम्पा से पुण्य कर्म का बंध होता है। धर्म का उद्देश्य कर्म-बंध का तोड़ना है। अतः जिन्हें दान देने से मुख्यतया निर्जरा होती है, उन्हीं साधु-साध्वियों को दान देना ही इस व्रत में बताया गया है।

प्र०—आधाकर्म दोष किसे कहते हैं?

उ०—साधु के निमित्त भोजन बनाना या उनके लिये कोई वस्तु खरीदना आधाकर्म दोष है।

## बड़ी संलेखना का पाठ

अहं भंते अपच्छिमसारणंतियसंलेहणा झूसणा आराहणा पौषधशाला पूंजे, पूंणके उच्चार पासवण भूमिका पडिलेहे, पडिलेह के गमणागमणे पडिक्कम्मे, पडिक्कम के दर्भादिक संथारा संथारे, संथार के दर्भा-

दिक संथारा दुरूहे, दुरूह के पूर्व तथा उत्तर दिशि सन्मुख पल्यंकादिक आसन से बैठे, बैठकर करयलसंपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी 'नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं' ऐसे अनन्त सिद्ध भगवान् को नमस्कार करके, 'नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपाविउकामाणं' जयवंते वर्तमान काल में महाविदेह क्षेत्र में विचरते हुए तीर्थंकर भगवान् को नमस्कार करके अपने धर्माचार्य जी महाराज को नमस्कार करता हूं। साधु प्रमुख चारों तीर्थ को खमाकर, सर्व जीव राशि को खमाकर, पहले जो व्रत आदरे हैं उनमें जो अतिचार दोष लगे हों, वे सर्व आलोच के, पडिक्कम के, निन्द के, निःशल्य होकर के, सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि, सव्वं मुसावायं पच्चक्खामि, सव्वं अदिण्णादाणं पच्चक्खामि, सव्वं मेहुणं पच्चक्खामि, सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि, सव्वं कोह माणं जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि, सव्वं अकरणिज्जं जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं— न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि मणसा, वयसा, कायसा, ऐसे अठारह पापस्थानक पच्चक्ख कर सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जाव-

ज्जीवाए, ऐसे चारों आहार पच्चक्ख कर जं पि य इमं सरीरं इट्ठं, कंतं, पियं, मणुण्णं, मणामं, थिज्जं, विसासियं समयं, अणुमयं, बहुमयं, भन्डकरण्डसमाणं, रयणकरंडगभूय, मा णं सीयं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा मा णं पिवासा, मा णं वाला, मा णं चोरा, मा णं दंसमसगा, मा णं वाइयं, पित्तियं, कप्फियं, संभीमं सण्णिवाइयं विविहा रोगायंका परीसहा उवसग्गा फासा फुसंतु, एवं पि य णं चरमेहिं उस्सासणिस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु ऐसे शरीर को वोसिरा कर कालं अणवकंखमाणे विहरामि, ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है, फरसना करूं तब शुद्ध होउं ऐसे अपच्छिम मारणांतिय संलेहणा झूसणा आराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं—इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

आराहणा— संलेखना का अन्तकाल तक पालन करना।
उच्चारपासवणभूमिका—मल मूत्र त्यागने की भूमिका ।
पडिलेह के— पडिलेहन करके, देख करके ।
गमणागमणे— जाने आने की क्रिया का ।
पडिक्कम के— प्रतिक्रमण कर ।
दुरूह के— संथारे पर आरूढ होकर ।
करयलसपरिग्गहियं—दोनों हाथ जोड़ कर ।
सिरसावत्तं— मस्तक से [1]आवर्त्तन करके ।
मत्थए अंजलि कट्टु—मस्तक पर हाथ जोड़ कर ।
एवं वयासी— इस प्रकार बोले ।
नमोत्थुणं— नमस्कार हो ।
अरिहंताणं भगवंताणं—अरिहन्त भगवान् को ।
जावसंपत्ताणं— यावत् मोक्ष को प्राप्त हुए को ।
संपाविउकामाणं— मोक्ष प्राप्ति की इच्छा वाले को ।
निःशल्य— माया, मिथ्यादर्शन और निदान (नियाणा) इन तीनों शल्यों से रहित ।
मिच्छादंसणल्लं— मिथ्यादर्शन शल्य (मिथ्यादर्शन रूपी कंटक) ।
अकरणिज्जं— नहीं करने योग्य ।
इट्ठं— इष्ट ।
कंतं— कान्तियुक्त ।
पियं— प्रिय–प्यारा ।
मणुण्णं— मनोज्ञ, मनोहर ।

---

१. आवर्त्तन—मस्तक पर जोड़े हुए हाथों को तीन बार ोर से बांयी तरफ घुमाना ।

उवसग्गा— उपसर्ग ( देव तिर्यंच आदि द्वारा दिया गया कष्ट )।
फासा फुसंतु— सम्बन्ध करें।
चरमेहिं— अन्त के।
उस्सासणिस्सासेहिं— उच्छ्वास नि-श्वासों(श्वासोच्छ्वासों)से।
वोसिरामि— त्याग करता हुं।
त्ति कट्टु— ऐसा करके।
कालं अणवकंखमाणे— काल की आकांक्षा ( वांछा ) नहीं करता हुआ।
विहरामि— विहार करता हूं, विचरता हूं।

भावार्थ— मृत्यु का समय निकट आने पर संलेखना तप करने के लिये पौषधशाला का प्रमार्जन ( शोधन ) करे। मल-मूत्र त्यागने की भूमि का प्रतिलेखन करे। चलने फिरने की क्रिया का प्रतिक्रमण कर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुंह करके पल्यंक (पालथी) आदि आसन लगा कर दर्भादि के आसन पर बैठे और हाथ जोड़ कर सिर से आवर्त्तन करता हुआ मस्तक पर हाथ जोड़ कर "नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं" इस प्रकार बोलकर सिद्ध भगवान् को नमस्कार करे। "नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपाविउकामाण "ऐसा बोलकर महाविदेह क्षेत्र में वर्तमान काल में जो तीर्थंकर विचर रहें हें उनको नमस्कार करे और पीछे अपने धर्माचार्य जी महाराज को नमस्कार करे। साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका इस प्रकार चतुर्विध संघ से क्षमा मांगकर समस्त जीवों से क्षमा मांगे। पहले धारण किये हुए व्रतों में जो अतिचार लगे हों उनकी आलोचना और निन्दा करे। सर्व हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य ( मैथुन ) और परिग्रह

तथा क्रोध, मान, माया, लोभ, यावत् मिथ्यादर्शनशल्य रूप अठारह पापस्थानों का तथा संपूर्ण पापजनक योग का तीन करण ओर तीन योग से त्याग करे । जीवन पर्यन्त चार प्रकार के आहार का त्याग करे, इसके वाद मनोज्ञ जो अपना शरीर है उससे ममत्व हटावे और संलेखना के अति-चारों को सेवन न करते हुए शुद्ध अनशन करे। इस प्रकार श्रद्धा और प्ररूपणा की शुद्धि के लिये नित्य संलेखना का पाठ करे, जव अन्तिम समय आये तव स्पर्शना ( संलेखना तप का पालन करके ) शुद्ध होवे ।

## प्रश्नोत्तर

प्र०—संलेखना किसे कहते हैं ?

उ०—शरीर व कषाय को कृश वनाने वाले आलोचना सहित तप को संलेखना कहते हैं ।

प्र०—संलेखना युक्त अनशन और आत्मघात में क्या अन्तर है ?

उ०—पहले तो यह समझ लेना आवश्यक है कि शरीरघात और आत्मघात क्या हैं ? जिससे शरीर का अन्त हो वह देहघात है और जिससे आत्मा की अधोगति हो, अवनति हो, संसार चक्र वढ़ता हो, वह आत्मघात है । संलेखना युक्त समाधि-मरण से शरीरघात होता है, आत्मघात नहीं होता । क्योंकि संलेखनायुक्त समा-धिमरण से आत्मा की उच्च गति होती है, उन्नति होती है और संसार-चक्र घटता है । अतः आत्मा के लिये शरीर-त्याग करना विराधना नहीं, वल्कि श्रेष्ठ-तम आराधना है ।

# तस्स धम्मस्स का पाठ

तस्स धम्मस्स केवलिपण्णत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए, विरओमि विराहणाए तिविहेण पडिक्कंतो वन्दामि जिणचउव्वीसं।

| | |
|---|---|
| तस्स— | उस। |
| धम्मस्स— | धर्म की। |
| केवलिपण्णत्तस्स— | केवली भाषित। |
| अब्भुट्ठिओमि— | उद्यत हुआ हूं। |
| आराहणाए— | आराधना के लिये! |
| विरओमि— | विरत हुआ हूं। |
| विराहणाए— | विराधना से। |
| तिविहेण— | मन वचन काया द्वारा। |
| पडिक्कंतो— | निवृत्त होता हुआ। |
| वन्दामि— | वन्दना करता हूँ। |
| जिणचउव्वीस— | चौवीस तीर्थंकरों को। |

भावार्थ—मैं केवली भाषित श्रावक धर्म की आराधना के लिये उद्यत हुआ हूँ और विराधना के विरत हुआ हूँ। श्रावक धर्म का सम्यक् प्रकार पालन न करने से जो दोष लगे हैं उनसे मन वचन काया द्वारा निवृत्त होता हुआ चौवीस तीर्थंकरों को नमस्कार करता हूँ।

——:0:——

# पांच पदों की वन्दना

पहिले पद श्री अरिहंत भगवान् जघन्य वीस तीर्थंकर जी उत्कृष्ट एकसौ साठ तथा एकसौ सित्तर देवाधिदेव जी, उनमें वर्तमान काल में वीस विरहमान जी महाविदेह क्षेत्र में विचरते हैं—एक हजार आठ लक्षण के धरणहार, चौतीस अतिशय, पैंतीस वाणी करके विराजमान, चौसठ इन्द्रों के वन्दनीय, अठारह दोष रहित, वारह गुण सहित— ( १ ) अनाश्रवत्व, ( २ ) अममत्व, ( ३ ) अकिंचनत्व, ( ४ ) छिन्न-शोक, ( ५ ) निरुपलेप, ( ६ ) व्ययगतरे, प्रेम, राग-द्वेष मोह, ( ७ ) निर्ग्रन्थ-प्रवचनोपदेशक, ( ८ ) शास्त्रनायक, ( ९ ) अनंत ज्ञानी, ( १० ) अनंतदर्शनी, ( ११ ) अनंत-चारित्री, ( १२ ) अनंत-वीर्य सयुक्त, आठ महा प्रतिहार्यों से युक्त, देव ध्वनि, भामण्डल, स्फटिक सिंहासन, अशोक वृक्ष, कुसुमवृष्टि देव-दुन्दुभि, छत्र धरावें, चँवर विजावें, पुरुषाकार पराक्रम के धरणहार, अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र में विचरें, जघन्य दो करोड़ केवली और उत्कृष्ट नव करोड़ केवली केवल ज्ञान, केवल दर्शन के धरणहार, सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव के जाननहार।

**सवैया**— नमो श्री अरिहंत, करमों का किया अन्त, हुआ सो क्षवलवन्त, करुणा भण्डारी है । अतिशय चौतीस धार, पैंतीस वाणी उच्चार, समभावे नर-नार, पर उपकारी है । शरीर सुन्दराकार, सूरज सो झलकार, गुण है अनन्त-सार, दोष परिहारी है । कहत है तिलोकरिख मन वच काया करी, लुलि लुलि वारम्वार, वन्दना हमारी है ॥ १ ॥

ऐसे श्री अरिहन्त भगवन्त दीनदयाल महाराज आपकी

दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे अरिहन्त भगवन्! मेंरा अपराध बारम्बार क्षमा करिये। हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ बार नमस्कार करता हूं।

**तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं ( करेमि ) वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वन्दामि।**

**आप मांगलिक हो, उत्तम हो। हे स्वामिन्! हे नाथ! आपका इस भव, परभव, भव-भव में सदा काल शरण हो।**

दूसरे पद श्री सिद्ध भगवान् पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध हुए हैं। आठ कर्म खपाकर मोक्ष पहुंचे हैं तीर्थसिद्धा, अतीर्थ-सिद्धा, तीर्थंकरसिद्धा, अतीर्थंकरसिद्धा, स्वयंबुद्ध सिद्धा, प्रत्येक-बुद्धसिद्धा, बुद्धबोधितसिद्धा, स्त्रीलिंगसिद्धा, पुरुषलिंगसिद्धा, नपुंसकलिंगसिद्धा, स्वलिंगसिद्धा अन्यलिंगसिद्धा, गृहस्थलिंग-सिद्धा, एकसिद्धा, अनेकसिद्धा जहां जन्म नहीं, जरा नहीं, मरण नहीं, भय नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दूःख नहीं, दारिद्रच नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, चाकर नहीं, ठाकर नहीं, भूख नहीं, तृषा नहीं, ज्योत में ज्योत विराजमान, सकल कार्य सिद्ध करके चौदह प्रकारे पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध भगवान् हुए हैं। अनन्त ज्ञान, अनंत दर्शन, अनन्त सुख, क्षायिक सम्यक्त्व, अटल अवगाहना, अमूर्तिक, अगुरुलघु, अनन्तवीर्य्य, ये आठ गुण करके सहित हैं।

**सवैया**— सकल करम टाल, वश कर लियो काल, मुगति में रह्या माल, आत्मा को तारी है । देखत सकल भाव, हुआ है जगत राव, सदा हो क्षायिक, भाव, भये अविकारी हैं ।। अचल अटल रूप, आवे नहीं भवकूप, अनूप सरूप ऊप, ऐसे सिद्ध धारी हैं । कहत है तिलोकरिख वताओ हे वासप्रभु, सदा ही उगंते सूर, वन्दना हमारी है ।। २ ।।

ऐसे श्री सिद्ध भगवन्त जी महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो बारम्बार हे सिद्ध भगवन् ! मेरा अपराध क्षमा करिये । हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ बार नमस्कार करता हूं । यावत् भव-भव सदा काल शरण हो ।

तीसरे पद श्री आचार्य महाराज छत्तीस गुण करके विराजमान— १. स्थविर ( श्रुत, दीक्षा, वय ), २. जाति-सम्पन्न, ३. कुल-सम्पन्न, ४. बल-सम्पन्न, ५. रूप-सम्पन्न, ६. विनय-सम्पन्न, ७- ज्ञान-सम्पन्न, ८. दर्शन-सम्पन्न, ९. चारित्र-सम्पन्न, १०. लाघव-सम्पन्न, ११. ओजस्वी, १२. तेजस्वी, १३. वर्चस्वी, १४. दशस्वी, १५. जित्क्रोधः, १६. जित्मानः, १७. जित्माया, १८. जित्लोभः, १९. जितेन्द्रिय, २०, जितृनिद्रः, २१. जित्परिषहः, २२. जीविताशभरणभय विद्रमुक्तः, २३. तप प्रधानः, २४ गुण प्रधानः, २५. चरण-करण निग्रहः, २६. आर्जव सम्पन्न, २७. मार्दव सम्पन्न, २८. क्षमा सम्पन्न, २९. गुप्ति सम्पन्न, ३०. मुक्ति संपन्न, ३१. विद्या संपन्न, ३२. सत्य प्रधान, ६३. शौच प्रधान, ३४. घोरव्रती, ३५. घोर तपस्वी, ३६. घोर ब्रह्मचर्य वासी । ये ३६ गुण और आठ सम्पदा— ( १. आचार-संपदा, २. श्रुत-संपदा,

३. शरीर–संपदा, ४. वचन–संपदा, ५. वाचना–संपदा, ६. मति–संपदा, ७. प्रयोगमति–संपदा, ८. संग्रहपरिज्ञा–संपदा ) सहित हैं।

**सवैया**— गुण है छत्तीस पूर, धरत धरम ऊर, मारत करम क्रूर, सुमति विचारी है। शुद्ध सो आचारवन्त, सुन्दर है रूप कन्त, भण्या है सब ही सिद्धान्त, वाचणी सुप्यारी है ॥ अधिक मधुर वेण, कोई नहीं लोपे केण, सकल जीवों का सेण, कीरत अपारी है। कहत है तिलोकरिख, हितकारी देत सीख, ऐसे आचारज ताकूं, वन्दना हमारी है ॥ ३ ॥

ऐसे श्री आचार्य महाराज न्यायपक्षी, भद्रिक परिणामी, परम पूज्य, कल्पनीय अचित वस्तु के ग्रहणहार, सचित्त के त्यागी, वैरागी, महागुणी, गुणों के अनुरागी, सोभागी हैं। ऐसे श्री आचार्य महाराज आपकी दिवस संबन्धी अविनय आशातना की हो तो बारम्बार हे आचार्य महाराज! मेरा अपराध आप क्षमा करिये। हाथ जोड़, मान मोड़, शोश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ बार नमस्कार करता हूं। यावत् भव–भव सदाकाल शरण हो।

चौथे पद श्री उपाध्याय महाराज पच्चीस गुण करके सहित ( ग्यारह अङ्ग, बारह उपांग, चरणसत्तरी, करण-सत्तरी—इन पचीस गुण करके सहित ) हैं तथा ग्यारह अंग का पाठ अर्थ सहित संपूर्ण जानें, चौदह पूर्व के पाठक और निम्नोक्त बत्तीस सूत्रों के जानकार हैं। ग्यारह अंग— आचारांग, सूयगडांग, ठाणांग, समवायांग, विवाहपन्नत्ति ( भगवती ), णायाधम्मकहा ( ज्ञाताधर्मकथा ), उवासगदसा,

अन्तगडदसा, अणुत्तरोववाई, पण्हावागरण ( प्रश्नव्याकरण ), विवायसुय ( विपाकश्रुत ) ।

वारह उपांग —उववाई, रायप्पसेणी, जीवाजीवाभिगम, पन्नवणा, जम्बूदीवपन्नत्ति, चन्दपन्नत्ति, सूरपन्नत्ति, निरयावलिया, कप्पवडसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वण्हिदसा ।

चार मूल सूत्र— उत्तरज्झयणं ( उत्तराध्ययन ), दसवेयालियसुत्तं ( दशवैकालिक सूत्र ), णदीसुत्तं ( नन्दी सूत्र ), अणुणोगद्दार ( अनुयोगद्वार ) ।

चार छेद— दसासुयच्खंधो ( दशाश्रुतस्कन्ध ), विहक्कप्पो ( वृहत्कल्प ), ववहारसुत्तं ( व्यवहार सूत्र ), णिसीहसुत्तं ( निशीथ सूत्र ) और वत्तीसवां आवस्सगं ( आवश्यक ) तथा अनेक ग्रन्थ के जानकार, सात नय, निश्चय व्यवहार, चार प्रमाण आदि स्वमत तथा अन्यमत के जानकार मनुष्य या देवता कोई भी विवाद में जिनको छलने में समर्थ नहीं, जिन नहीं पण जिन सरीखे, केवली नही पण केवली सरीखे हैं ।

सवैया— पढ़त इग्यारे अंग, करमों सूं करे जंग, पाखण्डी को मान भंग, करण हुशियारी है । चवदे पूरव धार, जानत आगम सार, भवियन के सुखकार, भ्रमता निवारी है ॥ पढ़ावे भविक जन, स्थिर कर देत मन, तप कर तावे तन, ममता निवारी है । कहत है तिलोकरिख, ज्ञानभानु परतिख. ऐसे उपाध्याय ताकूं, वन्दना हमारी है ॥४॥

ऐसे श्री उपाध्याय महाराज मिथ्यात्वरूप अन्धकार

**सवैया**—आदरी संयम भार, करणी करे अपार, समिति गुपति धार, विकथा निवारी है । जयणा करे छह काय, सावद्य न बोले वाय बुझाय कषाय लाय, किरिया भण्डारी है । ज्ञान भणे आठों याम, लेवे भगवन्त नाम, धरम को करे काम, ममता कूं मारी है । कहत है तिलोक-रिख, करमों का टाले विख, ऐसे मुनिराज ताकूं, वन्दना हमारी है ॥ ५ ॥

ऐसे मुनिराज महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अवि-नय आशातना की हो तो वारम्वार हे मुनिराज ! मेरा अपराध क्षमा करिये। हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ वार नमस्कार करता है। यावत् भव-भव सदा काल शरण हो।

## दोहा

अनन्त चौबीसी जिन नमूं, सिद्ध अनन्ते कोड़ ।
केवल ज्ञानी गणधरा, वन्दू वे कर जोड़ ॥ १ ॥

दोय कोडि केवलधरा, विहरमान जिन बीस ।
सहस्र युगल कोडी नमूं, साधु नमूं निशदीस ॥ २ ॥

धन साधु धन साधवी, धन धन है जिनधर्म ।
ये समर्यां पातक झरें, टूटे आठों कर्म ॥ ३ ॥

अरिहन्त सिद्ध समरूं सदा, आचारज उपाध्याय ।
साधु सकल के चरण को, वन्दू शीश नमाय ॥ ४ ॥

शासन नायक सुमरिये, भगवन्त वीर जिणंद ।
अलिय विघन दूरे हरे, आपे परमानन्द ॥ ५ ॥

अंगूठे अमृत बसे, लब्धि तणा भण्डार ।
श्री गुरु गौतम समरिये, वंछित फल दातार ॥ ६ ॥

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किसके लागूं पाय ।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दिया बताय ॥ ७ ॥

लोभी गुरु तारे नहीं, तिरे सो तारण हार ।
जो तूं तिरियो चाह तो, निर्लोभी गुरु धार ॥ ८ ॥

पर उपकारी साधुजी, तारण-मरण जहाज ।
कर जोड़ी हूँ नित नमूं, धन मोटा मुनिराज ॥ ९ ॥

साधु सती ने शूरमा, ज्ञानी ने गजदन्त ।
इतना पीछा ना हटे, जो जुग जाय पडन्त ॥१०॥

गुरु दीपक गुरु चांदणो, गुरु बिन घोर अन्धार ।
पलक न विसरूं तुन भणी, गुरु मुझ प्राण आधार ॥११॥

# आयरिय उवज्झाए का पाठ

आयरियउवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुलगणे अ ।
जे मे केइ कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि ॥१॥

सव्वस्स समणसंघस्स, भगवओ अंजलिं करिअ सीसे ।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥२॥

सव्वस्स जीवरासिस्स, भावओ, धम्मनिहियनियचित्तो ।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥३॥

( मरण समाधि प्रकीर्णक और संस्तारक प्रकीर्णक )

**रागेण व दोसेण व, अहवा अकयण्णुणा पडिनिवेसेणं।**
**जं मे किंचि वि भणिअं, तमहं तिविहेण खामेमि ॥४॥**

| | |
|---|---|
| आयरिय— | आचार्य महाराज । |
| उवज्झाए— | उपाध्याय महाराज । |
| सीसे— | शिष्यों । |
| साहम्मिए— | साधर्मिकों । |
| कुल— | कुल—एक आचार्य का शिष्य समुदाय । |
| गणे— | गण-समूह पर । |
| जे— | जो । |
| मे— | मैंने । |
| केइ— | कुछ । |
| कसाया— | क्रोधादि कपाय ( किया हो ) । |
| सव्वे— | सव को । |
| तिविहेण— | तीन योग से ( मन, वचन, काया से ) |
| खामेमि— | खमाता हूं, क्षमा चाहता हूं । |
| सव्वस्स— | सभी । |
| समण संघस्स— | श्रमण संघ—साधु समुदाय । |
| भगवओ— | भगवान् को । |
| अंजलि— | दोनों हाथ जोड़ । |
| करिअ— | करके । |
| सीसे— | शिर पर । |
| सव्वं— | सब को । |
| खमावइत्ता— | क्षमा करके । |
| खमामि— | क्षमा करता हूं । |
| सव्वस्स— | सब का । |

अहयं पि— मैं भी ।
सव्वस्स— सभी ।
जीवरासिस्स— जीव राशि से ।
भावओ— भाव से ।
धम्म निहियनियचित्तो—धर्म में चित्त को स्थिर करके ।
सव्व— सब को ।
खमावइत्ता— क्षमा करके ।
खमामि— खमता हूँ, क्षमा करता हूँ ।
रागेण— राग से ।
दोसेण— द्वेष से ।
अहवा— अथवा ।
अकयण्णुणा— अकृतज्ञता से ।
पडिनिवेसेणं— आग्रहवश ।
जं— जो ।
मे— मैंने ।
किंचि वि— कुछ भी ।
भणिअं— कहा है ।
तं— उसके लिए ।
अहं— मैं ।
तिविहेण— मन, वचन, काया से ।
खामेमि— क्षमा चाहता हूं ।

भावार्थ—आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, साधर्मिक, कुल और गण उनके ऊपर मैंने जो कुछ कषाय किये हों उन सब की उन सभी से मैं मन वचन काया से माफी चाहता हूँ ॥ १ ॥

हाथ जोड़ कर सब पूज्य मुनिगणों से मैं अपराध की क्षमा चाहता हूँ और मैं भी उन्हें क्षमा करता हूं ॥ २ ॥

धर्म में चित्त को स्थिर करके सम्पूर्ण जीवों से मैं अपने अपराध की क्षमा चाहता हूँ और स्वयं भी उनके अपराध को क्षमा करता हूं ॥ ३ ॥

राग, द्वेष, अकृतज्ञता अथवा आग्रहवश मैंने जो कुछ भी कहा है उसके लिए मैं मन वचन काया से सभी से क्षमा चाहता हूँ ॥ ४ ॥
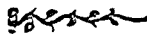
# अढ़ाई द्वीप का पाठ

अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र में श्रावक-श्राविका दान देवें, शील पालें, तपस्या करें, शुभ भावना भावें, संवर करें, सामायिक करें, पौषध करें, प्रतिक्रमण करें, तीन मनोरथ चितवें, चौदह नियम चितारें, जीवादिक नव पदार्थ जानें, श्रावक के इक्कीस गुण करके युक्त, एक व्रतधारी, जाव बारह व्रतधारी जो भगवान् की आज्ञा में विचरें ऐसे बड़ों से हाथ जोड़ पैर पड़ कर क्षमा मांगता हूँ, आप क्षमा करें, आप क्षमा करने योग्य हैं और छोटों से समुच्चय खमाता हूँ ।

# चौरासी लाख जीवयोनि का पाठ

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्पकाय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वायुकाय, दस लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख बेइन्द्रिय, दो लाख तेइन्द्रिय, दो लाख चउरिन्द्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यंच पंचेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य । ऐसे चार गति में चौरासी लाख जीवयोनि के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त जीवों में से किसी जीव का हालते, चालते, उठते, बैठते, सोते हनन किया हो' कराया हो, करते हुए का अनुमोदन किया हो, छेदा हो, भेदा हो, किलामना उपजाई हो तो मन, वचन, काया करके अठारह* लाख चौबीस हजार एक सो बीस प्रकारे तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

---

* जीव तत्त्व के ५६३ भेदों को 'अभिहया वत्तिया' आदि दस के साथ गुणाकार करने से ५६३० भेद होते हैं । फिर इन को राग और द्वेष के साथ द्विगुण करने से ११२६० भेद बनते हैं । फिर इन्हीं को मन वचन काया के साथ त्रिगुणा करने से ३३७८० भेद हो जाते हैं, फिर इनको तीन करणों के साथ गुणा करने से १०१३४० भेद बन जाते हैं, इनको भी फिर तीन काल के साथ गुणाकार करने से ३०४०९० भेद हो जाते हैं । फिर इनको अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, गुरु और आत्मा इस प्रकार छह से गुणा करने पर १८२४१२० भेद बनते हैं अर्थात् इस प्रकार से मैं मिच्छामि दुक्कडं देता हूं और फिर पाप कर्म न करने की प्रतिज्ञा करता हूं ।

# खामेमि सव्वे जीवा का पाठ

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणइ ॥

एवमहं आलोइय, निंदिय गरहिय दुगंछियं सम्मं ।
तिविहेण पडिक्कंतो, वंदामि जिणे चउव्वीसं ॥

| | | | |
|---|---|---|---|
| खामेमि— | खमाता हूं । | मज्झं— | मेरी । |
| सव्वे— | सब । | न— | नहीं । |
| जीवा— | जीवों को । | केणइ— | किसी के साथ । |
| सव्वे— | सभी । | एवं— | इस प्रकार । |
| जीवा— | जीव । | अहं— | मैं । |
| खमंतु— | क्षमा करें । | आलोइय— | आलोचना करके. |
| मे— | मुझको । | निंदिम— | आत्म साक्षी से निन्दा करके । |
| मित्ति— | मित्रता है । | गरहिय— | गुरु साक्षी से गर्हा करके |
| मे— | मेरी । | दुगंछियं— | जुगुप्सा (ग्लानि–घृणा) करके । |
| सव्व-भूएसु— | सभी प्राणियों से । | सम्मं— | सम्यक् प्रकार । |
| वेरं— | शत्रुता । | तिविहेण— | मन वचन काया द्वारा । |

पडिक्कंतो— पापों से निवृत्त होता हुआ ।
वंदामि— वन्दना करता हूं ।
जिणे— अरिहन्त भगवान् को ।
चउव्वीसं— चौवीस ।

भावार्थ — मैंने किसी जीव का अपराध किया हो तो मैं उससे क्षमा चाहता हूँ। सभी प्राणी मुझे क्षमा करें। संसार के प्राणी-मात्र से मेरी मित्रता है, मेरा किसी से वैर-विरोध नहीं है। मैं अपने पापों की आलोचना, निन्दा, गर्हा और जुगुप्सा करता हूं तथा मन वचन काया से उन पापों से निवृत्त होता हुआ चौबीस तीर्थंकरों की वन्दना करता हूँ।

## प्रायश्चित्त का पाठ

**देवसियपायच्छित्तविसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं।**

पायच्छित्त— प्रायश्चित्त।
विसोहणत्थं— विशुद्ध करने के लिए।

भावार्थ— मैं दिवस सम्बन्धी प्रायश्चित्त की शुद्धि के लिए कायोत्सर्ग करता हूँ।

——:0:——

## समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ

**गंठिसहियं, मुट्ठिसहियं, नमुक्कारसहियं, पोरिसियं, साड्ढपोरिसियं (अपनी-अपनी इच्छानुसार) तिविहंपि**

**चउव्विहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं अपनी अपनी धारणा प्रमाणे पच्चक्खाण अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं* वोसिरामि ।**

गंठिसहियं— गांठ सहित यानि जब तक गांठ बंधी रखूं तब तक मुट्ठी सहित अर्थात् जब तक मैं मुट्ठी बंद रखूं तब तक ।

नमुक्कारसहियं— नमस्कार मन्त्र बोल कर सूर्योदय से लेकर एक मुहूर्त ( ४८ मिनिट ) तक का त्याग ।

पोरिसियं— एक पहर का त्याग ।

साड्ढपोरिसियं— डेढ़ पहर तक त्याग ।

अण्णत्थणाभोगेणं— बिना उपभोग के कोई वस्तु सेवन की हो ।

सहसागारेणं— अकस्मात् जैसे पानी बरसता हो और मुख में छींटे पड़ जावें या छाछ बिलोते समय मुंह में छींटे पड़ जावें तो मेरे आगार है ।

महत्तरागारेणं— महापुरुषों के आगार से अर्थात् महापुरुषों—गुरुजन के निमित्त से त्याग का भङ्ग करना पड़े तो इसका मेरे आगार है।

---

* स्वयं पच्चक्खाण करता हो तब 'वोसिरामि' ऐसा बोले और जब दूसर को पच्चक्खाण कराना हो तब 'वोसिरे' ऐसा बोले ।

सव्वसमाहिवत्ति-याागारेणं ] सब प्रकार की शारीरिक, मानसिक नीरोगता रहे तब तक अर्थात् शरीर में भयंकर रोग हो जाय तो दवाई आदि का आगार है।

वोसिरामि— त्याग करता हूं।

भावार्थ— जब तक गांठ बंधी रखूं तब तक या मुट्ठी बन्द रखूं तब तक या सूर्योदय से ४८ मिनट तक या एक पहर तक या डेढ़ पहर तक ( इनमें से जिसको जिस प्रकार का त्याग करना हो उसको उसका ही उच्चारण करना चाहिए ) अशन, खाद्य, स्वाद्य, इन तीनों प्रकार के आहारों का अथवा अशन, पानी, खाद्य, स्वाद्य इन चार प्रकार के आहारों का आगार रख कर त्याग करता हूं। आगार ये हैं— प्रत्याख्यान का उपभोग न रहने से या अकस्मात् कुछ खाने-पीने में आ जाय अथवा गुरुजनों की आज्ञा से कुछ खाना-पीना पड़े तो मेरे आगार है तथा स्वस्थ अवस्था में मेरे यह त्याग है, अस्वस्थ होने पर आवश्यक औषधि अनुपान आदि का मेरे आगार है।

## अन्तिम पाठ

**प्रतिक्रमण अविधि से किया हो, सूत्र विपरीत किया हो तथा इन छः आवश्यकों में जानते-अजानते जो कोई अतिचार दोष लगा हो, पाठ उच्चारण करते**

काना, मात्रा, अनुसार, पद, अक्षर न्यूनाधिक आगे पीछे कहा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण, अव्रत का प्रतिक्रमण, कषाय का प्रतिक्रमण, प्रमाद का प्रतिक्रमण, अशुभ योग का प्रतिक्रमण, इन पांच प्रतिक्रमण में से कोई प्रतिक्रमण न किया हो तथा चलते, फिरते, उठते, बैठते, पढ़ते, गुणते, जानते, अजानते, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप सम्बन्धी कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

गये काल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल की समायिक[1] और आगामी काल का पच्चक्खाण, इनमें जो कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

❀ इति प्रतिक्रमण सूत्र समाप्त ❀

---
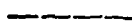
१. सामायिक, संवर या पोषध जो भी उस समय हो वह बोलना चाहिये ।

# प्रतिक्रमण की विधि

आसन पर खड़े होकर पूर्व तथा उत्तर दिशा की ओर मुंह करके शासनपति श्री भगवान् महावीर स्वामी को एवं वर्तमान में अपने गुरु महाराज को 'तिक्खुत्तो' के पाठ से तीन वार वन्दना करके 'चउवीसथव' की आज्ञा लेकर चउवीसथव करे। चउवीसथव में 'नवकार मंत्र', 'इच्छाकारेण' और 'तस्सउत्तरी' का पाठ कह कर काउस्सग्ग करे। काउस्सग्ग में 'लोगस्स' का पाठ दो बार मन में कहे तथा 'नमो अरिहंताणं' कह कर काउस्सग्ग पारे। फिर 'नवकार मंत्र' और 'ध्यान का पाठ' (काउस्सग्ग में आर्तध्यान रौद्रध्यान ध्याया हो, धर्मध्यान न ध्याया हो, काउस्सग्ग में मन वचन काया चलित हुए हों तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं) और 'लोगस्स' का पाठ प्रकट बोले। फिर बैठ कर बांया घुटना खड़ा करके 'णमोत्थुणं' का पाठ दो बार कहे। दूसरे 'णमोत्थुणं' के पाठ में ठाणं संपताणं' के बदले 'ठाणं संपाविउकामाणं' कहे। फिर खड़ा होकर प्रतिक्रमण करने की आज्ञा लेवे। 'इच्छामि णं भंते' और 'नवकार मंत्र' का पाठ कहकर 'तिक्खुत्तो' के पाठ से पहले आवश्यक की आज्ञा लेवे। पहले सामायिक आवश्यक में 'करेमि भंते', 'इच्छामि ठामि और 'तस्स उत्तरी' की पाटी बोल कर काउस्सग्ग करे। काउस्सग्ग में ९९ अतिचार की पाटियां (आगमे तिविहे, दंसण समकित, वारह व्रतों के अतिचार पन्द्रह कर्मादान सहित, छोटी संलेखना), 'अठारह पापस्थान' और इच्छामि ठामि' का चिन्तन करे। काउस्सग्ग में सभी पाटियों के अन्त में

'मिच्छामि दुक्कडं' के बदले 'आलोउं' कहे। 'णमो अरिहंताणं' कह कर काउस्सग्ग पारे। बाद में 'नवकार मंत्र' और 'ध्यान का पाठ' कहे। यहां पहला सामायिक आवश्यक समाप्त हुआ। फिर 'तिक्खुत्तो' के पाठ से दूसरे आवश्यक की आज्ञा लेवे।

दूसरे 'चउवीसथव' आवश्यक से 'लोगस्स' का पाठ कहे। फिर 'तिक्खुत्तो' के पाठ से तीसरे आवश्यक की आज्ञा लेवे। तीसरे 'वंदना' आवश्यक में 'इच्छामि खमासमणो' का पाठ विधि पूर्वक दो बार कहे। विधि इस प्रकार है। 'निसीहिआए' पद आवे तब बैठ कर दोनों घुटने खड़े रख कर दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक नमा कर आगे का पाठ बोले। 'अहो कायं काय' इन छह अक्षरों का उच्चारण करते समय तीन आवर्त्तन करे। दोनों हाथ जोड़ लम्बे कर दसों अंगुलियों से गुरु महाराज के चरण स्पर्श कर या चरण स्पर्श की भावना से दसों अंगुलियां भूमि पर लगाकर मंद स्वर से 'अ' अक्षर का उच्चारण करे और फिर दसों अंगुलियां मस्तक पर लगाते हुए 'हो' अक्षर ऊंचे स्वर से कहे। इस प्रकार दोनों अक्षर कहने से पहला आवर्त्तन हुआ। इसी विधि से 'का' और 'यं' दोनों अक्षरों का उच्चारण करने से दूसरा आवर्त्तन और 'का' और 'य' इन दोनों का उच्चारण करने से तीसरा आवर्त्तन होता है। इसी तरह 'जत्ता भे जवणिज्जं च भे' इन नौ अक्षरों का उच्चारण करते हुए तीन आवर्त्तन करे। ऊपर लिखे अनुसार दोनों हाथ जोड़ लम्बे कर दसों अंगुलियों से गुरु महाराज के चरण स्पर्श कर अथवा चरण स्पर्श की भावना से दसों

अंगुलियां भूमि पर लगा कर 'ज' अक्षर मंद स्वर से कहें, फिर 'त्ता' अक्षर मध्यम स्वर से और दसों अंगुलियां मस्तक पर लगाकर 'भे' अक्षर ऊंचे स्वर से कहें। इस प्रकार 'जत्ता भे' ये तीन अक्षर बोलने से पहला आवर्त्तन हुआ। इसी विधि से 'ज' 'व' 'णि' इन तीन अक्षरों का उच्चारण क्रमशः मंद, मध्यम और उच्च स्वर से करने से दूसरा आवर्त्तन होता है। 'ज्जं', 'च', 'भे' का भी इसी विधि से मंद, मध्यम और उच्च स्वर से उच्चारण करने से तीसरा आवर्त्तन होता है। इस तरह ३×३=९ आवर्त्तन हुए। जहां तित्तीसन्नयराए' शब्द आवे वहां खड़ा हो जाय और खड़े होकर शेष पाठ पूरा करे। इसी विधि से 'इच्छामि खमासमणो' का पाठ दूसरी बार बोले। किन्तु इस बार 'आवस्सियाए' पद नहीं बोले और 'तित्तीसन्नयराए' शब्द आने पर खड़ा न होकर बैठे हुए ही पाठ समाप्त करे। तीसरा वन्दना आवश्यक समाप्त हुआ। 'तिक्खुत्तो' के पाठ से चौथे आवश्यक की आज्ञा लेवे।

चौथे प्रतिक्रमण आवश्यक में खड़े होकर ९९ अतिचार की पाटियां, 'अठारह पापस्थान', 'इच्छामि ठामि', जिनका काउस्सग्ग में चिन्तन किया था, प्रकट कहे। सभी पाटियों के अन्त में 'मिच्छामि दुक्कडं' कहे। फिर 'समुच्य पाठ' कह कर 'तस्स सव्वस्स' का पाठ कहे। बाद में श्रावक सूत्र की आज्ञा लेकर दाहिना घुटना ऊंचा रख कर बैठे। फिर 'नवकार मंत्र', 'करेमि भंते', 'चत्तारि मंगलं', 'इच्छामि ठामि', 'इच्छाकारेण', 'आगमे तिविहे', 'दंसण समकित' और बारह व्रत अतिचार सहित कहे। बाद में पालखी (पालकी) लगाकर बैठे

और 'बड़ी संलेखना' का पाठ कहे। फिर इस तरह समकित पूर्वक बारह व्रत संलेखना सहित—इनके विषय अतिक्रम, व्यति क्रम, अतिचार, अनाचार जानते—अजानते मन वचन काया से कोई पाप दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं' कह कर 'अठारह पापस्थान' और 'इच्छामि ठामि' का पाठ कहे। फिर खड़े होकर 'तस्स धम्मस्स' का पाठ बोले। और ऊपर लिखी विधि से दो बार 'इच्छामि खमासमणो' का पाठ बोले। फिर भाव वन्दना की आज्ञा लेकर दोनों घुटने नमाकर, घुटनों पर दोनों हाथ जोड़ कर रखे और मस्तक नीचा नमाकर 'नवकार मंत्र' कह कर पांच पदों की वन्दना कहे। फिर पालखी लगा कर बैठे और 'अनन्त चौवीसी' आदि दोहे, 'आयरिय उवज्झाए का पाठ', 'अढ़ाई द्वीप का पाठ', 'चौरासी लाख जीव योनि का पाठ' बोलकर 'अठारह पापस्थान' कहे। यहां चौथा प्रतिक्रमण आवश्यक समाप्त हुआ। फिर 'तिक्खुत्तो' के पाठ से पांचवें आवश्यक की आज्ञा लेवे।

पांचवें काउस्सग्ग आवश्यक में 'प्रायश्चित्त का पाठ', 'नवकार मंत्र', 'करेमि भंते', 'इच्छामि ठामि' और 'तस्स-उत्तरी' का पाठ कह कर काउस्सग्ग करे। काउस्सग्ग में देवसिय, रायसी प्रतिक्रमण में ४ लोगस्स का, पक्खी प्रति-क्रमण में ८ लोगस्स का, चौमासी प्रतिक्रमण में १२ लोगस्स का और संवत्सरी प्रतिक्रमण में २० लोगस्स का ध्यान करे। 'णमो अरिहंताणं' कह कर काउस्सग्ग पारे। बाद में 'नवकार मंत्र', 'ध्यान का पाठ' और 'लोगस्स' का पाठ बोलकर दो बार 'इच्छामि खमासमणा' का पाठ उपरोक्त

विधि सहित बोले । पांचवां काउस्सग्ग आवश्यक समाप्त हुआ । 'तिक्खुत्तो' के पाठ में छठे आवश्यक की आज्ञा लेवे।

छठे पच्चक्खाण आवश्यक में खड़े होकर * साधु महाराज से शक्ति अनुसार पच्चक्खाण करे । यदि साधु महाराज नहीं विराजते हों तो बड़े श्रावक जी से पच्चक्खाण करे। यदि वे भी नहीं हों तो स्वयं 'समुच्चय पच्चक्खाण' के पाठ से पच्चक्खाण करे। (१) सामायिक (२) चउवीसथव (३) वन्दना (४) प्रतिक्रमण (५) काउस्सग्ग (६) पच्चक्खाण ये छः आवश्यक समाप्त हुए । फिर अन्तिम पाठ बोलकर नीचे बैठे और बायां घुटना खड़ा करके उपरोक्त विधि से दो बार 'णमोत्थुणं' बोले । फिर 'तिक्खुत्तो' के पाठ से गुरु महाराज को वन्दना करे । यदि वे वहां नहीं विराजते हो तो पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुंह करके श्री महावीर स्वामी तथा धर्माचार्य जी को वन्दना करे और बाद में स्वधर्मी भाइयों को खमावे । बाद में चौवीसी, स्तवन आदि बोले।

**नोट**— प्रतिक्रमण में जहां 'देवसिय' शब्द आया है वहां देवसिय प्रतिक्रमण में 'देवसिय' राइय प्रतिक्रमण में 'राइय', पक्खी प्रतिक्रमण में 'पक्खी सम्बन्धी', चौमासी प्रतिक्रमण में 'चौमासी सम्बन्धी' और संवत्सरी प्रतिक्रमण में 'संवत्सरी सम्बन्धी' कहना चाहिए।

---

* श्राविकाएं साध्वी जी महाराज से अथवा बड़ी श्राविका से अथवा स्वयं पच्चक्खाण करें ।

# चौवीसी

अरिहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय, साधु समरण करना, तीर्थङ्कर रतनां री माला, समरण नित करणा । समरीये माला, मेरी जान समरीये माला, ज्यूं कटे कर्म का जाला ॥ जीव तणा रखवाला, ध्यान तीर्थङ्कर का धरणा रे । ध्या० ॥ पाँच पद चौवीस जिनन्दजी का, नित्य लीजे शरणा ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ श्री ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन, अति आनन्द करना । सुमति पदम सुपार्श्व चन्द्रप्रभु, दास रहूँ चरणा ॥ चरण नित्य वन्दू, मेरी जान चरण नित्य वन्दू । ज्यूं कटे कर्म का फन्दा, तुम तजो जगत का धन्धा, दीठा होय नयन अमिय ठरणा रे ॥ दीठा० ॥ पांच पद० ॥ २ ॥ सुविधि शीतल श्रेयांस वासुपूज्य हृदय मांहे धरणा । विमल अनन्त श्रो धर्म शांतिजी, दास रहूँ चरणा ॥ जिनन्द मोहे तारो, मेरी जान जिनन्द मोहे तारो । संसार लगे मोहे खारो, वैराग्य लगे मोहे प्यारो । मैं सदा दास चरणां रो, नाथजी अब कृपा करणा रे ॥ नाथ० ॥ पांच पद० ॥ ३ ॥ कुंथु अर मल्लि मुनिसुव्रतजी, प्रभु तारण तरणा । नमी नेम पार्श्व महावीरजी, पाप परा हरणा ॥ तिरे भव प्राणी, मेरी जान तिरे भव प्राणी । संसार समुद्र जाणी, सुणो सूत्र सिद्धांत की वाणी, पाप कर्म से अब तो डरणा रे ॥ पाप० ॥ पांच० ॥ ४ ॥ इग्याराजी गणधर बीस विरहमान, वांद्या सुं मिटे मरणा ।

अनन्त चौवीसी को नित-नित वांदूं, दुरगति नहीं पडना ॥ मिथ्या अंध मेटो; मेरी जान मिथ्या अंध मेटो । रहो धर्म ध्यान में सेंठो, जिनराज चरण नित्य भेटो, दुःख दारिद्र सत्र तो हरणा रे ॥ दु.ख० ॥ पांचपद० ॥५॥ जैन धर्म पाया बिन प्राणी, पाप सुं पिंड भरणा । नीठ-नीठ मानव भव पायो, धर्मध्यान करणा ॥ करो शुद्ध करणी, मेरी जान करो शुद्ध करणी । निरवाण तणी निसरणी, तुम तजो पराई परणी, एक चित्त धर्मध्यान करणा रे ॥ एक० ॥ पांच पद० ॥ ६ ॥ विहरमान तीर्थङ्कर, गणधर, मनमां शुद्ध धरणा । वेलपालजी के उकलाने, कीया स्तवन वरना ॥ वरन गुन कीना, मेरी जान वरन गुन कीना । ज्यों अमृत प्याला पीना, एक शरण धर्म का लीना । रिख लालचन्दजी गुण कीना, करो नव तत्त्व का निरणा रे ॥ करो० ॥ पांच पद चौवीस जिनन्दजी का नित्य लीजे शरणा ॥ ७ ॥ इति ॥

## प्रतिक्रमण के पाठों के लिये आधारभूत शास्त्र और ग्रंथ

इच्छामि ठाइउं— ( हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ ५७० तथा ७७८ )

ज्ञान के अतिचार— ( हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ ७३० )

समकित के पांच अतिचार–(उपासकदशांग अध्ययन १ सूत्र ७)

संलेखना के पांच अतिचार–(उपासकदशांग अध्ययन१ सूत्र ७)
( धर्म संग्रह अधिकार २ श्लोक ६६ पृष्ठ २३० )
( हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ ८३८ )

अठारह पापस्थानक—( भगवती सूत्र शतक १ उद्देशा ९ ),
( भगवती सूत्र शतक १२ उद्देशा ५ ),
( ठाणांग १ सूत्र ४८ )

इच्छामि खमासमणो—(हरिभद्रीयावश्यक अध्ययन ४ पृ. ५४५)

चत्तारि मंगलं— ( हरिभद्रीयावश्यक अध्ययन ४ पृष्ठ ५६९ )

बारह व्रतों के अतिचार—(उपासकदशांग अध्ययन १ सूत्र ७ )
(हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ ८१८ से ८३६), (धर्मसंग्रह अधिकार २)

बड़ी संलेखना–(आवश्यक हस्तलिखित)(भगवती सूत्र श. २ उ.१)

खामेमि सव्वे जीवा— ( हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ ७६२ )

गंठि सहियं–(हरिभद्रीयावश्यक अध्ययन ६ निर्युक्ति गाथा १५७८)
( प्रवचनसारोद्धार द्वार ४ गाथा २०० )

आयरिय उवज्झाए—(मरण समाधि प्रकीर्णक गाथा ३३५, ३३६)
( संस्तारक प्रकीर्णक गाथा १०४, १०५ ) ( हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ ७८५ )

# छः काय का थोकड़ा

जीव जिस पिण्ड ( शरीर ) में उत्पन्न होता है उसे काय कहते हैं।

छः काय के नाम— १. पृथ्वीकाय, २. अप्काय, ३. तेऊकाय, ४. वायुकाय, ५. वनस्पतिकाय, ६. त्रसकाय।

## छः काय का विशेष स्वरूप

१. पृथ्वीकाय— पृथ्वी-मिट्टी ही जिनका शरीर हो, वे जीव पृथ्वीकाय कहलाते हैं।

पृथ्वीकाय की मिट्टी, हींगलु, हड़ताल, पत्थर, हीरा, पन्ना आदि सात लाख योनि हैं।

पृथ्वीकाय का जघन्य ( कम से कम ) आयुष्य अन्तर्मुहूर्त का तथा उत्कृष्ट ( सर्वाधिक ) आयुष्य (स्थिति) सण्हा (श्लक्ष्ण) पृथ्वी का एक हजार वर्ष, शुद्ध पृथ्वी का बारह हजार वर्ष, बालू पृथ्वी का चौदह हजार वर्ष, सखरा पृथ्वी का अठारह हजार वर्ष तथा खर पृथ्वी का बाईस हजार वर्ष का है।

एक कंकड़ में असंख्यात जीव श्री भगवन्त ने फरमाये हैं। पृथ्वीकाय का वर्ण पीला है। स्वभाव कठोर हैं। संठाण मसूर की दाल के आकार का है। एक पर्याप्ता जीव की नेश्राय में असंख्यात अपर्याप्ता जीव उत्पन्न होते हैं।

२. अप्काय— पानी ही जिन जीवों का शरीर होवे

अप्काय कहलाते हैं । जैसे— बरसात का पानी, ओस का पानी, गड्ढे का पानी, समुद्र का पानी, धुंवर का पानी, कुआं, बावड़ी का पानी आदि सात लाख योनि है ।

अप्काय का आयुष्य–जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष का है । पानी की एक बूंद में भगवान ने असंख्यात जीव फरमाये हैं । एक पर्याप्ता की नेश्राय में असंख्यात अपर्याप्ता जीव उत्पन्न होते हैं । अप्काय का वर्ण लाल है । स्वभाव ढीला है । संठाण पानी के परपोटे जैसा है ।

३. तेउकाय—अग्नि ही जिनका शरीर हो, वे तेउकाय-तेजस्काय जीव कहलाते हैं । जैसे—झाल की अग्नि, बिजली की अग्नि, बांस की अग्नि, उल्कापात की अग्नि आदि सात लाख योनि है ।

तेउकाय का आयुष्य— जघन्य अन्तर्मुहूर्त का तथा उत्कृष्ट तीन रात–दिन का है । अग्नि की एक चिनगारी में असंख्याता जीव भगवान ने फरमाये हैं । अग्निकाय के एक पर्याप्ता जीव की नेश्राय में असंख्याता अपर्याप्ता जीव उत्पन्न होते हैं । तेउकाय का वर्ण सफेद है । स्वभाव उष्ण ( गर्म ) है । संठाण सूई के भार के समान है । सूई की तरह अग्नि की झाल ( ज्वाला ) नीचे से मोटी तथा ऊपर पतली होती है ।

४. वायुकाय— हवा ही जिन जीवों का शरीर हो, वे वायुकाय के जीव कहलाते हैं । जैसे— उक्कलियावायु, घणवायु, तनुवायु, पूर्ववायु, पश्चिमवायु आदि सात लाख योनि है ।

वायुकाय का आयुष्य—जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष का है। एक फूंक से असंख्याता वायुकाय के जीवों की घात होना भगवान ने फरमाया है। एक पर्याप्ता की नेश्राय में असंख्याता अपर्याप्ता उत्पन्न होते हैं। वायुकाय का वर्ण हरा है। स्वभाव चलना ( बाजणा ) है। संठाण ( आकृति ) ध्वजा के आकार का है।

५. वनस्पतिकाय—वनस्पति ही जिन जीवों का शरीर हो, वह वनस्पतिकाय है। वनस्पतिकाय के जीव दो प्रकार के हैं—प्रत्येक वनस्पति तथा साधारण वनस्पति। एक शरीर में एक जीव अकेला ही मुख्य रूप से रहे वह प्रत्येक वनस्पति है। तथा एक शरीर में अनन्त जीव एक साथ मिल कर रहते हैं वह साधारण वनस्पति है।

प्रत्येक वनस्पतिकाय— जैसे–आम, अंगूर, केला, बड़, पीपल वृक्ष, पौधे, झाडियां, लताएं, बेलें, घास, शाक, धान्य आदि दस लाखयोनि है।

साधारण वनस्पतिकाय— जैसे– कांदा, लशुन, गाजर, मूला, आलू, रतालू, सकरकंद, अदरख, हरीहल्दी, नये निकले हुए पत्ते, अंकुर वाला धान्य, नीलन-फूलन आदि चौदह लाख योनि है। वनस्पति का वर्ण काला है। स्वभाव तथा संठाण नाना प्रकार का है।

प्रत्येक वनस्पति का आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष का है।

सूई के अग्रभाग पर समाये उतने कंद-मूल में असंख्याता श्रेणियां हैं। एक-एक श्रेणी में असंख्याता प्रतर हैं।

एक-एक प्रतर में असंख्याता गोला हैं । एक-एक गोले में असंख्याता शरीर हैं । एक-एक शरीर में अनन्त जीव हैं।

साधारण वनस्पति का आयुष्य—जघन्य तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का है ।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, ये पांचों प्रकार के जीव एक स्पर्शनेन्द्रिय वाले हैं । इन्हें स्थावरकाय भी कहते हैं। जिनका शरीर ऐसा हो कि सर्दी गर्मी से अपना बचाव करने के लिये धूप, छाया आदि में आना-जाना न कर सकें वे स्थावरकाय कहे जाते हैं ।

६. त्रसकाय-जिसका शरीर ऐसा हो कि जिससे वे हलन-चलन कर सकें तथा सर्दी, गर्मी आदि से बचने के लिये इधर-उधर आ-जा सकें वे त्रसकाय जीव हैं। त्रस जीव चार प्रकार के हैं—बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंइन्द्रिय । १. जिस जीव के काया और मुख हो उसे बेइन्द्रिय कहते हैं। जैसे—शंख, कोडी, सीप, लट, कीड़ा, अलसीया, कृमि (चूरणीया) वाला आदि दो लाख योनि हैं । बेइन्द्रिय वाले जीव का आयुष्य—जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बारह वर्ष का है। २. जिस जीव के काया, मुख और नाक हो उसे तेइन्द्रिय कहते हैं। जैसे—जूं, लीख, चांचड़, मांकड़, कीड़ा, कुंथुआ, कानखजूरा आदि दो लाख योनि है। तेइन्द्रिय का आयुष्य-जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट उनपचास दिन का है । ३. जिस जीव के काया, मुख, नाक, और आंख वे चार इन्द्रियां हों उसे चउरिन्द्रिय कहते हैं । जैसे—मक्खी, डांस, मच्छर, भंवरा, टिड्डी, पतगिया, कसारी आदि दो लाख योनि है । चउरिन्द्रिय का आयुष्य-जघन्य अन्तर्मुहूर्त का और

उत्कृष्ट छः मास का है। ४. जिस जीव के काया, मुख, नाक, आंख और कान ये पांचों इन्द्रियां हों उसे पंचेन्द्रिय कहते है। जैसे—गाय, भैंस, बैल, हाथी, घोड़ा, मनुष्यादि छब्बीस लाख योनि है। (४ लाख देवता, ४ लाख नारकी, ४ लाख तिर्यंच पंचेन्द्रिय, १४ लाख मनुष्य)।

आयुष्य— नारकी और देवों का जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट ६३ सागरोपम का है तथा मनुष्य और तिर्यंच का जघन्य आयुष्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम का है।

छः काय के जीवों की कुछ कोटि (कुल कोड़ी) कुलों के प्रकार को कुल कोड़ी कहते हे। जैसे— अमुक प्रकार के रूप, रस, वर्ण, गन्ध, स्पर्श वाले परमाणुओं से बने हुए हों वह कुल का एक प्रकार है। इनसे भिन्न वर्ण, गन्ध, रसादि वाले परमाणुओं से बने हों वह कुल का दूसरा प्रकार है। इस तरह भिन्न-भिन्न प्रकार के परमाणुओं से बने कुलों के अनेक भेद हैं। जैसे—एक छाणे (पोटे) में बिच्छू के अनेक कुल उत्पन्न होते हैं। वैसे ही एकेन्द्रिय में भी बहुत कुल उत्पन्न होते हैं। उसी को कुल कोड़ी कहते हैं।

१. पृथ्वीकाय की कुल कोड़ी १२ लाख, २. अप्काय की ७ लाख, ३. तेउकाय की ३ लाख, ४. वायुकाय की ७ लाख, ५. वनस्पतिकाय की २८ लाख, ६. त्रसकाय में बेइन्द्रिय की ७ लाख, तेइन्द्रिय की ८ लाख, चउरिन्द्रिय की ९ लाख, पंचेन्द्रीय में जलचर की १२॥ लाख, स्थलचर— हाथी, घोड़े आदि चौपायों की १० लाख, खेचर अर्थात्

पक्षियों की १२ लाख, उरपरि सर्प— छाती से चलने वाले सांप आदि की १० लाख, भुज परिसर्प अर्थात् भुजा से चलने वाले नेवले, चूहे आदि की ९ लाख, देवों की २६ लाख, नारकी जीवों की २५ लाख और मनुष्यों की १२ लाख, कुल कोटि है। कुल मिलाकर १९७५०००० एक करोड़ सत्तानवें लाख पचास हजार कुल कोड़ी है।

## छः काय का अल्प बहुत्व

सबसे कम त्रसकाय, उससे तेउकाय असंख्यात गुणा, उससे पृथ्वीकाय विशेषाधिक अर्थात् दुगुने से कुछ कम, उससे अप्काय विशेषाधिक, उससे वायुकाय विशेषाधिक, उससे वनस्पतिकाय जीव अनन्त गुणा है।

## छः काय का विशेष स्वरूप

१. इन्दथावरकाय, २, बंभथावरकाय, ३. सिप्पीथावरकाय, ४. सुमतिथावरकाय, ५. पयावयच्चथावरकाय, ६. जंगमकाय।

१. पृथ्वीकाय का इन्द्र देवता मालिक है अतः इसे इन्द्रथावरकाय कहते हैं। २. अप्काय का ब्रह्म देवता मालिक है इसलिए इसे बंभथावरकाय कहते हैं। ३. तेउकाय का शिल्पी नामक देवता स्वामी है अतः इसे सिप्पीथावरकाय कहते हैं। ४. वायुकाय का सुमति नामक देवता मालिक है, अतः इसे सुमतिथावरकाय कहते हैं। ५. वनस्पतिकाय का प्रजापति देव मालिक है अतः इसे पयावच्चथावरकाय कहते हैं। ६. त्रसकाय का जंगम नाम का देवता मालिक है अतः इसे जंगमकाय कहते हैं।

॥ इति छः काय का थोकड़ा समाप्त ॥

# सम्यक्त्व (समकित) के ६७ बोल

**सम्यक्त्व :** जिनेश्वर भगवान् ने जो कुछ कहा, वही सत्य और निःशंक है—इस प्रकार अरिहन्त प्ररुपित तत्वों पर श्रद्धा रखना।

पहला बोल—चार श्रद्धाम। दूसरा बोल—तीन लिंग। तीसरा बोल— दस विनय । चौथा बोल— तीन शुद्धि । पांचवां बोल— पांच लक्षण । छठा बोल— पांच दूषण । सातवां बोल—पाँच भूषण । आठवां बोल—आठ प्रभावक । नवमां बोल— छह आगार । दसवां बोल – छह यतना । ग्यारहवां बोल—छह स्थान । बारहवां बोल—छह भावना।

ये सब मिलाकर ६७ बोल हुए। परिशिष्ट में तेरहवां बोल : सम्यक्त्व की दस रुचि । चौदरवां बोल : सम्यक्त्व के पांच भेद । पन्द्रहवां बोल : सम्यक्त्व के आठ आचार । सोलहवां बोल : सम्यक्त्वी के तीन प्रकार ।

## पहला बोल : 'सम्यक्त्व के चार श्रद्धान'

**श्रद्धान्न :** १. (जैसे पर्वतादि में धूएं को देख कर वहां अग्नि होने का विश्वास होता है, उसी प्रकार) जिन कार्यों से 'इस पुरुष में सम्यक्त्व है'—इस का विश्वास हो, उसे 'सम्यक्त्व का श्रद्धान' कहते हैं । अथवा २. जिन कार्यों से धर्म में श्रद्धा उत्पन्न हो और धर्म द्धा सुरक्षित रहे, उसे सम्यक्त्व का श्रद्धान करते हैं ।

१. परमार्थ संस्तव—परमार्थ का परिचय करे अर्थात् नव तत्वों का ज्ञान प्राप्त करे।

२. सुदृष्ट परमार्थ सेवन—परमार्थ के अच्छे जानकार अर्थात् नव तत्वों के अच्छे जानकार पुरुषों की सेवा करे।

३. व्यापन्न वर्जन— जिन्होंने सम्यक्त्व का वमन कर दिया ( छोड़ दिया )— ऐसे १. निह्नवों की, २. अन्य मत धारण कर लेने वालों की तथा ६. नास्तिकों की संगति न करे। चाहे उनका वेश जैन मुनि का भी क्यों न हो।

४. कुदर्शन वर्जन— अन्य मतावलम्बी कुतीर्थियों की संगति से दूर रहे।

— उत्तराध्ययन सूत्र–अध्ययन २८, गाथा २८ से।

## दूसरा बोल : 'सम्यक्त्व के तीन लिंग'

**लिंग** : ( जैसे आम के बाहरी पीले रंग से उसमें रहे हुए मधुर रस का अनुमान होता है, वैसे ही ) जिस ( सहचर ) बाहरी गुणों से 'इस पुरुष में सम्यक्त्व है'—इसका अनुमान हो, उसे 'सम्यक्त्व का लिंग' कहते हैं।

१. श्रुतानुराग— जैसे तरुण पुरुष राग–रंग (संगीत) में अनुराग ( रुचि ) रखता है, उसी प्रकार केवली प्ररूपित अहिंसामय वाणी सुनने में अनुराग रक्खे।

२. धर्मानुराग— जैसे तीन दिन का भूखा पुरुष खीर-

खांड का भोजन करने में अनुराग (रुचि) रखता हैं, उसी प्रकार केवली प्ररुपित अहिंसामय धर्म-पालन में अनुराग रखे।

३. देवगुरु वैयावृत्य— जैसे अनपढ़ (अपठित) पुरुष विद्या-गुरु को पाकर हर्षित होता है और विद्या-प्राप्ति के लिए उनकी वैयावुत्म (सेवा) करता है उसी प्रकार देवगुरु के दर्शन पाकर हर्षित हो और धर्म-प्राप्ति के लिए उनकी वैयावृत्य करे। ।

— अनेक सूत्र से तथा प्रवचन सारोद्धार से।

## तीसरा बोल : 'सम्यक्त्वी के दस विनय'

**विनय :** सम्यक्त्व उत्पन्न होने पर सम्यक्त्वी धर्मदेव आदि का जो वन्दन, भक्ति, वहुमान, गुण वर्णन आदि करता है, उसे 'सम्यक्त्वी का विनय' कहते हैं।

१. अरिहंत विनय—अरिहंत भगवान् का विनय करे।

२. अरिहंत प्रज्ञप्त धर्म विनय— अरिहंत प्ररुपित धर्म का विनय करे।

३. आचार्य विनय—आचार्य भगवान् का विनय करे।

४. उपाध्याय विनय—उपाध्याय भगवान् का विनय करे।

५. स्थविर विनय— स्थविर भगवान् (वहुश्रुत और चिरदीक्षित) का विनय करे।

६. कुल विनय—कुल (एक आचार्य के शिष्यों के समुदाय) का विनय करे।

७. गण विनय— गण ( अनेक आचार्यों के शिष्यों के समुदाय ) का विनय करे ।

८. संघ विनय—चतुर्विध संघ ( साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका ) का विनय करे ।

९. क्रिया विनय—क्रियावान् (क्रिया-पात्र का विनय करे)

१०. सांभोगिक विनय— जो स्वधर्मी, स्वलिंगी हों, उनका विनय करे ।

— औपपातिक सूत्र से ।

## चौथा बोल : 'सम्यक्त्व की तीन शुद्धि'

**शुद्धि** : ( जैसे आंख में पीलिया, मोतिया-बिन्द आदि का न होना दृष्टि की शुद्धि है, वैसे ही ) सम्यक्त्वी की दृष्टि में देव, गुरु व धर्म के सम्बन्ध में अशुद्धि न होना सम्यक्त्व की शुद्धि है ।

१. देव शुद्धि—चार कर्म या अट्ठारह दोष रहित तथा बारह गुण सहित अरिहंत देव को ही सुदेव मानें, अन्य देवों को सुदेव न मानें। ( वचन से अरिहंत देव का ही गुण-ग्राम करें, कुदेवों का न करें, काया से अरिहंत देव को ही नमस्कार करे, अन्य देवों को न करें ) ।

२. गुरु शुद्धि— पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति के धारक अथवा २७ गुण धारक जैन-साधुओं को ही सुगुरु मानें, अन्य साधुओं को सुगुरु न मानें । ( वचन से जैन-साधुओं का ही गुण-ग्राम करें, कुगुरुओं का न करे ।

काया से जैन–साधुओं को ही नमस्कार कर, कुगुरुओं को न करें )।

३. धर्म शुद्धि— केवली ( अरिहंत ) प्ररुपित अहिंसा-मय स्याद्वाद सहित जैन–धर्म को ही सुधर्म मानें, अन्य धर्मों को सुधर्म न मानें। ( वचन से जैन–धर्म का ही गुण–ग्राम करें, कुधर्मों को न करें। काया से जैन–धर्म को ही नम-स्कार करें, कुधर्मो को न करें।

— 'अरिहंतो महदेवो' प्रतिक्रमण सूत्र से।

## पांचवां बोल : 'सम्यक्त्व के पांच लक्षण'

**लक्षण** : ( जैसे ऊष्णता से अग्नि की पहिचान होती है, वैसे ही ) जिस ( असाधारण ) अन्तरंग गुण से सम्यक्त्व की पहचान हो, उसे 'सम्यक्त्व का लक्षण' कहते हैं।

१. शम (प्रशम)— अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ का उदय न होने दे या शत्रु–मित्र पर समभाव रक्खे।

२. संवेग— धर्म की श्रद्धा और मोक्ष की अभिलाषा रक्खे।

३. निर्वेद— सांसारिक काम–भोगों में उदासीन रहे तथा आरम्भ परिग्रह का त्याग करे।

४. अनुकम्पा— दूसरे जीव को दुःखी देख कर या संसार–परिभ्रमण करते हुए देख कर करुणा लावे।

५. आस्तिकता ( आस्था )— जिन-वचनों पर विश्वास रख कर दृढ़ रहे।

— उत्तराध्ययन २९, स्थानांग ४ व ज्ञाता १ से।

## छठा बोल : 'सम्यक्त्व के पांच दूषण (अतिचार)

**दूषण :** ( जैसे रज से रत्न मलिन ( मैला ) होता है, वैसे ही ) जिस बात से सम्यक्त्व-रूप रत्न दूषित ( मलिन ) हो, उसे 'सम्यक्त्व का दूषण ( अतिचार ) कहते हैं।

१. शंका— सूक्ष्म तत्व समझ में न आने पर जिन भगवान् के वचनों में शंका ( संदेह ) रखना।

२. कांक्षा— अन्य मतियों के तप, आडम्बर, पूजादि देखकर उनकी कांक्षा ( चाह ) करना।

३. विचिकित्सा— धर्म-क्रिया ( करणी ) के फल में शंका ( सन्देह ) करना अथवा त्यागी साधु-साध्वियों के शरीर-वस्त्रादि मलिन देखकर घृणा करना।

४. पर-पाषण्डी-प्रशंसा— अन्य मति कुतीर्थियों की प्रशंसा करना।

५. पर-पाषण्डी-संस्तव— अन्य मति कुतीर्थियों का परिचय करना, उनके पास आना-जाना, उनकी संगति करना।

— उपासक दशांग अध्ययन १ तथा प्रतिक्रमण से।

## सातवां बोल : 'सम्यक्त्व के पांच भूषण'

**भूषण :** ( जैसे आभूषणों से नारी की बाहरी शोभा बढ़ती है वैसे ही ) जिस गुण या कार्य से सम्यक्त्व की शोभा बढ़े, उसे 'सम्यक्त्व का भूषण' कहते हैं।

१. कुशलता— जिन-शासन में कुशल ( चतुर ) हो।

२. प्रभावना— बहुश्रुतादि ८ बोलों से जिन-शासन की प्रभावना करे।

३. तीर्थ-सेवा— जिन-शासन के चतुर्विध संघ की सेवा करे।

४. स्थिरता— जिन-शासन से डिगते हुए पुरुषों को जिन-शासन में स्थिर करे।

५. भक्ति— जिन-शासन में भक्ति रक्खे।

— प्रवचनसारोद्धार ग्रन्थ से।

## आठवां बोल : 'सम्यक्त्व की आठ प्रभावना'

**प्रभावना :** जिस गुण, लब्धि या क्रिया से लोगों में सम्यक्त्व की ( जैन-धर्म की ) प्रभावना हो, उसे 'सम्यक्त्व की प्रभावना' कहते हैं तथा सम्यक्त्व की प्रभावना करने वाले को 'प्रभावक' कहते हैं।

१. बहुश्रुत ( प्रावचनी )— जिस काल में जितने सूत्र उपलब्ध हों, उनके रहस्य ( मर्म ) का जानकार हो।

२. धर्मकथी— धर्म-कथा सुनाने में कुशल (चतुर) हो।

३. वादी— प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्तादि से अन्य मत का खण्डन करके जैन मत की स्थापना करे।

४. नैमित्तिक : निमित्त के द्वारा भूत-भविष्य-वर्त्तमान काल की बात जाने।

५. तपस्वी—मासखमणादि उग्र तप करे, ब्रह्मचर्यादि कठोर व्रत धारण करे।

६. विद्यावान्— प्रज्ञप्ति, रोहिणी आदि अनेक विद्याओं का जानकार हो।

७. लब्धिसम्पन्न—वैक्रिय लब्धि, आहारक लब्धि आदि अनेक लब्धियों का धारक हो।

८. कवि— शास्त्रानुसार गद्य-पद्य की विशिष्ट रचना करे।

— प्रवचनसारोद्धार से।

## नवमां बोल : 'सम्यक्त्व के छह आकार ( आगार)'

आकार (आगार) : सम्यक्त्व की यतना ( रक्षा ) के लिए धारण किये जाने वाले अभिग्रह (निश्चय) में रक्खी जाने वाली छूट को 'सम्यक्त्व के आकार ( आगार )' कहते हैं।

१. राजाभियोग— राजा की आज्ञा, दबाव या बलात्कार से इच्छा बिना अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती बने हुए जैन-साधुओं से आलापादि करना पड़े, तो सम्यक्त्व की प्रवृत्ति में दोष लगता है, पर सम्यक्त्व भंग नहीं होता ।

२. गणाभियोग—कुटुम्ब, जाति, पंचायत, समूह आदि की आज्ञा, दबाव या बलात्कार से इच्छा बिना अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती बने हुए जैन-साधुओं से आलापादि करना पड़े, तो सम्यक्त्व की प्रवृत्ति में दोष लगता है, पर सम्यक्त्व भंग नहीं होता ।

३. बलाभियोग— शक्ति, सत्ता आदि से बलवान की आज्ञा, दबाव या बलात्कार से इच्छा बिना अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती बने हुए जैन-साधुओं से आलापादि करना पड़े, तो सम्यक्त्व की प्रवृत्ति में दोष लगता है, पर सम्यक्त्व भंग नहीं होता ।

४. देवाभियोग— देव, देवी की आज्ञा, दबाव या बलात्कार से इच्छा बिना अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती बने हुए जैन-साधुओं से आलापादि करना पड़े, तो सम्यक्त्व की प्रवृत्ति में दोष लगता है, पर सम्यक्त्व भंग नहीं होता ।

५. गुरुनिग्रह— माता-पिता आदि बड़ों की आज्ञा या दबाव से इच्छा बिना अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव

तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मति वने हुए जैन-साधुओं से आलापादि करना पड़े, तो सम्यक्त्व की प्रवृत्ति में दोष लगता है, पर सम्यक्त्व भंग नहीं होता।

६. वृत्तिकान्तर—आजीविका की रक्षा के लिए स्वामी की आज्ञा या दवाव होने पर या अटवी आदि विषम क्षेत्र काल भाव में फँस जाने पर इच्छा विना अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती वने हुए जैन-साधुओं से आलापादि करना पड़े, तो सम्यक्त्व की प्रवृत्ति में दोष लगता है, पर सम्यक्त्व भंग नहीं होता।

— उपासक दशांग अध्ययन १ से।

## दसवां बोल : 'सवयक्त्व की छह यतना'

यत्नना : (जैसे असुशील पुरुषों के संसर्ग से वचने से पतिव्रता सुशीला स्त्री के शील की रक्षा होती है, वैसे ही) जिस संसर्ग से वचने से सम्यक्त्वी के सम्यक्त्व की रखा हो, उसे 'सम्यक्त्व की यतना' कहते हैं।

१. वंदना— अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती वने हुए जैन-साधुओं की स्तुति (गुणग्राम) न करे।

२. नमस्कार— अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती वने हुए जैन-साधुओं को नमस्कार न करे।

३. आलाप— अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती बने हुए जैन-साधुओं से बिना उनके पहले बुलाये स्वयं पहले एक वार भी न बोले !

४. संलाप— अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती बने हुए जैन-साधुओं से बिना उनके दूसरी-तीसरी बार बुलाये, उनसे स्वयं बार-बार भी न बोले।

५. दान— अन्य मत के गुरु, अन्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती बने हुए जैन-साधुओं को एक बार भी दान न दे।

६. अनुप्रदान— अन्य मत के गुरु, अग्य मत के देव तथा वेश, श्रद्धा या आचार से अन्य मती बने हुए जैन-साधुओं को बार-बार भी न दान दे। ( अनुकम्पा बुद्धि से किसी को भी आलापादि करने या किसी को भी दानादि देने का तीर्थंकर भगवान् द्वारा निषेध नहीं है )।

उपरोक्त आलापादि छहों बोल सुदेव, सुगुरु तथा स्वधर्मी बन्धुओं के साथ अवश्य करे )।

## ग्यारहवां बोल : 'सम्यक्त्व के छह स्थान'

**स्थान :** ( जैसे स्थान होने पर ही मनुष्य ठहर पाता है, वैसे ही ) जिस सैद्धांतिक सत्य मान्यता के होने पर ही सम्यक्त्व ठहरे ( रहे ), उसे 'सम्यक्त्व का स्थान' कहते हैं।

१. जीव है— चेतना लक्षण वाला जीव द्रव्य सत् है, असत् नहीं है । अर्थात् जीव वास्तविक सत्य पदार्थ है, परन्तु काल्पनिक झूठा पदार्थ नहीं है ।

२. जीव नित्य है— जीव द्रव्य आदि ( उत्पत्ति ) अंत ( विनाश ) रहित सदा काल शाश्वत है । परंतु शरीर की उत्पत्ति से जीव की उत्पत्ति और शरीर के नाश से जीव का नाश नहीं होता है ।

३. जीव कर्त्ता है— जीव आठ कर्मों का कर्त्ता है, परंतु अकर्त्ता नहीं है । अथवा ईश्वर जीव से कर्म कराता हो या जीव कर्म करता हुआ भी कर्म से निर्लेप रहता हो— यह बात भी नहीं है ।

४. जीव भोक्ता है— जीव आठ कर्मों का भोक्ता है, पर अभोक्ता नहीं है । अथवा ईश्वर जीव का कर्म का फल भुगताता हो या कर्म भोगे बिना छूट जाते हों—यह बात भी नहीं है ।

५. मोक्ष है— भव्य जीव आठ कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त करते हैं, परंतु भगवान् सदा से, भगवान् हों या संसारी, सदा संसारी ही बने रहते हों—ऐसी बात नहीं है ।

६, मोक्ष का उपाय— (क) सम्यग्ज्ञान (ख) सम्यग्दर्शन (ग) सम्यक्चारित्र और (घ) सम्यक्तप— ये चार मोक्ष के उपाय हैं । परंतु (क) अज्ञान (ख) मिथ्यात्व (ग) अव्रत और (घ) भोग या बाल तप—ये मोक्ष के उपाय नहीं हैं ।

— सूत्रकृतांग अध्ययन २१ से ।

## बारहवां बोल : 'सम्यक्त्व की छह भावना'

**भावना :** ( जैसे भावना देने से औषधियां पुष्ट बनती हैं, वैसे ही ) जिस भावना से सम्यक्त्व पुष्ट बने, उसे 'सम्यक्त्व की भावना' कहते हैं।

१. मूल ( जड़ )— धर्म ( चारित्र धर्म ) रूप वृक्ष के लिए सम्यक्त्व जड़ के समान है, क्योंकि सम्यक्त्व-रूप जड़ के बिना धर्म-रूप वृक्ष उत्पन्न नहीं हो सकता।

२. द्वार— धर्म-रूप नगर के लिए सम्यक्त्व द्वार के समान है, क्योंकि सम्यक्त्व-रूप द्वार के बिना धर्म-रूप नगर में प्रवेश नहीं हो सकता।

३. नींव ( प्रतिष्ठान )— धर्म-रूप प्रासाद (महल) के लिए सम्यक्त्व नींव के समान है, क्योंकि सम्यक्त्व-रूप नींव के बिना धर्म-रूप प्रासाद स्थिर नही रह सकता।

अथवा

दुकान— धर्म-रूप क्रयाणक के लिए सम्यक्त्व-रूप दुकान ( आपण ) के समान है, क्योंकि सम्यक्त्व-रूप दुकान के विना धर्म-रूप क्रयाणक की रक्षा नहीं हो सकती।

४. पृथ्वी— धर्म-रूप जगत के लिए सम्यक्त्व पृथ्वी के समान है, क्योंकि सम्यक्त्व-रूप पृथ्वी के बिना धम-रूप जगत टिक नही सकता।

५. भाजन (पात्र)—धर्म-रूप खीर के लिए सम्यक्त्व

पात्र के समान है, क्योंकि सम्यक्त्व-रूप भाजन के विना धर्म-रूप खीर ग्रहण नहीं की जा सकती ।

६. निधि ( पेटी )— धर्म-रूप धन ( आभूषणादि ) के लिए सम्यक्त्व पेटी के समान है, क्योंकि सम्यक्त्व-पेटी के विना धर्म-रूप धन की रक्षा नहीं हो सकती ।

— अनेक सूत्र तथा प्रवचन सारोद्धार से ।

इस स्तोक में तीन-तीन के वोल दो, चार का वोल एक, पांच-पांच के वोल तीन, छह-छह के वोल चार, आठ का वोल एक तथा दस का वोल एक है। ३×२=६,+४×१=४,+५×३=१५,+६×४=२४,+८×१=८,+१०×१=१० । योग ६७ ।

॥ सम्यक्त्वं के ६७ वोल समाप्त ॥

# परिशिष्ट

## तेरहवां बोल : 'सम्यक्त्व की दस रुचि'

रुचि : ( जैसे औषधि से भोजन की अरुचि मिट कर भोजन की रुचि उत्पन्न होती है, वैसे ही ) जिस बात से मिथ्यात्व की रुचि हटकर 'सम्यक्त्व की रुचि' उत्पन्न हो अर्थात् सुदेव, सुगुरु, सुधर्म के प्रति रुचि उत्पन्न हो, उसे 'सम्यक्त्व की रुचि' कहते हैं।

१. निसर्ग रुचि— किसी को जाति-स्मरणादि से अपने आप सम्यक्त्व उत्पन्न होती है।

२. उपदेश रुचि— किसी को सर्वज्ञ या छद्मस्थ के उपदेश सुनने से सम्यक्त्व उत्पन्न होती है।

३. आज्ञा रुचि— किसी को देव और गुरु की आज्ञा मानने से सम्यक्त्व उत्पन्न होती है।

४. सूत्र रुचि— किसी को सूत्रों का स्वाध्याय करने से सम्यक्त्व उत्पन्न होती है।

५. बीज रुचि— किसी को बीज-रूप एक ही पद पर विचार करते रहने से सम्यक्त्व उत्पन्न होती है।

६ अभिगम— किसी को सूत्रों के अर्थ पढ़ने से सम्यक्त्व उत्पन्न होती है।

६. विस्तार रुचि— किसी को द्रव्यों और पर्यायों का, प्रमाणों और नयों से विस्तारपूर्वक अध्ययन करने से सम्यक्त्व उत्पन्न होती है ।

७. विस्तार रुचि— किसी को द्रव्यों और पर्यायों का, प्रमाणों और नयों से विस्तारपूर्वक अध्ययन करने से सम्यक्त्व उत्पन्न होती है ।

८. क्रिया रुचि— किसी को साधु-श्रावक की क्रिया ( करणी ) करते रहने से सम्यक्त्व उत्पन्न होती है ।

९. संक्षेप रुचि— किसी को 'जो जिनेश्वरों ने कहा है, वहीं सत्य है और शंका रहित है'— संक्षेप में इतनी श्रद्धा करने से भी सम्यक्त्व उत्पन्न होती है ।

१०. धर्म रुचि— किसी को 'जिनेश्वरों द्वारा बताया हुआ जैन-धर्म ( अस्तिकाय धर्म, श्रुत धर्म, चारित्र धर्म ) ही सच्चा है'—ऐसी श्रद्धा रखने से सम्यक्त्व उत्पन्न होती है ।

— उत्तराध्ययन, अध्ययन २८ से ।

## चौदहवां बोल : 'सम्यक्त्व के पांच भेद'

१. उपशम सम्यक्त्व— जो दर्शन मोहनीय की तीन तथा अनन्तानुबंधी कषाय की चौकड़ी— ये सात प्रकृतियां उपशम करने पर उत्पन्न हो ।

२. क्षायिक सम्यक्त्व— जो इन्हीं सात प्रकृतियों को क्षय करने पर उत्पन्न हो ।

३. क्षयोपशम सम्यक्त्व— जो इन्हीं सात प्रकृतियों का कुछ क्षय तथा कुछ उपशम करने पर उत्पन्न हो।

४. सास्वादन सम्यक्त्व— जो मिथ्यात्व की ओर जाते हुए सम्यक्त्व का कुछ स्वाद रह जाने से उत्पन्न हो।

५. वेदक सम्यक्त्व— जो क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करने से पहले एक समय सम्यक्त्व मोहनीय का वेदन करने से उत्पन्न हो।

— अनुयोग द्वार आदि अनेक सूत्र तथा प्रवचन सारोद्धार से।

## पन्द्रहवां बोल : 'सम्यक्त्व के आठ आचार'

**आचार** ; सम्यक्त्वी को जिन आचारों का पालन करना चाहिए, उन्हें 'सम्यक्त्व के आचार' कहते हैं।

१. निःशंकित— सूक्ष्म 'तत्व' समझ में न आने पर जिन-वचनों में सन्देह न करे।

२. निःकांक्षित— कुतीर्थियों के तप-आडंबर, पूजादि देखकर 'अन्य मत' की चाह न करे।

३. निर्विचिकित्सक— धर्म-क्रिया के फल में संदेह न करे, त्यागी साधु-साध्वियों के शरीर-वस्त्रादि मलिन देखकर घृणा न करे।

४. अमूढ़ दृष्टि— कुतीर्थियों के तप. आडंबर, पूजादि देखकर जिन-मत से विचलित न हो।

५. उपबृंहण (उववूह)— सम्यक्त्वियों की प्रशंसा और वैयावृत्य करके उनको बढ़ावा दे, स्वयं भी अपने सम्यक्त्व को पुष्ठ करे ।

६. स्थिरीकरण— जिन शासन में डिगते हुए पुरुषों को जिन-शासन में स्थिर करे ।

७. वात्सल्य— चतुर्विध संघ से वत्सलता (प्रेम) रक्खे ।

८. प्रभावना— बहुश्रुतादि ८ बोलों से जिन-शासन की प्रभावना करे ।

— उत्तराध्ययन, अध्ययन २८ से ।

## सोलहवां बोल : 'सम्यक्त्वी के तीन प्रकार'

१. कारक— धर्म-क्रिया करे ।

२. रोचक— धर्म-क्रिया की रुचि रक्खे, पर करे नहीं ।

३. दीपक— न धर्म-क्रिया करे, न रुचि रक्खे, केवल परोपदेश करे ।

— अनेक सूत्र तथा विशेषावश्यक से ।

# श्रावकजी के २१ गुण

१. तत्वज्ञ— जीवादि नव तत्व (और पच्चीस क्रिया) के जानकार हों ।

२. असहाय— धर्म-क्रिया में किसी की सहायता के अभाव में धर्म-क्रिया करना न छोड़ें।

३. अनतिक्रमणीय— देव-दानव आदि से भी निर्ग्रन्थ प्रवचन ( जैन-धर्म ) से चलायमान न हों।

४. निःशंक— निर्ग्रन्थ प्रवचन (जैन-धर्म) में १. शंका, २. कांक्षा, ३. विचिकित्सा न करें।

५. गीतार्थ— १. लब्धार्थ, २. गृहीतार्थ, ३. पृष्ठार्थ, ४. अभिगृहीतार्थ और ५. विनिश्चितार्थ हों। (अर्थात् सूत्रार्थ को— १. दूसरों से पाये हुए, २. स्वयं ग्रहण किये हुए, ३. पूछे हुए, ४, समझे हुए तथा ५. निश्चय किए हुए हों)।

६. धर्मानुरक्त— अस्थि-मज्जा तक धर्म-प्रेम के अनुराग में रंगे हुए हों।

७. परमार्थज्ञ— निर्ग्रन्थ प्रवचन ( जैनधर्म ) को ही परमार्थ समझें और अन्य सभी लौकिक सुख तथा अन्य मतों को अनर्थ समझें।

८. उच्छ्रितस्फटिक— स्फटिक रत्न के समान निर्मल अन्तःकरण वाले हों।

९. अपावृत्त द्वार—दान के लिए द्वार सदा खुले रखें।

१०. प्रतीत— राज-अन्तःपुर, राज्य-भण्डार आदि में प्रतीति-पात्र हों।

११. व्रती— पांच अणुव्रत, तीन गुण व्रत पालें, नित्य सामायिक-दिशावकाशिक व्रत आरावें तथा अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा यों मास के छह दिन पोषध करें।

१२. सम्यक् अनुपालक— लिए हुए अहिंसादि व्रत तथा नमस्कार सहित (नवकारसी) आदि प्रत्याख्यान सम्यक् (निर्मल) पालें।

१३. अतिथि संविभागी— श्रमण निर्ग्रन्थों को १४ प्रकार का प्रासुक (अचित्त) एपणीय (आवा कर्म आदि रहित) दान दें।

— औपपातिक सूत्र से।

१४. धर्मोपदेशक— निर्ग्रन्थ प्रवचन (जैन-धर्म) का उपदेश दें।

१५. सुमनोरथी— १. अल्प परिग्रह, २. दीक्षा और ३. पंडितमरण इन तीन मनोरथों का नित्य चिन्तन करें।

१६. तीर्थसेवक— चतुर्विध संघ की सेवा करें।

१७. उपासक— ज्ञानी की उपासना करते हुए नित्य-नये-नये सूत्र सुन कर ज्ञान बढ़ावें।

१८. स्थिरकारक— जिन-शासन से डिगते हुए पुरुषों को जिन-शासन में स्थिर करें।

१९. प्रतिक्रमणकारी— उभयकाल दैवसिक, रायसिक प्रतिक्रमण करें।

२०. सर्वजीव-हितैषी— सब जीवों का हित चाहें।

२१. तपस्वी— यथाशक्ति तपश्चर्या करें।

— अनेक सूत्रों से।

# श्रावकजी के चार विश्राम

जैसे— १. भार ढोने वाला भार को एक कन्धे से दूसरे कन्धे पर रक्खे और पहले कन्धे को विश्राम दे – यह पहला विश्राम है । २. भार को चबूतरे आदि पर रख कर मल-मूत्र की बाधा दूर करे, खा-पीकर भूख-प्यास की बाधा दूर करे—यह दूसरा विश्राम है । ३. रात्रि को धर्मशाला, मन्दिर आदि में रात भर रहे, सोकर दिन भर का श्रम दूर करे—यह तीसरा विश्राम है । ४. जहां पर भार पहुंचाना है, ठेठ वहां भार पहुंचा दे और निश्चित हो जाय— यह चौथा विश्राम है ।

इसी प्रकार— १. बारह व्रत और नमस्कार सहित ( नवकारसी ) आदि का प्रात्याख्यान धारण करे, यह श्रावक का पहला विश्राम है । २. प्रतिदिन सामायिक और दिशावकाशिक व्रत सम्यक् पाले, यह श्रावक का दूसरा विश्राम है । ३. महीने में छह दिन प्रतिपूर्ण पौषध सम्यक् पाले, यह श्रावक का तीसरा विश्राम है । ४. अन्तिम समय में संलेखना संथारा करके भक्त प्रत्याख्यान सहित समाधिमरण स्वीकार करे, यह श्रावक का चौथा विश्राम है ।

# चार गति के कारण

## १. नरक गति के चार कारण

१. महा आरंभ— अपरिमाण खेती आदि से पृथ्वीकायादि का महा आरंभ करना ।

२. महा परिग्रह— महा तृष्णा, महा ममत्व और अपार धन रखना ।

३. मांसाहार— मद्य, मांस, अण्डे आदि आहार करना ।

४. पंचेन्द्रिय वध— शिकार करना, कसाई का काम करना, मछली-अण्डे आदि का व्यापार करना ।

## २. तिर्यञ्च गति के चार कारण

१. माया— माया करना या माया की बुद्धि रखना ।

२. निकृति— गूढ़ माया करना अर्थात् झूठ सहित माया करना या माया का प्रयत्न करना ।

३. अलीक वचन— कन्या, पशु, भूमि आदि के विषय में झूठ बोलना ।

४. कूट तोल, कूट माप— देते समय कम तोलना-मापना, लेते समय अधिक तोलना-मापना ।

## ३. मनुष्य गति के चार कारण

१. प्रकृति भद्रता— प्राकृतिक ( स्वाभाविक, बनावटी नहीं ) भद्रता रखना ।

२. प्रकृति विनीतता—प्राकृतिक विनयशीलता रखना ।

३. सानुकोशता— अनुकम्पा (दया) भाव रखना ।

४. अमत्सरता— मत्सरता ( ईर्ष्या-बुद्धि ) का भाव न रखना ।

## ४. देव-गति के चार कारण

१. सराग-संयम— प्रमाद और कषाय सहित साधुत्व पालना ।

२. संयमा-संयम— श्रावकत्व पालना ।

३. बाल-तप— अजैन साधुओं और अजैन गृहस्थों का अज्ञान तप करना ।

४. अकाम-निर्जरा—अभाव, पराधीनता आदि कारणों से अनिच्छापूर्वक परीषह और उपसर्ग सहन करना ।

## मोक्ष के चार उपाय

१. सम्यग्ज्ञान, २. सम्यग्दर्शन, ३. सम्यग्चारित्र और ४. सम्यक्तप ।

## सात कुव्यसन

१. शिकार, २. चोरी, ३. पर-स्त्री-गमन, ४. वेश्या-गमन, ५. मांसाहार, ६. मदिरा-पान और ७. द्यूत (जूआ) ।

——:0:——

॥ तत्त्व-विभाग समाप्त ॥

# १. भगवान् महावीर

## देवानन्दा की कुक्षि में

भारतवर्ष के विहार—उड़ीसा प्रान्त में ब्राह्मण कुण्ड नामक नगर था। वहां ऋषभदत्त नामक ब्राह्मण रहता था। वह वेद—पारंगत और धनाढ्य भी था। उसकी देवानन्दा नामक सुरूपा और कुलीन भार्या थी।

दसवें देवलोक से च्यव कर (उतर कर) भगवान् महावीर स्वामी का जीव आषाढ़ शुक्ला ६ की रात्रि को देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में आया। उस समय आधी नींद में सुखपूर्वक सोती हुई देवानन्दा को ये चौदह स्वप्न आये—१. हाथी, २. वृषभ, ३. सिंह, ४. लक्ष्मी का अभिषेक, ५. दो रत्नमालाएं, ६. चन्द्र, ७. सूर्य, ८. ध्वज, ९. कुम्भ, १०. पद्मकमलयुक्त सरोवर, ११. क्षीरसागर, १२. विमान, १३. रत्न की राशि और १४. धुएं रहित अग्नि की शिखा। इन स्वप्नों को देख कर देवानन्दा जग गई। उसने अपने पति के पास जाकर ये आए हुए स्वप्न सुनाये। ऋषभदत्त ने उन पर बुद्धि से विचार करके कहा—तुम्हें स्वप्नों के फल में 'एक पुत्र की प्राप्ति' होगी, जो वेद—पारंगत और हमारे कुल का तिलक होगा।

## गर्भ संहरण

जब देवानन्दा को गर्भ धारण किये ८२ बयासी दिन और ८२ रात्रियां बीत गईं—८३वीं रात्रि चल रही थी,

तब की बात है । पहले देवलोक के 'शक्र' नामक इन्द्र अपने अवधि-ज्ञान से भरत क्षेत्र को देख रहे थे। उस समय उन्होंने भगवान् को देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में आये हुए देखा । देखते ही पहले उन्होंने सिद्धों को नमोत्थुणं दिया। फिर भगवान् महावीर स्वामी को नमोत्थुणं देकर नमस्कार किया ।

पीछे उन्हें विचार हुआ कि तीर्थंकर आदि उत्तम पुरुष, शूद्र कुल में, अधम कुल में, अल्प परिवार वाले कुल में, दरिद्र कुल में, कृपण ( अदातार ) कुल में, भिखारी कुल में या ब्राह्मण आदि के कुल में नहीं आते, परन्तु क्षत्रिय कुल में ही आते हैं । कभी-कभी अनन्तकाल से कोई उत्तम पुरुष अपने पुराने कमाये हुए अशुभ नाम-गोत्र-कर्म क्षय न होने पर यदि शूद्रादि कुल में आ भी जायँ, तो वे उस योनि से बाहर नहीं निकलते, अतः मेरा कर्त्तव्य है कि मैं 'गर्भ संहरण' ( परिवर्तन ) करूँ ।

यह विचार कर उन्होंने अपने हरिनगमैषी नामक देव को आदेश दिया कि तुम देवानन्दा नामक ब्राह्मणी के गर्भ में रहे हुए चरम ( अंतिम ) तीर्थंकर भगवान् महावीर को क्षत्रियकुण्ड नगर के महाराजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला-देवी के गर्भ में पहुँचाओ और त्रिशलादेवी के गर्भ में जो कन्या हैं, उसे देवानन्दा के गर्भ में पहुँचाओ । हरिनगमैषी ने शक्र इन्द्र की आज्ञा का पालन किया ।

## त्रिशला की कुक्षि में आने पर

जिस समय भगवान् का गर्भ-संहरण हुआ, उस समय

देवानन्दा को ऐसा स्वप्न आया कि 'मेरे वे १४ चौदह ही स्वप्न त्रिशला क्षत्रियाणी के पास चले गये।' और उसी रात्रि को त्रिशलादेवी को वे चौदह ही स्वप्न आये। महारानी ने उन स्वप्नों को सिद्धार्थ महाराज को जाकर सुनाये। महाराजा ने कहा— कि तुम्हें इसके फल में एक ऐसा पुत्र प्राप्त होगा, जो आगे चल कर राजा बनेगा।' स्वप्न का फल सुन कर रानी प्रसन्न हुई। उसने स्वप्न फल नष्ट न हो, इसलिए स्वप्न जागरण किया। महाराजा ने प्रातःकाल स्वप्न-पाठकों को बुलाया और सम्मान के साथ उनसे स्वप्न का फल पूछा। उन्होंने कहा—महाराज! ये चौदह स्वप्न तीर्थंकर या चक्रवर्ती की माता को आते हैं। अतः महारानी त्रिशला भविष्य में तीर्थंकर या चक्रवर्ती बनने वाले पुत्र को जन्म देगी। यह स्वप्न-फल सुनकर सभी को प्रसन्नता हुई। सिद्धार्थ ने स्वप्न-पाठकों को सात पीढ़ियों तक चले, इतना धन आदि देकर विदा किया।

## वर्द्धमान नाम का हेतु

जिस रात्रि को भगवान् त्रिशला के गर्भ में आये, तभी से शक्रेन्द्र की आज्ञानुसार जृंभक जाति के देवों ने सिद्धार्थ के यहां सोने-चांदी का संहरण किया तथा सिद्धार्थ के धन, धान्य, राज्य, सेना, कोप, अन्तःपुर, यश, सत्कार आदि की भी बहुत वृद्धि हुई। इससे राजा रानी दोनों ने यह निश्चय किया कि हम अपने पुत्र का नाम 'वर्द्धमान' रखेंगे। ऐसा था भगवान् का पुण्य प्रभाव।

## माता के प्रति अनुकम्पा

उससे कुछ समय पीछे की बात है—गर्भ में रहे हुए

भगवान् महावीर स्वामी ने 'अपनी माता को कष्ट न हो' इस अनुकम्पा-भाव से अंगोपांग संकोच लिए और निश्चल हो गये परन्तु त्रिशला को यह विचार हो गया कि 'मेरा गर्भ या तो किसी ने चुरा लिया है या वह मर गया है, या वह गल गया है, क्योंकि पहले वह हिलता-डुलता था और अब वह हिलता-डुलता नहीं।' इस विचार से त्रिशला को बहुत चिंता हो गई। रानी की चिंता से सारा राजप्रासाद भी चिन्तित हो गया। उसमें होने वाले गाने-बजाने-नाचने आदि सभी बन्द हो गये। यह उल्टी स्थिति देखकर भगवान् ने गर्भ में हिलना-डुलना आरभ कर दिया। तब त्रिशला को पुनः संतोष और विश्वास हुआ। रानी के संतोष तथा विश्वास पर राजप्रासाद में भी हर्ष छा गया।

भगवान् को तब यह विचार हुआ— जैसें मेरा हित के लिए किया गया कार्य अहित के लिए हुआ, इसी प्रकार भविष्य में लोग पराये का हित करेंगे, फिर भी उन्हें प्रत्यक्ष ( तत्काल ) में प्रायः अहित मिलेगा। ( कर्म तो शुभ ही बंधेगे। ) उसके पश्चात् उन्होंने ममतावश यह अभिग्रह ( निश्चय ) किया कि 'मैं माता-पिता के जीवित रहते दीक्षित नहीं बनूंगा।

## भगवान का जन्म

दोनों गर्भ के मिला कर आषाढ़ शुक्ला ६ छठ की रात से चैत्र शुक्ला तेरस की रात तक ९ महीने और साढ़े सात ( कुछ अधिक सात ) रात बीतने पर' जब ग्रह-नक्षत्र उच्च स्थान पर थे, दिशा निर्मल थी, शकुन उत्तम थे, वायु प्रद-

क्षिणावर्त थी, धान्य निपजा हुआ था और देश सुखी था, तब त्रिशला ने सुखपूर्वक भगवान् को जन्म दिया।

भगवान् का जन्म होते ही कुछ समय के लिए तीनों लोक में प्रकाश और नारकीय आदि सभी जीवों को शांति मिली। ५६ छप्पन दिशा-कुमारियों ने आकर भगवान् का शुचि-कर्म, मंगल-गान आदि कार्य किया। उसी समय अच्युत आदि तिरेसठ इन्द्र तो अपने परिवार सहित मेरु पर्वत पर गये और शक्रेन्द्र भगवान् के जन्मस्थान पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने भगवान् और माता त्रिशला को वंदन किया। फिर त्रिशला माता की स्तुति करके उन्हें अपना परिचय देते हुए कहा —'मैं भगवान् का जन्म-कल्याण मनाने आया हूँ, अतः आप भयभीत न हों।' यह कर उन्होंने परिवार सहित त्रिशलाजी को 'अवस्थापिनी' नामक गाढ़ निद्रा दे दी। पश्चात् भगवान् का प्रतिबिम्ब बनाया। उसे माता के पास रक्खा और भगवान् को अपने हाथों में उठा कर जय जयकार के मध्य मेरु पर्वत पर लाये। वहां जीताचार (अनादि रीति) के अनुसार सबने मिलकर भगवान् का जन्म-कल्याण मनाया।

## मेरु कम्पन

उस समय भगवान् को सैकड़ों घड़ों से स्नान कराने के पहले भगवान् का छोटा-सा शरीर देख शक्रेन्द्र के मन में शंका हुई कि 'भगवान् इतनी अधिक जलधार को कैसे सहन कर सकेंगे? भगवान् ने अवधि-ज्ञान से शक्रेन्द्र की इस शंका को जान कर उस शंका को दूर करने के लिए

बांयें पैर के अंगूठे से ही मेरु पर्वत को कंपा दिया । यह देख कर शक्र के मन की शंका दूर हो गई। ऐसा था भगवान् का बाल्यकाल का शारीरिक बल।

भगवान् का जन्म-कल्याण महोत्सव हो जाने पर शक्रेन्द्र ने उसी रात में भगवान् को माता के पास ले जा कर रख दिया तथा दी हुई अवस्थापिनी निद्रा हटा कर वे अपने स्थान को चले गये।

## सिद्धार्थ द्वारा जन्मोत्सव

महाराजा सिद्धार्थ ने प्रातःकाल होने पर भगवान् का जन्मोत्सव मनाने का आदेश दिया। बन्दी छोड़े गये। मान-उन्मान ( तोल-माप ) में वृद्धि की गई। नगर को सजाया गया । शुल्क-कर आदि रोके गये । नाट्य, वाद्य, गीत, नृत्य आदि के साथ दस दिन बिताये गये। पुरजनों ने हर्ष से सिद्धार्थ राजा को सहस्त्रों, लाखों स्वर्ण-मुद्राएं आदि भेंट की। राजा ने भी प्रतिदान में इसी प्रकार दिया। ग्यारहवें दिन अशुचि-कर्म निवारण करके बारहवें दिन महाराज ने सभी ज्ञाति मित्र आदि को भोज दिया और उनके सामने अपने पूर्व निश्चय को प्रकट करते हुए भगवान् का नाम वर्द्धमान रक्खा।

## पांच धायपूर्वक पालन

उसके पश्चात् महाराजा सिद्धार्थ ने भगवान् के संरक्षण के लिए ये पांच धाएं रक्खीं— १. दूध, अन्न आदि पिलाने

खिलाने वाली, २. स्नान, मंजन, शुद्धि आदि करने वाली, ३. आभूषण, वस्त्र, केश, पुष्प आदि का अलंकार करने वाली, ४. क्रीड़ा कराने वाली और ५ अंक (गोद) में रखने वाली। ये सब धायें सिद्धार्थ ने अपने हर्ष और कुल-रीति आदि के लिए ही रक्खीं क्योंकि शक्रेन्द्र भगवान् के अंगूठे में अमृत भर देते हैं और भगवान् उस अंगूठे को ही चूसते हैं तथा भगवान् के शरीर में किसी प्रकार अशुचि न तो रहती है, न लगती है तथा भगवान् बाल-अवस्था में भी रोते आदि नहीं हैं।

इस प्रकार भगवान् चम्पक वृक्ष की भांति क्रमशः सुखपूर्वक बढ़ने लगे।

## बालक वर्द्धमान की देव-परीक्षा

आठ वर्ष के होने से पहले की बात है। भगवान् यद्यपि क्रीड़ा की इच्छारहित थे, परन्तु समान वय वाले बालकों के आग्रह से वे नगर के बाहर खेलने के लिये गये। वहां वृक्ष पर चढ़ने-उतरने का खेल आरंभ हुआ।

इधर देवलोक में शक्रेन्द्र ने सभा के बीच यह प्रशंसा की—'भगवान् यद्यपि इतने छोटे बच्चे हैं, परन्तु उन्हें कोई भयभीत नही कर सकता।' यह सुनकर एक मिथ्यादृष्टि देव इन्द्र के वचनों को असत्य करने के लिए वहां आया और भयंकर सर्प का रूप बना कर जहां वर्धमानादि खेल रहे थे, उस वृक्ष को लिपट गया। सभी बच्चे उस भयंकर सर्प को देख कर भयभीत हुए और भागने लगे परन्तु निर्भय वर्धमान ने उस भयंकर सर्प को हाथों में उठाया और एक

ओर ले जाकर रख दिया । यह देखकर बालक फिर से लौट आये और वर्धमान के साथ कन्दुक (गेंद) का खेल खेलने लगे। उसमें यह पण (शर्त) थी कि जो हारे, वह बैल-घोड़ा बनेगा और जीतने वाला ऊपर चढ़ेगा। देव भी एक बालक का रूप बना कर साथ ही खेलने लगा। कुछ क्षण में ही वह जान-बूझ कर हार गया और बोला— 'वर्धमान ने मुझे जीत लिया है, इसलिए ये मेरे कन्धे पर चढ़े।' वर्धमान उसके कन्धे पर चढ़े। देव ने वर्धमान को भयभीत करने के लिए तत्काल सात-आठ ताड़ जितना ऊंचा शरीर बना लिया। तब भगवान् ने उसकी वास्तविकता जानकर उसकी पीठ पर वज्र के समान मुट्ठी-प्रहार किया। उससे वह पीड़ित होकर शीघ्र ही छोटा बन गया। उसने शक्रेन्द्र के वचन को सत्य माना और भगवान् को अपने आने आदि का कारण बता कर तथा क्षमा मांग कर स्वस्थान पर चला गया। ऐसी थी भगवान् की बाल-अवस्था की निर्भयता।

## लेखशाला में

जब भगवान् कुछ अधिक आठ वर्ष के हो गये, तब महाराजा सिद्धार्थ इस बात का विचार किये बिना ही कि 'भगवान् जन्म से ही अवधि-ज्ञानी होते है, भगवान् को बड़े समारोह के साथ लेखशाला में पढ़ने को ले गये। पंडितजी भी उनको लेख आरंभ कराने की सामग्री जुटाने लगे। जब शक्रेन्द्र को यह जानकारी हुई तो वे वहां ब्राह्मण का रूप लेकर आये और भगवान् को पंडित योग्य आसन पर बिठा कर उनसे ऐसे विकट प्रश्न पूछे, जिनके संबंध में पण्डित को

भी अव तक संशय था परन्तु भगवान् ने उस वाल-अवस्था में भी उनका उत्तर वहुत सुन्दरता से तथा शीघ्रता से दिया। यह देखकर वहां के सभी उपस्थित लोग चकित रह गये। तव शक्रेन्द्र ने लोगों को ज्ञान कराया कि भगवान् जन्म से अवधि-ज्ञानी होते हैं। अन्त में पण्डित ने वड़े सम्मान से भगवान् को वहां से विदाई दी और सिद्धार्थ उन्हें अपने घर लेकर आये। ऐसा था भगवान् का वाल-अवस्था का ज्ञान।

## यशोदा का पाणिग्रहण

धीरे-धीरे जव भगवान् युवावस्था में आये, तव माता-पिता ने लग्न के लिए वहुत आग्रह किया। उस समय भोग फल देने वाले कर्मों के उदय को जानकर भगवान ने यशोदा नाम वाली राजकन्या से पाणिग्रहण किया। कुछ काल के पश्चात् उनके एक पुत्री का जन्म हुआ। उसका नाम 'प्रियदर्शना' रक्खा गया। भविष्य में उसका जमाली नामक क्षत्रिय पुत्र के साथ विवाह किया गया।

## माता-पिता का स्वर्गवास

भगवान् महावीर स्वामी अट्ठावीस वर्ष के हुए तव की वात है— उनके माता-पिता भगवान् पार्श्वनाथ के मानने वाले श्रावक-श्राविका थे। उस समय उन्होंने अंतिम समय जान कर संथारा संलेखना करके अनशन किया। काल करके वे वारहवें देवलोक में उत्पन्न हुए। वहां से वे मनुष्य वन-कर दीक्षा लेकर सिद्ध होंगे।

भगवान् के सुपार्श्व नामक काका थे । नंदिवर्धन नामक सगे बड़े भाई थे और सुदर्शना नामक सगी बड़ी बहन थी । ये और अन्य सभी ज्ञाति मित्र आदि सिद्धार्थ राजा और त्रिशला रानी के स्वर्गवासी हो जाने पर बहुत शोकाकुल हुए । तब भगवान् ने स्वयं शांति रक्खी और सभी को धैर्य दिलाया ।

## राजपद अस्वीकार

माता-पिता के स्वर्गवास के पश्चात् नंदिवर्धन ने भगवान् से कहा—'पिता का राज-भार तुम स्वीकार करो । तुम बुद्धिमान, बलवान और सर्वगुण-संपन्न हो । अतः राज्य तुम्हें ही करना चाहिए।' तब राज्यादि के निस्पृही भगवान् ने उन्हें कहा—' राजनियम के अनुसार बड़ा भाई ही राज्य करता है अतः तुम्हीं राज्य करो ।' जब अन्त तक भगवान् राजा बनने के लिए तैयार नहीं हुए, तो नंदिवर्धन को राजा बनना पड़ा ।

## दो वर्ष और गृहवास

माता-पिता के स्वर्गवास हो जाने पर भगवान् का गर्भावस्था में कर्मों के उदय से ममतावश लिया हुआ अभिग्रह पूरा हो चुका था । तब विनयशील भगवान् ने बड़े भाई से दीक्षा की अनुमति मांगी । दीक्षा की बात सुन कर नंदिवर्धन को आँसू आ गये । उन्होंने कहा—'भाई ! अभी माता-पिता का स्वर्गवास हुआ ही है । हम अभी उनका भूल भी नहीं पाये कि 'तुम यह क्या कह रहे हो ?' भग-

वान् ने कहा 'भाई, सभी जीव, सभी जीव के साथ सभी नाते अनन्त बार कर चुके हैं, अतः इसको लेकर गृहवास में रहना उचित नहीं।' तब नंदिवर्धन बोले—'भाई! यह सब मैं भी जानता हूं, परंतु मुझे तुम प्राणों से भी अधिक प्यारे हो, अतः तुम्हारा विरह का शब्द भी मुझे बहुत पीड़ित करता है। इसलिए अधिक नहीं तो कम-से-कम मेरे कहने से दो वर्ष और गृहवास में ठहरो। तब भगवान् ने कहा—'तथास्तु, परन्तु मैं आज से भोजन-पान अचित ही करूंगा तथा लौकिक कार्यों में भी मेरी कोई सम्मति आदि नहीं होगी।' नंदिवर्धन ने इसको स्वीकार किया। भगवान् अपने कहे अनुसार उपर्युक्त अभिग्रह-सहित तथा ब्रह्मचारी होकर रहे। ऐसा करके भगवान् ने—'वैरागी को संसार में रहना पड़े, तो कैसा रहे'— इसका आदर्श प्रकट किया।

## वार्षिक दान

इस घटना के लगभग एक वर्ष हो जाने पर भगवान् ने एक वर्ष पश्चात् दीक्षा लेने का विचार किया। तब लोकान्तिक देवों ने उपस्थित होकर भगवान् से धर्मतीर्थ प्रवर्तन (चालू) करने की प्रार्थना की। भगवान् ने तभी से नित्य प्रातःकाल एक प्रहर तक वार्षिक दान देना प्रारंभ किया। इन्द्र की आज्ञा से जृम्भक जाति के देवों ने भगवान् के भण्डार भर दिये। नित्य एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण-मुद्रा दान देने की गणना से भगवान् ने एक वर्ष में तीन अरब ८८ करोड़ ८० लाख स्वर्णमुद्राएँ दान में दीं। इस प्रकार भगवान् ने दान-धर्म प्रकट किया और जैनधर्म का गौरव बढ़ाया।

## दीक्षा

वार्षिक दान की समाप्ति पर नंदीवर्धन को दो वर्ष तक और गृहवास में रहने का दिया हुआ वचन पूर्ण हो गया, तब विनयशील भगवान् ने पुनः नंदीवर्धन से दीक्षा की अनुमति मांगी। विवेकी नंदीवर्धन ने बड़े दुःख के साथ अनुमति दी। राजा नंदीवर्धन और इन्द्रों ने मिल कर बड़े समारोह के साथ भगवान् का निष्क्रमण (गृहवास से निकलने का) उत्सव मनाया। भगवान् सभी लौकिक वस्तुएं परित्याग कर तथा संबंधियों को धनादि बांट कर ज्ञात-खंड उद्यान में पधारे। वहां सब आभूषण त्याग कर छट्ठे (बेले) के तप में पंच-मुष्ठि-लोच करके भगवान् ने मृगशीर्ष कृष्णा १० को पिछले प्रहर में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेते ही भगवान् को मनःपर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ। दीक्षा हो जाने पर नंदीवर्धन व इन्द्रादि सब भगवान् को नमस्कार करके स्व-स्थान पर चले गये। इधर भगवान् वहां से कूर्मग्राम को विहार कर गये।

## ग्वाले का उपसर्ग और इन्द्र-सहायता अस्वीकार

वहां पहुँच कर गांव के बाहर भगवान् कायोत्सर्ग करके खड़े हो गये। वहां एक ग्वाला सारे दिन बैलों को हल में चला कर संध्या के समय आया और भगवान् के पास बैलों को छोड़ कर गायें दूहने चला गया। इधर बैल भी चरने के लिये दूसरी ओर चले गये। लौटने पर ग्वाले ने बैलों को नहीं देख कर भगवान् से पूछा—'आर्य! बैल कहां है?' भगवान् मौन रहे। तब वह—'यह (भगवान्)

जानता नहीं होगा'—यह सोच कर वन में वैलों को ढूंढ़ने गया। इधर वैल चरते–चरते और रात पूरी होते–होते पुनः भगवान् के पास आ गये। उधर वैलों को ढूंढ़ते–ढूंढ़ते जव ग्वाला भी पुनः प्रातःकाल भगवान् के निकट आया और वैलों को भगवान् के पास वहां पाया, तव उसे वहुत क्रोध आया। उसने सोचा—"इसने जानते हुए भी सारी रात मुझे व्यर्थ घुमाया।" वह रस्से का कोड़ा वना कर भगवान् को मारने दौड़ा। उसी समय शक्रेन्द्र अवधि–ज्ञान से यह जान कर वहां पहुंचे और ग्वाले को हटाया।

फिर भगवान् को निवेदन किया कि "भगवन्! अभी आपको केवल–ज्ञान उत्पन्न होने में १२॥ वर्ष (कुछ कम १३ वर्ष) समय लगेगा। जव पहली ही रात्रि को आपको ऐसा उपसर्ग हुआ है तो इतने समय में आपको न जाने कितने उपसर्ग आयेंगे? इसलिए मैं केवल–ज्ञान उत्पत्ति तक आपकी सेवा में सहायता के लिये रहना चाहता हूं। भगवान् ने कहा—"देवेन्द्र! न कभी ऐसा हुआ, न कभी ऐसा होता है तथा न कभी ऐसा होगा कि—कोई तीर्थंकर देवेन्द्र, असुरेन्द्र या नरेन्द्र की सहायता से केवल-ज्ञान उत्पन्न करे। वे स्वयं के पराक्रम से ही केवल–ज्ञान उत्पन्न करते हैं।" शक्रेन्द्र भगवान् के इन वचनों को सुन कर निराश हो लौट गये। ती ँकर ऐसे पराक्रमी हुआ करते हैं।

अपने पर क्रोड़ा उठाने वाले पर भगवान् ने द्वेष नही किया तथा अपनी रक्षा के लिए आये हुए इन्द्र पर राग नहीं किया। इस प्रकार भगवान् छद्मस्थ (केवल–ज्ञान रहित) अवस्था में भी वीतराग के समान रहे। धन्य है, ऐसे वीत-राग प्रभु को।

## प्रथम पारणा

दूसरे दिन प्रातःकाल 'कोलाक' ग्राम में 'बहुल' नामक ब्राह्मण के यहां भगवान् का परमान्न (खीर) से पारणा हुआ। देवों ने तब पंच दिव्य प्रकट किये। पारणा करके भगवान् वहां से चले गये और ममता आदि अन्य रुकावट रहित अप्रतिबन्ध विहार करने लगे।

## उपसर्ग आरंभ

दीक्षा के समय भगवान् के शरीर पर देवादिकों ने चन्दनादि का लेप किया था। चार मास से अधिक समय तक उसकी गंध से आकृष्ट भौंरे भगवान् के शरीर में तेज दंश देते रहे परन्तु भगवान् उन्हें समतापूर्वक सहन करते रहे। कुछ विलासी युवक भगवान् से गन्धपुटी मांगते और भगवान् के मौन रहने पर क्रोध में आकर प्रतिकूल (इन्द्रिय मन शरीर को भले न लगने वाले) उपसर्ग (कष्ट) देते। कुछ स्त्रियां उनके दिव्य रूप को देख कर दुर्भावना प्रकट करती। परन्तु भगवान् उन प्रतिकूल-अनुकूल सभी उपसर्गों को सहते हुए अहिंसा व ब्रह्मचर्य आदि का पालन करते रहे।

## शूलपाणि का उपसर्ग तथा उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति

सबसे पहले चातुर्मास के लिए भगवान् 'अस्थिक' ग्राम पधारे। वहां उन्होंने स्थान के लिए 'शूलपाणि यक्ष' के मंदिर की याचना की। गांव के लोगों ने कहा—'इस मंदिर का शूलपाणि यक्ष अपने मंदिर में रात्रि विश्राम करने

वाले को मार डालता है, अतः आप यहां न ठहरें ।' भगवान् जान रहे थे कि 'यह बोध पाने वाला है, अतः उन्होंने कहा— अस्तु, आप इसका विचार न करें, मुझे आज्ञा दे दें।' एक पुरुष चातुर्मास-वास के लिए दूसरी वसति देने लगा, परन्तु भगवान् उसे स्वीकार न करके वहीं ठहरे। संध्या-पूजा के लिए आये हुए इन्द्रशर्मा पुजारी ने भी भगवान् को वहां न ठहरने की बहुत प्रार्थना की परन्तु भगवान् ने उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की।

शूलपाणि यक्ष को यह देख बहुत ही क्रोध आया— 'गांव के लोग और पुजारी के कहने पर और दूसरी वति मिलते हुए भी यह यहीं ठहरा, अतः इसको इसका अच्छा फल दिखाना चाहिए।' उसने सूर्यास्त होते ही भीम अट्टहास से भगवान् को भयभीत करने का प्रयत्न किया, परन्तु वह सफल नहीं हुआ। तब उसने १. हाथी, २. पिशाच और ३. सर्प के रूप से उपसर्ग किये। (इन उपसर्गों के विस्तृत वर्णन के लिए कामदेव की कथा देखो।) इससे भी जब वह भगवान् को डिगा न सका, तब उसने क्रमशः भगवान् के- १. शिर, २. कान, ३. आंख, ४. नाक, ५. दांत, ६. नख और ७. पीठ— इन सात अंगोपांगों में ऐसी भयंकर वेदना उत्पन्न की, जिस एक-एक वेदना से सामान्य मनुष्य मर सकता था, परंतु उन वेदनाओं में भी भगवान् निर्भय, शांत और दृढ़ रहे। तब वह यक्ष भगवान् की महत्ता जान कर उनके पैरों पर गिर पड़ा और उसने बार-बार क्षमा याचना की। अन्त में वह बोध पाकर धर्मी बना और उसने सदा के लिये हिंसा छोड़ दी।

## देवदूष्य का त्याग

चातुर्मास पूर्ण हो जाने पर भगवान् ग्रामानुग्राम (एक गांव से दूसरे गांव) विचरने लगे। जब भगवान् दीक्षित हुए, तब इन्द्र ने उनके कन्धे पर एक 'देवदूष्य' नामक लाख स्वर्णमुद्रा मूल्य का वस्त्र रक्खा था। वह तीनों ऋतुओं के अनुकूल सुखदाई था! शीतकाल में ऊष्ण, ऊष्णकाल में शीत और वसंत ऋतु में शक्तिप्रद था, परन्तु भगवान् ने कभी उसका उपयोग नहीं किया। दीक्षा लिए जब एक वर्ष और एक महीना पूरा हुआ, तब वह भगवान् के कन्धे से अपने आप गिर कर कांटों में जा पड़ा। भगवान् ने उसे जीवादि रहित स्थान में गिरा देख कर वोसिरा दिया। भगवान् का वह देवदूष्य वस्त्र कांटों में गिरा, यह इसका प्रदर्शक था कि भगवान् का भावी शासन बहुत कांटों वाला होगा। अर्थात् १. उसमें बखेड़ा करने वाले बहुत होंगे, २. शासन विभिन्न संप्रदायों में बँट कर चालनी–सा बन जायेगा और ३. अच्छे साधुओं को सम्मान, वस्त्र, पात्र आदि दुर्लभ होंगे।

## चण्डकौशिक का उपसर्ग व उसको बोध

एक समय भगवान् दक्षिणी 'वाचाल' से उत्तरी 'वाचाल' को सीधे मार्ग से जा रहे थे। मार्ग में ग्वालों ने कहा—'आप इस सीधे मार्ग से न जाइये। इस मार्ग में दृष्टिविष (जिसे भी क्रोध में आकर देखे, उसी को विष चढ़ जाय—ऐसी विषभरी दृष्टिवाला) सर्प रहता है। आप उस दूसरे घुमाव वाले मार्ग से पधारें।' भगवान् जान रहे थे

कि वह सर्प वोध पाने वाला है, अतः वे उसी मार्ग से गये और उसके विल के निकट कायोत्सर्ग करके खड़े हो गये।

वह सर्प पहले के भव में एक तपस्वी मुनि था। वह क्रोधी था। एक वार वह पारणे में वासी भोजन के लिए जा रहा था। मार्ग में उसके पैर से एक मेंढ़की दव कर मर गई। शिष्य के कहने पर उसने दूसरों के पैरों से मरी मेंढ़कियां दिखा कर कहा— 'क्या ये भी मैंने मारी हैं?' अर्थात् जैसे ये दूसरों के पैरों से मर गई हैं, वैसे ही यह भी (जो स्वयं के पैर से दव कर मर गई थी) दूसरों के पैरों से मर गई है। शिष्य ने सोचा—अभी ये क्रोध में आ गये हैं, इसलिए ऐसा कहते हैं, परन्तु संध्या को प्रतिक्रमण में प्रायश्चित्त कर लेंगे। परन्तु तपस्वी ने प्रतिक्रमण में उसका प्रायश्चित्त नहीं किया। जव शिष्य ने उसे स्मरण कराया तो वह पूरे क्रोध में आ गया और मारने दौड़ा, परन्तु वीच में खंभा आ जाने से टकरा कर उसकी मृत्यु हो गई। वहां से वह ज्योतिषी जाति का देव वना। वहां से च्यव कर वह अस्थिक और श्वेताम्विका के मार्ग में रहे हुए एक आश्रम के कुलपति के घर जन्मा। उसका नाम 'कौशिक' रक्खा गया। वहां भी वह चंड (क्रोधी) स्वभाव का था। अतः उसे लोग चण्डकौशिक कहने लगे। पिता के मर जाने पर वह कुलपति वना। क्रोधी स्वभाव के कारण सभी तापस उसके आश्रम से चले गये। एक वार श्वेताम्विका के राजपुत्र उस आश्रम की ओर आये थे। चण्डकौशिक उन्हें परशु लेकर मारने दौड़ा, परन्तु मार्ग में खड्डा आया। उसमें वह परशु के अभिमुख गिर पड़ा। परशु से उसके

सिर के दो भाग हो गये। इससे वह मर कर वहीं सर्प के रूप में जन्मा था।

भगवान् को देख कर उस सर्प को बहुत क्रोध आया। उसने क्रोधयुक्त दृष्टि से भगवान् को तीन बार देखा, परन्तु भगवान् जले नहीं। तब उसने भगवान् के अंगूठे में तीन बार दंश दिया। भगवान् को विष चढ़ा नहीं, परन्तु दूध-सा सफेद लोही निकला। यह देख कर वह आश्चर्य और ईर्ष्या के साथ भगवान् को देखने लगा। भगवान् की सौम्य देह-कांति से उसकी आंखों का विष बुझ गया। भगवान् ने उसे उपदेश दिया—'चण्डकौशिक! क्रोध का उपशम कर।' यह सुन कर व विचार करते-करते उसे पूर्व भव स्मरण हुआ और 'तीर्थंकरों का लोही सफेद होता है'— इस लक्षण को स्मरण कर वह भगवान् को पहचान गया। उसने भगवान् को भाव-वन्दना कर क्षमा मांगी। उसे अपनी क्रोध-वृत्ति पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। 'स्वयं से हुई मेंढ़की की विराधना को स्वीकार न कर शिष्य पर क्रोध करने से मैं जैनमत से गिर कर अन्य मत में पहुंचा और वहां भी क्रोध करने से मैं मनुष्य गति से गिर कर अब तिर्यंचगति में पहुंचा। धिक्कार है मुझे! धन्य है तरण-तारण भगवान् को, जिन्होंने मेरे उद्धार के लिए स्वयं उपसर्ग सहा।'

उसने अपने पापों को नष्ट कर डालने के लिए संलेखना करके अनशन किया। 'मेरी दृष्टि में पहले विष था, यद्यपि अब वह नष्ट हो गया है, परन्तु लोगों को इसकी जानकारी न होने से वे अब भी मुझ से भयभीत होंगे—

यह सोचकर उसने अपना मुंह बांबी में डाल दिया। ऐसी दशा देख ग्वालों के बच्चे कुतूहलवश उसे दूर से कंकरादि फेंक कर मारने लगे। फिर भी वह निश्चल तथा क्षमाशील रहा। यह बात उन बच्चों ने बड़ों को जाकर कही। तब बड़े लोगों ने उसकी ऐसी सुन्दर दशा देख कर घी, मिठाई, फल, फूल आदि से उसकी पूजा की। उन वस्तुओं की गंध से उसके शरीर पर चढ़ कर कई कीड़ियां उसे काटने लगीं। तब भी वह निश्चल तथा क्षमाशील रहा। अन्त में पन्द्रह दिनों में काल करके वह ८ वें देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुआ।

भगवान् की वाणी से उसका उद्धार हो गया। क्रोध छोड़ कर क्षमा अपनाने से वह पशुगति से देवगति में पहुंच गया। इस प्रकार भगवान् पशुओं के भी उद्धारक थे।

## सामुद्रिक पुष्य की आशापूर्ति

एक बार वालू में चलते हुए भगवान् 'स्थूणा' सन्निवेश (उपनगर) के बाहर पधारे और उन्होंने वहां कायोत्सर्ग किया। उनके वालू में बने हुए अत्यन्त सुलक्षणयुक्त पैर के चिह्नों को देख कर 'पुष्य' नामक सामुद्रिक (अंग–रेखा का जानकार) उन पद–चिह्नों के सहारे–सहारे भगवान् के पास पहुंचा। उसे विश्वास था कि 'ऐसे पैर वाला चक्रवर्ती होता है।' वह अकेला कुमार–अवस्था में इधर से गया है। उसकी सेवा में पहुंचने से मुझे धन–राज्यादि की प्राप्ति होगी। परन्तु उसे भगवान् को पूर्ण नग्न देख कर पूरी निराशा हुई और उसका सामुद्रिक विद्या पर विश्वास उठ

गया । तब शक्रेन्द्र ने आकर उसे मनोवांछित धन दिया, सामुद्रिक विद्या पर विश्वास जमाया और 'भगवान् चक्रवर्ती से भी बढ़ कर त्रिलोकीनाथ है'—इसका परिचय दिया ।

## गोशालक की प्रार्थना अस्वीकार

वहां से विहार करके भगवान् दूसरे चातुर्मास के लिए राजगृह पधारे और वहां 'नालन्दा' नामक सन्निवेश की तंतुवाय (बुनकर) की शाला में आज्ञा लेकर ठहरे। वहां पर मंखली पिता और भद्रा माता का पुत्र 'गोशालक' भी मंख (चित्रपट) से आजीविका करता हुआ चातुर्मास के लिए आया और ठहरा ।

उस चातुर्मास में भगवान् ने मास-मास क्षमण (तप) किया । प्रथम मास-क्षमण के पारणे के लिए भगवान् विजय गाथापति (गृहस्थ) के घर पधारे । विजय ने भगवान् को विधि आदि सहित दान दिया । (दान-विधि आदि के विस्तृत वर्णन के लिए सुबाहुकुमार की कथा देखो ।) दान से पांच दिव्य प्रकट हुए । गोशालक ने इस समाचार को सुन कर तथा रत्नवृष्टि आदि देख कर भगवान् को पहचाना और भगवान् से शिष्य बनाने की प्रार्थना की परन्तु भगवान् उसकी प्रार्थना को स्वीकार न करते हुए मौन रहे ।

## गोशालक की प्रार्थना स्वीकृत

चातुर्मास समाप्त होने पर कार्तिकी पूर्णिमा के पश्चात् की प्रतिपदा (एकम्) को भगवान् वहां से विहार कर 'कोल्लाक' सन्निवेश में पहुँचे और उन्होंने बहुल ब्राह्मण

के यहां पारणा किया। भगवान् को पुनः तन्तुवायशाला में न लौटे देख कर गोशालक ने अपने चित्र और वेषादि उपकरण किसी अन्य ब्राह्मण को दे दिये और मुण्डित होकर भगवान् को ढूंढ़ता हुआ वह कोल्लाक सन्निवेश में पहुंचा। वहां पंच दिव्य आदि देख उसने निश्चय किया—'ये दिव्य आदि मेरे धर्माचार्य भगवान् महावीर को ही प्राप्त हैं, अन्य किसी को भी नहीं। अतः भगवान् यहीं हैं।' इसके पश्चात् उसने भगवान् को कोल्लाक सन्निवेश के बाहर ही पा लिया। वहां भी उसने भगवान् से प्रार्थना की कि 'भगवन्! आप मेरे धर्माचार्य हैं और मैं आपका अन्तेवासी (शिष्य) हूं।' भगवान् ने उसे जब अन्य मत के वेषादि से रहित देखा, तब उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उसके पश्चात् वह गोशालक भगवान् के साथ छह वर्ष तक रहा।

## गोशालक का स्वभाव व गमनागमन

वह गोशालक बहुत उच्छृङ्खल (मर्यादा तोड़ने वाला) और उद्दण्ड (मर्यादाहीनता को सिद्ध करने वाला) था। कभी वह बच्चों को भयभीत करता, कभी किसी की हँसी उड़ाता, कभी किसी की निन्दा करता, कभी किसी से 'अरे-तुरे' करता और कभी स्त्रियों से छेड़छाड़ भी करता था। अतः कई स्थानों पर वह राजकुमारों, कोटवालों तथा गांव वालों के द्वारा पीटा जाता था परन्तु अन्त में भगवान् का सेवक आदि समझ कर लोग उसे छोड़ देते थे।

एक बार उसने भगवान् से कहा—'मैं तो पीटा जाता हूं और आप कायोत्सर्ग में ही खड़े रहते हैं, अतः मैं आपके

साथ नहीं रहूंगा।' ऐसा कह कर वह चला गया। छह महीने तक वह स्वच्छन्द घूमता रहा। परन्तु उसकी उच्छृङ्खल और उद्दण्ड वृत्ति से वह सर्वत्र पीटा जाता था। वहां उसे भगवान् के नाम पर भी कोई छुड़ाने वाला नहीं मिलता था। इससे वह हताश होकर पुनः भगवान् की सेवा में आ गया।

## तिल-पौधे संबंधी भविष्यवाणी सफल

एक वार की बात है कि शरद् ऋतु में भगवान् गोशा-लक के साथ सिद्धार्थ गांव से कूर्म गांव जा रहे थे। मार्ग में एक पत्र-फूल आदि सहित हरा-भरा सुन्दर तिल का पौधा देख कर गोशालक ने वन्दन-नमस्कार कर भगवान् से पूछा—'१. इस पौधे में तिल लगेगे या नहीं तथा २. इस पौधे के सात फूल के जीव मर कर कहां जाकर उत्पन्न होंगे?' भगवान् ने उत्तर दिया—'१. इस पौधे में तिल होंगे और २. ये सात फूल के जीव मर कर इस पौधे की एक फली में सात तिल के रूप में उत्पन्न होंगे।'

तब वह कुशिष्य भगवान् के इन वचनों पर श्रद्धा न करते हुए भगवान् को मिच्छावादी (झूठा) ठहराने के लिए वहां से खिसका, तिल-पौधे के पास पहुँचा और उसने उसे मिट्टी के ढेले सहित समूल उखाड़ कर एकान्त में फेंक दिया। फिर वह भगवान् से जा मिला।

तत्क्षण ही आकाश में बादल घुमड़ आये। बिजली व कड़ाके के साथ वर्षा हुई। पानी और कीचड़ को पाकर

## गोशालक के वाद और पन्थ

गोशालक ने इस घटना से—१. नियतिवाद (जो होना है, वह होता ही है और अपने आप ही होता है। वह न तो पुरुषार्थ से होता है, न वह पुरुषार्थ से रुकता है।) तथा २. परिवर्तपरिहारवाद (विना मरे जीव का अन्य शरीर में परिवर्तित होना और पूर्व शरीर का परित्याग करना)—ये दो सिद्धान्त वनाये।

इसके पश्चात् उसने भगवान् से जानी हुई विधि करके छह महीने में तेजोलेश्या प्राप्त की तथा उसे एक दासी पर प्रयोग करके उसके मर जाने पर उसकी प्राप्ति पर विश्वास किया। इसके पश्चात् उसे भगवान् पार्श्वनाथ के छह पार्श्वस्थ (ज्ञानक्रिया को एक ओर रख कर चलने वाले) मिले। उनसे उसने भूत में हुए व भविष्य में होने वाले—१. लाभ, २. अलाभ, ३. सुख, ४. दुःख, ५. जीवन और ६. मरण इन छह वातों को जान लेने की विद्या सीख ली।

इस प्रकार वह तेजोलेश्या और निमित्त-विद्या को जान कर अपने आपको झूठ-मूठ सर्वज्ञ व तीर्थंकर कह कर विचरने लगा।

## अनार्य देश के उपसर्ग

छद्मस्थकाल के पांचवें वर्ष में और नवें वर्ष में इस प्रकार दो वार भगवान् अनार्य देश में अपने कठिन एवं वहुत कर्मों की निर्जरा के लिए पधारे थे। वहां के लोग स्वभाव से क्रूर थे। वे भगवान् को गांव में घुसने नहीं

जाना, जाना, जाना ।' उसके इस कथन का भाव यह था कि 'आप मुझसे महान् हैं तथा आपके प्रभाव से यह गोशालक नहीं जला है—यह मैंने जाना ।'

गोशालक ने यह सुनकर भगवान् से पूछा—'यह जाना, जाना, जाना—क्या कहता है ?' तब भगवान् ने गोशालक को उसके द्वारा वैश्यायन को देखना, खिसकना, हँसी उड़ाना और वैश्यायन द्वारा उस पर लेश्या फेंकना, उसकी स्वयं रक्षा करना आदि सब बातें बताते हुए 'जाना जाना, जाना' का अर्थ बताया। तब गोशालक ने भगवान् से तेजोलेश्या-प्राप्ति की विधि पूछी । भगवान् ने भावीवश उसे विधि बताई।

## गोशालक का पृथक् होना

इसके पश्चात् की बात है कि पुनः भगवान् कूर्म गांव से सिद्धार्थ गांव पधार रहे थे । गोशालक साथ में था। उसने भगवान् की हँसी उड़ाने के लिए कहा—-भगवन् ! आप जो पौधा फलने आदि की बातें कर रहे थे, वे अब प्रत्यक्ष झूठी दिखाई दे रही हैं।' तब भगवान् ने उसे 'उसकी झूठा ठहराने की भावना और अपने वचन कैसे सत्य हुए' आदि सारी बातें कह सुनाईं । फिर भी उसे विश्वास नहीं हुआ। तब उस धृष्ट ने भगवान् के ही सामने जाकर उस तिल के पौधे को देखा और उसकी फली तोड़ कर तिल गिने । भगवान् की बात सच्ची निकलने पर भी भगवान् पर श्रद्धा करना तो दूर रहा,वह भगवान् से भिन्न हो गया।

## गोशालक के वाद और पन्थ

गोशालक ने इस घटना से—१. नियतिवाद (जो होना है, वह होता ही है और अपने आप ही होता है। वह न तो पुरुषार्थ से होता है, न वह पुरुषार्थ से रुकता है।) तथा २. परिवर्तपरिहारवाद (बिना मरे जीव का अन्य शरीर में परिवर्तित होना और पूर्व शरीर का परित्याग करना)—ये दो सिद्धान्त बनाये।

इसके पश्चात् उसने भगवान् से जानी हुई विधि करके छह महीने में तेजोलेश्या प्राप्त की तथा उसे एक दासी पर प्रयोग करके उसके मर जाने पर उसकी प्राप्ति पर विश्वास किया। इसके पश्चात् उसे भगवान् पार्श्वनाथ के छह पार्श्वस्थ (ज्ञानक्रिया को एक ओर रख कर चलने वाले) मिले। उनसे उसने भूत में हुए व भविष्य में होने वाले—१. लाभ, २. अलाभ, ३. सुख, ४. दुःख, ५. जीवन और ६. मरण इन छह बातों को जान लेने की विद्या सीख ली।

इस प्रकार वह तेजोलेश्या और निमित्त-विद्या को जान कर अपने आपको झूठ-मूठ सर्वज्ञ व तीर्थंकर कह कर विचरने लगा।

## अनार्य देश के उपसर्ग

छद्मस्थकाल के पांचवें वर्ष में और नवें वर्ष में इस प्रकार दो बार भगवान् अनार्य देश में अपने कठिन एवं बहुत कर्मों की निर्जरा के लिए पधारे थे। वहां के लोग स्वभाव से क्रूर थे। वे भगवान् को गांव में घुसने नहीं

देते थे, रोटी-पानी नहीं देते थे, उन्हें मुण्डा-मुण्डा आदि अपशब्द कहते थे, उनके पीछे कुत्ते भी छोड़ देते थे। कहीं ध्यान लगाये देखते तो ठोकर मार कर लुढ़का देते थे। कोई रात्रि में उन्हें कायोत्सर्ग में खड़े देख कर पूछते कि 'तू कौन है?' जब इस प्रश्न का भगवान् से उत्तर नहीं मिलता तो वे उन्हें कोड़े आदि से मारते और बांध भी देते थे। कोई उन्हें गुप्तचर समझ कर कष्ट देते। परन्तु भगवान् वहां शीत, ताप, भूख, प्यास, अपशब्द, वध आदि सभी प्रकार के उपसर्ग समतापूर्वक सहते रहे।

## संगम द्वारा इन्द्र-प्रशंसा का विरोध

छद्मस्थकाल के ग्यारहवें वर्ष की बात है। भगवान् 'पेढ़ाला' नगरी के 'पोलास चैत्य' में तेले की रात्रि को एक ही अचित्त पुद्गल पर दृष्टि जमा कर खड़े हुए थे। उस समय शक्रेन्द्र ने देवसभा में भगवान् की उपसर्ग दृढ़ता की प्रशंसा करते हुए कहा कि—'भगवान् को देव-दानव कोई भी नहीं डिगा सकता। तब शक्रेन्द्र का सामानिक (समान ऋद्धि वाला) 'संगम' नामक अभव्य (कभी भी मोक्ष में न जाने वाला) देव बोला—'भगवान् के प्रति राग (ममता) के कारण ही देवेन्द्र इस प्रकार वर्धमान की मिथ्या प्रशंसा कर रहे हैं, अन्यथा कौन ऐसा मनुष्य है, जो देव से विचलित न हो? मैं अभी वर्धमान को विचलित करके बताता हूं।'

'मैं यदि इसे रोकूंगा तो 'भगवान् के रागी भगवान् की मिथ्या प्रशंसा करते हैं'—यह भाव अधिक दृढ़ हो

जायेगा'—यह सोच कर हृदय को बहुत दुःख पहुँचने पर भी भगवान् को उपसर्ग देने के लिए जाते हुए संगम को इन्द्र रोक न सके,

## संगम द्वारा एक रात्रि में बीस उपसर्ग

भगवान् के पास पहुंच कर संगम ने पहला १. धूलि वर्षा का उपसर्ग दिया, जिससे भगवान् का शरीर, कान, आंख, नाक आदि भर गये, परन्तु भगवान् विचलित नहीं हुए। तब उसने भगवान् को विचलित करने के लिए दूसरा, दूसरे से भी विचलित न होने पर तीसरा, तीसरे से भी विचलित न होने पर चौथा—यों क्रमशः एक ही रात्रि में आगे लिखे जाने वाले २० उपसर्ग दिये। १. धूल-वर्षा की। २. कीड़ियां बन कर भगवान् के शरीर को चालनी-सा छिदवाया। ३. डाँस और ४ कीड़े बन कर काटा। ५. बिच्छू और ६ सर्प बन कर दंश दिये। ७. नेवले ८. चूहे बन कर काटा। ९. हाथी और १०. हथिनी बन कर उछाला, रौंदा। ११. पिशाच होकर खड्ग से खण्ड-खण्ड किये। १२. व्याघ्र

जब ये बीस उपसर्ग करके भी संगम भगवान् को डिगा नहीं सका तो उसे बहुत क्रोध आया।

## संगम के छह मासिक उपसर्ग

रात्रि पूर्ण होने पर भगवान् वहां से विहार कर गये। परन्तु वह पीछे ही पड़ा रहा। कहीं चोर बन कर उन्हें उपसर्ग देता। कभी गोचरी गये हुए भगवान् के शरीर को ढक कर स्त्रियों के सामने अपने ऐसे रूप बनाता, जिससे स्त्रियों को ऐसा लगता कि—'यह नंगा हमसे कानी आंख करता है (आंखें लड़ाता है), यह हाथ आदि जोड़ कर हमसे काम-भोग की प्रार्थना करता है, यह पिशाच की भांति उन्मत्त है। यह हमें कष्ट देता है, यह हमारे समक्ष विकृत रूप में खड़ा है।' इस प्रकार दिखाई देने पर कुछ तरुण स्त्रियां स्वयं भगवान् को पीटतीं, कुछ स्त्रियां अपने पति आदि को कह कर पिटवातीं। संगम के ऐसे दुष्कृत्य देख कर भगवान् उपसर्ग से तो विचलित नहीं हुए परन्तु 'इससे जैन-धर्म का महान् अपमान होता है, उसके प्रति लोग अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते हैं'—यह सोच कर उन्होंने गांव आदि में भिक्षार्थ जाना ही बंद कर दिया।

फिर भी उस दुरात्मा ने भगवान् को उपसर्ग देना नहीं छोड़ा। भगवान् गांव के बहार कायोत्सर्ग करके खड़े रहते। परन्तु वह उनका बालक शिष्य बन कर गांव में जाता। वहां कहीं सेंध लगाता। कभी सेंध लगाने आदि का स्थल ढूंढ़ता। तब लोग उसे पकड़ कर मार-पीट करते। वह कहता—'मैं स्वयं कुछ नहीं करता, मुझे तो

गांव के बाहर खड़े मेरे गुरु जो कहते हैं, वही करता हूं।'
तब लोग गांव के बाहर आकर भगवान् की मार-पीट
करते। परन्तु भगवान् फिर भी उसे सहते रहे।

## भगवान् की सहिष्णुता व अनुकम्पा

अपराधी न होते हुए भी दूसरों के समक्ष अपराधी
बताना, वह भी असदाचारी के रूप में— उसे सहन करना
कितना कठिन होता है? परन्तु भगवान् ने उसे भी सहा।
अपराध में प्रेरक न होते हुए भी भगवान् को प्रेरक बताया,
तब भी भगवान् शांत रहे। धन्य है, ऐसे परीषह-सहिष्णु
प्रभु को! संगम ने भगवान् को इस प्रकार छह मास तक
कष्ट दिये। छह मास समाप्त होने पर भगवान् छह-मासी
तप के पारणे में गोकुल में गये। परन्तु वहां भी उस महा-
पापी ने घर अशुद्ध (असूझता) कर दिया। भगवान्
तब भी अविचल रहे। अन्त में वह हारा। प्रभु का धैर्य
जीता। पैरों में पड़ कर उसने भगवान् से बार-बार क्षमा-
याचना की। उसने कहा— भगवन्! शक्र ने जो आपकी
प्रशंसा की, वह मिथ्या प्रशंसा नहीं थी, वह यथार्थ प्रशंसा
थी। मेरी प्रतिज्ञा विफल गई और आपका धैर्य विजयी
रहा। मैं हारा और आप जीते। अब आप पारणे के लिए
पधारिये।' भगवान् ने उत्तर दिया—संगम! मैं पारणे के
लिए जाऊं चाहे न भी जाऊं, परन्तु तुमने जो मुझे उपसर्ग
दिये, उस सम्बन्ध में किसी से कुछ न कहना, अन्यथा मेरे
रागी तुम्हें बहुत दुःख देंगे।' अहा! धन्य है, भगवान् की
भगवत्ता। कष्ट देने वाले के प्रति भी कितनी अनुकम्पा!

परन्तु कष्ट देने वाले का मुंह छुपा नहीं रहता।

जब संगम भगवान् को कष्ट देकर देवलोक में पहुँचा तो शक्रेन्द्र ने मुंह फेर लिया और उसे देवलोक-निकाला दे दिया। उसके साथ केवल उसकी देवियां ही जाने दीं। शेष सारा परिवार वह अपने साथ नहीं ले जा सका।

## जीर्ण सेठ की आदर्श दान-भावना

भगवान् ग्यारहवें चातुर्मास के लिए चौमासी तप-पूर्वक 'विशाला' नगरी के 'बलदेव' के मन्दिर में विराजे। वहां श्रावक 'जिनदास सेठ' रहते थे। कुछ वैभव कम हो जाने से लोग उन्हें 'जीर्ण सेठ' कहते थे। वे भगवान् की सेवा करते हुए नित्य भिक्षा के समय अपने घर पर भगवान् की प्रतीक्षा करते कि "भगवान् पारणे के लिए मेरे घर पधारें तो मैं कृतार्थ हो जाऊँ।" परन्तु चार मास हुए, उनकी आशा नहीं फली। चातुर्मास समाप्ति के दिन जीर्ण सेठ ने स्वयं भी इस आशा में पारणा नहीं किया कि—'भगवान् आज तो पारणा करेंगे ही। क्या ही अच्छा हो, यदि भगवान् मेरे हाथ से कुछ ग्रहण करें और फिर मैं खाऊँ!' वे इस मनोरथ में अपने द्वार पर ही खड़े रहे, परन्तु भिक्षा के समय भगवान् ने वहां के एक दूसरे पूर्ण नामक सेठ के यहां पधार कर पारणा कर लिया। उस समय बजी हुई देव-दुन्दुभि सुन कर जीर्ण सेठ अपने आपको मन्द-भाग्य समझ कर बहुत पश्चात्ताप करने लगे। भगवान् को दान देने के लिए जीर्ण सेठ के परिणाम इतने उत्कृष्ट (बढ़कर) थे कि 'यदि जीर्ण सेठ को दुन्दुभिनाद एक घड़ी भर और न सुनाई देता और उनके उत्कृष्ट परिणामों का वह प्रवाह वर्धमान (बढ़ता) रहता, तो उन्हें उस

समय केवल-ज्ञान प्राप्त हो जाता ।

## कठिन अभिग्रह का चन्दनबाला द्वारा पारणा

पूर्ण सेठ के यहां पारणा करके भगवान् वैशाली से विचरते हुए "कौशाम्बी" पधारे । वहां भगवान् ने कठिन अभिग्रह किया । वह 'चन्दनबाला' के हाथों से फला । (इसके विस्तृत वर्णन के लिए ३. चन्दनबाला की कथा देखो ।)

## ग्वाले का उपसर्ग

कौशाम्बी से विचरते हुए भगवान् 'षण्मानि' नामक गांव के बाहर पधार कर कायोत्सर्गपूर्वक खड़े रहे । वहां एक ग्वाला भगवान् के पास बैलों को छोड़ कर गायें दुहने के लिए गया । इधर बैल भी चरने के लिए वहां से चले गये । ग्वाले ने लौटने पर बैलों को न देख कर भगवान् से उनके विषय में पूछा । भगवान् के मौन रहने से क्रुद्ध होकर उसने भगवान् के दोनों कानों में दो कट-शलाकाए (चटाई की शलियां) डाल दीं और किसी को वे न दिखें—इस प्रकार उन्हें बाहरी भाग से काट कर सम कर दीं। परन्तु भगवान् ने उस समय निःश्वास तक न छोड़ा । पूर्व भव में इस ग्वाला के जीव के कान में भगवान् ने उकलता शीशा डलवाया था, जिसके कारण भगवान् को यह उपसर्ग मिला ।

## सिद्धार्थ व खरक द्वारा वैय्यावृत्य

वहां से विहार कर भगवान् 'अपापापुरी' में 'सिद्धार्थ'

## केवलज्ञान की प्राप्ति

वहां से विचरते हुए भगवान् 'जृम्भक' गांव के बाहर 'ऋजुबालिका' तट के ऊपर रहे श्यामाक गाथापति के खेत में पधारे और वहां साल-वृक्ष के नीचे गोदोह जैसे कठिन आसन को लगा कर बेले के तप में आतापना ले रहे थे। उस समय, जब कि भगवान् को सर्वथा प्रमादरहित तप करते और उपसर्ग सहते १२ वर्ष, छः महीने और एक पक्ष (१५ दिन) हो गए, तब वैशाख शुक्ला दशमी के दिन पिछले प्रहर को भगवान् को केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ। उस समय कुछ समय तक के लिए सर्वत्र प्रकाश हुआ और सभी नारकीय आदि दुःखी जीवों को शांति मिली।

## प्रथम देशना विफल

केवल-ज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् सभी इन्द्र अपने परिवार और देवों सहित भगवान् को वन्दन करने और वाणी सुनने के लिए आये। समवसरण के कुतूहल से आकृष्ट कई मनुष्य और विशिष्ट तिर्यंच भी वहां एकत्रित हुए। भगवान् ने अतिशयपूर्ण उपदेश सुनाया परन्तु किसी ने श्रावक या साधु-धर्म स्वीकार नहीं किया।

तीर्थंकरों की पहली वाणी में कोई न कोई व्रत-धर्म अवश्य स्वीकारते है, परन्तु भगवान् की वह पहली वाणी सफल न हुई। यह इसकी प्रदर्शक हुई कि 'भगवान् के शासन में उपदेशकों का उपदेश सफल कम होगा।' ऐसी घटना कभी अनन्त काल से घटती है।

वणिक् के यहां भिक्षार्थ पधारे। वहां पर बैठे खरक नामक वैद्य ने भगवान् के कानों में रही हुई कट-शलाकाओं को देखकर सिद्धार्थ को बतलाया। सिद्धार्थ ने खरक को उन्हें निकाल देने के लिये कहा। फिर सिद्धार्थ और खरक वैद्य ने भगवान् को कट-शलाकाएं निकलवाने की प्रार्थना की, परन्तु भगवान् ने स्वीकार नहीं किया। भगवान् पारणा करके गांव के बाहर जाकर कायोत्सर्ग करके खड़े हो गये। तब सिद्धार्थ और खरक ने वहां जाकर ध्यानस्थ खड़े भगवान् को सुला कर उनके कानों से उन्हें निकाल दिया और संरोहणी औषध लगा कर भगवान् के कानों के घाव पूर दिये।

वह ग्वाला मर कर सातवीं नरक गया और सिद्धार्थ और वैद्य देवलोक गये।

## महावीर नाम का हेतु

जो भी तीर्थंकर होते हैं, प्रायः वे तप द्वारा ही चार घाति कर्म क्षय करते है। उन्हें छद्मस्थ अवस्था में प्रायः उपसर्ग नहीं आते। परन्तु भगवान् को छद्मस्थ अवस्था में कई उपसर्ग आये, जिनमें संगम जैसे महा कठिनतम उपसर्ग भी थे। भगवान् ने उन आये हुए सभी उपसर्गों को निर्भय होकर शांति के साथ धैर्यपूर्वक सहा। (मेरु पर्वत का कम्पन किया, बाल-अवस्था में भी देव द्वारा की गई परीक्षा में भयभीत नहीं हुए।) इस कारण से भगवान् का नाम देवताओं ने 'महावीर' रखा। भगवान् का यही नाम आगे चलकर अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ

## श्री इन्द्रभूति व चन्दनबाला जी की दीक्षा

जृम्भक गांव से विहार करके भगवान् 'अपापानगरी' पधारे। वहां 'श्री इन्द्रभूति' आदि ग्यारह गणधर दीक्षित हुए। (विस्तृत वर्णन के लिए- २. श्री इन्द्रभूति की कथा देखो।) महासती 'श्री चन्दनबाला जी' भी वहीं दीक्षित हुईं और अनेकों श्रावक-श्राविकाएँ भी वहां बनीं। इसके बाद भगवान् वहां के जनपद (देश) में विहार करने लगे।

## श्री ऋषभदत्त व देवानन्दा की दीक्षादि

भगवान् विचरते हुए एक बार 'ब्राह्मणकुण्ड' ग्राम में पधारे। वहां ऋषभदत्त ब्राह्मण और देवानन्दा ब्राह्मणी भी भगवान् के दर्शनार्थ आये।

'मेरे स्वप्न त्रिशला के यहां गये'— इससे देवानन्दा को यह अनुमान था कि—'भगवान् पहले मेरी कुक्षि में ८२॥ रात्रि विराजे थे।' अतः उसे भगवान् के दर्शन पाकर रोमांच हो आया। स्नेह (तेल) से तलने पर, जैसे पदार्थ तत्काल फूल जाते हैं, वैसे ही पुत्र-स्नेह से देवानन्दा का शरीर फूल गया। स्नेह (पानी) के बढ़ने पर, जैसे कमल तत्काल ऊपर उठ जाता है, वैसे ही पुत्र-स्नेह से देवानन्दा के स्तन ऊपर उठ गये, उनमें दूध भर आया।

यह देख कर गौतम स्वामी ने इसका कारण पूछा। तब भगवान् ने देवानन्दा को अपनी माता बतलाते हुए पिछला सारा इतिहास प्रकट किया।

भगवान् का उपदेश सुन कर ऋषभदत्त और देवानन्दा दोनों दीक्षित हुए और संयम पालन कर कर्म-क्षय करके सिद्ध हुए।

## जमाई जमाली की दीक्षा व फिर अश्रद्धा

जब देवानन्दा व ऋषभदत्त दीक्षित हुए, उसी समय की बात है। 'क्षत्रियकुण्ड' ग्राम में रहने वाले भगवान् की सांसारिक पुत्री प्रियदर्शना के पति, सांसारिक जमाई जमाली ने भी भगवान् महावीर स्वामी के उपदेश को सुन कर अत्यन्त वैराग्य के साथ प्रव्रज्या (दीक्षा) ली थी। उनके साथ ५०० अन्य कुमार भी दीक्षित हुए थे।

पढ़-लिख कर विद्वान हो जाने के पश्चात् भगवान् की आज्ञा न होते हुए भी वे अपने साथ दीक्षित हुए संतों को साथ में लेकर स्वतन्त्र विचरण करने लगे। एक बार उन्हें बीमारी हुई। उस समय उनकी श्रद्धा पलट गई। वे भगवान् के प्रतिकूल रहने और कहने लगे।

जमाली ने जीवन में दृढ़तापूर्वक श्रेष्ठ क्रिया की, परन्तु विपरीत श्रद्धा और भगवान् के प्रतिकूल रहने-कहने से वे किल्विषी (पापी) देव बने। जब तक उन्होंने भगवान् की वाणी पर श्रद्धा रखते हुए भगवान् के अनुकूल रह कर धर्म-क्रिया की, तब तक उन्हें अच्छा फल प्राप्त हुआ। यदि वे जीवन भर वैसे ही रहते, तो उसी भव में मोक्ष प्राप्त कर लेते। पर वैसे न रहने के कारण अब वे चार गति के चार-पांच भव करके मोक्ष प्राप्त करेंगे।

# गोशालक को क्रोध

वहां से विचरते हुए भगवान् श्रावस्ती नगरी पधारे। छद्मस्थ अवस्था में भगवान् के पास से निकला हुआ गोशालक भी तेजोलेश्या और अष्टांग महानिमित्त ( भूत-भविष्य को प्रकट करने वाली विद्या ) के बल पर अपने आपको सर्वज्ञ व तीर्थंकर बताता हुआ 'श्रावस्ती' नगरी में आया।

गोचरी के लिए श्रावस्ती में पधारे हुए गौतम स्वामी ने जब गोशालक का सर्वज्ञवाद तथा तीर्थंकरवाद सुना, तो उन्होंने गोचरी से लौटने पर भगवान् से गोशालक का पिछला सम्पूर्ण वृत्तान्त पूछा। भगवान् के द्वारा बताये जाने पर वह वृत्तान्त एक कान से दूसरे कान होता हुआ सारे नगर में पहुँच गया। इस समाचार को पाकर क्रुद्ध हुए गोशालक ने गोचरी के लिए गांव में आये हुए 'आनन्द' नामक भगवान् के शिष्य से कहा—"तेरे धर्माचार्य से जाकर कह दे कि यदि वह मेरी निन्दा करेगा तो मैं उसे जला कर भस्म कर दूंगा।"

आनन्दमुनि ने लौट कर भगवान् को गोशालक की कही बात सुनाई और पूछा—"क्या भगवन्! वह ऐसा कर सकता है? भगवान् ने कहा—'नहीं, वह तीर्थंकरों को जला नहीं सकता, कष्ट अवश्य दे सकता है।' उसके पश्चात् भगवान् ने सभी साधुओं को आज्ञा दी कि 'अभी गोशालक साधुओं के प्रति शत्रु-भाव अपनाए हुए है, अतः उसके विषय में कोई कुछ कहा-सुनी या चर्चा नहीं करें।

## गोशालक द्वारा मिथ्यावाद व मुनि-हत्या

इतने में गोशालक अपने संघ के साथ भगवान् के पास आया और अपने को छुपाते हुए कहने लगा—"काश्यप! (काश्यप गोत्र वाले! भगवान् काश्यप गोत्र वाले थे।) तेरा शिष्य गोशालक तो मर चुका है और मैं दूसरा जीव हूं, परन्तु गोशालक के शरीर को दृढ़ समझ कर, मैं उसमें प्रवेश करके रह रहा हूं।'

भगवान् ने कहा—'गोशालक! तू इन झूठी बातों से अपने आपको जीते जी दूसरा बताना चाहता है, परन्तु तू छुप नहीं सकता।' यह सुन वह अत्यन्त क्रोध में आकर असभ्य वचन कहने लगा। तब 'सर्वानुभूति' नामक मुनि ने उससे कहा—'गोशालक! गुरु से एक भी आर्य-वचन (शिक्षा) पानेवाला गुरु को वन्दना-नमस्कार करता है, पर्युपासना करता है। जब कि तुझ पर भगवान् का अपार उपकार है, तू भगवान् के विपरीत शत्रु बन गया है!' इन वचनों से गोशालक ने शिक्षा न लेते हुए तेजोलेश्या का प्रयोग करके उन मुनि को ही जला डाला और फिर से भगवान् के प्रति असभ्य वचन बोलने लगा। तब दूसरे 'सुनक्षत्र' नामक मुनि ने उसे समझाया, परन्तु उन्हें भी उसने जला डाला और भगवान् के प्रति फिर असभ्य वचन बोलने लगा।

## भगवान् पर तेजोलेश्या का प्रयोग

तब भगवान् ने पुनः उसे शिक्षा के रूप में कुछ कहा।

तब उसने इस बार पूरी शक्ति के साथ भगवान् पर ही तेजोलेश्या डाली। भगवान् तो जले नहीं, परन्तु वह लेश्या भगवान् की प्रदक्षिणा करके लौट कर गोशालक के ही शरीर में प्रवेश कर गोशालक को जलाने लगी।

ऐसा होने पर भी गोशालक ने न सुधरते हुए भगवान् से कहा—'तू मेरे तप, तेज द्वारा छह महीने के भीतर ही छद्मस्थ (केवलज्ञान रहित) अवस्था में मर जायगा।' भगवान् ने कहा—'मैं अभी सोलह वर्ष और सुखपूर्वक जीऊँगा, परन्तु तू स्वयं सात दिन में दाह-ज्वर द्वारा मर जायगा।'

यह देख कर कुछ बुद्धिहीन कहने लगे कि 'श्रावस्ती नगरी में दो तीर्थंकर आपस में कहते हैं—'तू पहले मरेगा, दूसरा कहता है—नहीं, तू पहले मरेगा।' कौन जाने, उनमें कौन सच है और कौन झूठ है ? परन्तु बुद्धिमान जानकार जानते थे कि 'भगवान् महावीर सच्चे हैं और गोशालक झूठा है।'

## गोशालक की हार

भगवान् पर पूरी शक्ति से तेजोलेश्या का प्रयोग करने के कारण जब गोशालक शक्तिहीन हो गया, तब भगवान् ने अपने सन्तों को आज्ञा दी कि 'अब गोशालक से चर्चा करो।' तब सन्तों ने उससे चर्चा आरम्भ की। अपने आपको सर्वज्ञ व तीर्थंकर बताने वाला गोशालक उनका कोई उत्तर नहीं दे सका। तथा तेजोलेश्या की शक्ति पूर्ण नष्ट हो जाने

के कारण वह उन चर्चा करने वाले सन्तों को जला भी न सका। इससे गोशालक अत्यन्त क्रुद्ध होकर आंखें लाल करके दांत किटकिटाने लगा और हाथ-पैर पटकने लगा। यह देख गोशालक के कई प्रमुख साधु और श्रावक गोशालक को झूठा और भगवान् को सच्चा समझ गोशालक को छोड़ भगवान् के संघ में आ मिले।

## अन्तिम घड़ियां सुधरीं

तब गोशालक वहां से चल दिया। सातवें दिन तक दाह-ज्वरयुक्त वह झूठी-सच्ची वातें करके अपने को सही वताता रहा, परन्तु अन्त में मृत्यु के समय उसकी बुद्धि सुधरी। उसे सम्यक्त्व प्राप्त हुआ। उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। "अरे रे, मैंने मेरे महोपकारी भगवान् की आशातना की। मैं साधुओं का हत्यारा बना! मैंने झूठी-सच्ची बातें घड़ीं!! बार-बार धिक्कार है मुझे।" उस पश्चात्ताप और सम्यक्त्व दशा में उसका आयुबंध हुआ। उसकी मोक्ष की नींव लगी और वह मर कर १२ वें देवलोक में पहुंचा।

भगवान् की कृपा से इस प्रकार गोशालक कष्टों से बचा। उसके जीवन की रक्षा हुई और एक दिन—'वह मोक्ष में पहुंचे'—ऐसी नींव भी लग गई।

इधर भगवान् को गोशालक की तेजोलेश्या जला तो नहीं सकी, परन्तु उसकी हवा से भगवान् को रक्तस्राव (मल के साथ लोही का बहाव) की पीड़ा हो गई। वीतराग भगवान् उसे शांत भाव से सहते रहे।

## रेवती को सम्यक्त्व-प्राप्ति

वहां से विचरते हुए भगवान् छह मास में 'मेंढ़िक' गांव में पधारे। वहां 'सिंह' नामक एक मुनि को भगवान् की इस पीड़ा से बहुत ही रोना आ गया। तब भगवान् ने उसे बुला कर सान्त्वना दी और कहा—'मैं अभी १५॥ वर्ष और सुखपूर्वक जीऊँगा, अतः चिन्ता न करो। तुम यहां की 'रेवती' गाथापत्नी के यहां जाओ। उसने मेरे लिए जो 'कोलापाक' बनाया है, वह न लाते हुए, जो घोड़े की वायुनाश के लिए 'बिजोरापाक' बनाया है, वह लाओ।'

सिंह मुनि उसके यहां पधारे। रेवती ने कोलापाक देना आरम्भ किया, तो मुनिराज ने उसे दोषी बता कर उसका निषेध करके बिजोरापाक मांगा। रेवती को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—'आपको यह कैसे जानकारी हुई कि यह दोषी है ?' मुनि ने उत्तर दिया— 'भगवान् से।' रेवती को यह जान कर भगवान् पर और जैनधर्म पर बड़ी ही श्रद्धा हुई। 'धन्य हैं ऐसे भगवान्, जो घट-घट के अन्तर्यामी हैं! धन्य है ऐसा धर्म, जिसके देवाधिदेव भी निर्दोष आहार लेते हैं!' उसने बड़ी ही श्रद्धापूर्वक उत्कृष्ट भाव से दान दिया। उससे उसे सम्यक्त्व प्राप्त हुआ और तीर्थंकर नामकर्म जैसी पुण्य-प्रकृति का बंध भी हुआ।

मुनिराज ने वह बिजोरापाक लाकर भगवान् के हाथों में दिया। उसका उपयोग कर भगवान् नीरोग बने। तब चतुर्विध संघ में छाई उदासी दूर होकर हर्ष छा गया। उसके पश्चात् १५॥ वर्ष और गंधहस्ती के समान विचर

कर भगवान् ने बहुत जीवों का उद्धार किया । अरिहंत उपसर्ग की घटना भी अनन्त काल से होती है ।

## निर्वाण

लगभग तीस वर्ष तक केवली अवस्था भोग कर ७२ वर्ष की आयु में 'पावापुरी' में 'हस्तिपाल' राजा की लेखशाला में सोलह प्रहर तक चतुर्विध संघ को अन्तिम देशना (वाणी) सुना कर भगवान् कार्तिकी कृष्णा अमावस्या की रात्रि जब दो घड़ी शेष थी, तब बेले के तप सहित काल करके मोक्ष पधार गये । उस समय सम्पूर्ण लोक में कुछ समय के लिए अन्धकार हो गया और देवता भी दुःख-मग्न बन गये । अन्त में देवताओं ने भगवान् के शरीर की बहुत श्रेष्ठ द्रव्यों से दाह-क्रिया की ।

## भगवान् का परिवार और परम्परा

भगवान् के सन्तों की ऊँची संख्या १४,००० चौदह सहस्र पर पहुँची । सतियों की ऊँची संख्या ३६,००० छत्तीस सहस्र तक पहुँची । भगवान् के शंख, कामदेव आदि श्रावकों की ऊँची संख्या एक लाख, उनसठ सहस्र तक पहुँची और सुलसा, रेवती आदि श्राविकाओं की ऊँची संख्या तीन लाख उन्नीस सहस्र तक पहुंची । (६. कामदेव और ७. सुलसा की कथा आगे देखो । रेवती की कथा इसी कथा में पहले आ चुकी है ।) भगवान् के ७०० शिष्य और १४०० शिष्याएं मोक्ष पहुंचीं । भगवान् के पश्चात् उनके पाट पर श्री सुधर्मा नामक पांचवें गणधर विराजे और उनके पाट पर श्री जम्बू स्वामी विराजे । जम्बू स्वामी

तक जीव धर्म–क्रिया करके मोक्ष जाते रहे। अब धर्म-क्रिया करके जीव एक भव अवतारी तक बन सकते हैं।

❀ इति भगवान् महावीर की कथा समाप्त ❀

— श्री आचारांग, स्थानांग, भगवती, जम्बूद्वीप, कल्प, आवश्यक आदि सूत्रों से उनकी वृत्तियों से तथा अन्य ग्रन्थों से।

## भगवान् के छद्मस्थ काल के तप

| तप | | तप संख्या | दिन संख्या | पारणा संख्या |
|---|---|---|---|---|
| १. पूरे छह महीने का तप | .... | १ | १८० | १ |
| २. पांच दिन कम छह मासिक तप | | १ | १७५ | १ |
| ३. चौमासिक तप | .... | ९ | १०८० | ९ |
| ४. तीन मासिक तप | .... | २ | १८० | २ |
| ५. अढाई मासिक तप | .... | २ | १५० | २ |
| ६. दो मासिक तप | .... | ६ | ३६० | ६ |
| ७. डेढ़ मासिक तप | .... | २ | ९० | २ |
| ८. मासिक तप | .... | १२ | ३६० | १२ |
| ९. अर्द्ध मासिक तप | .... | ७२ | १०८० | ७२ |
| १०. अष्टम (तेला) तप | .... | १२ | ३६ | १२ |
| ११. षष्ठ (बेला) तप | .... | २२९ | ४५८ | २२९ |
| १२. भद्र प्रतिमा तप | .... | १ | २ | ० |
| १३. महाभद्र प्रतिमा तप | .... | १ | ४ | ० |
| १४. सर्वतोभद्र प्रतिमा तप | .... | १ | १० | १ |
| कुल योग | .... | ३५१ | ४१६५ | ३४९ |

तप दिन ४१६५,+पारणक दिन ३४९,+दीक्षा दिन १=कुल दिन ४५१५ हुए, जिसके बारह वर्ष छह मास और पन्द्रह दिन होते हैं।

## शिक्षाएं

१. कम किसी को भी नहीं छोड़ते— यह देख कर्म करने में भयभीत रहो।
२. तीर्थंकर भी गृह त्याग कर साधु-धर्म स्वीकारते हैं, तो विना धर्म हमारा कल्याण कैसे होगा ?
३. भगवान् ने जब इतना दीर्घ और उग्र तप किया, तो हमें भी शक्ति के अनुसार तप करना चाहिए।
४. जब भगवान् ने उपसर्गों के सामने जाकर उपसर्ग सहे, तो कम-से-कम हमें आये हुए उपसर्ग तो सहने ही चाहियें।
५. जो भगवान् के पैरों के पीछे चलता है, वह कभी निराश नहीं होता।

## प्रश्न

१. भगवान् की गृह-अवस्था की विशिष्ट घटनाओं का वर्णन कीजिए।
२. भगवान् की छद्मस्थ-पर्याय की विशिष्ट घटनाओं का वर्णन कीजिए।
३. भगवान् की केवलि-पर्याय की विशिष्ट घटनाओं का वर्णन कीजिए।
४ भगवान् के चरित्र की विषय-तालिका लिखिये।
५ भगवान् के जीवन से आपको क्या शिक्षाएं मिलती हैं ?

# २. गणधर श्री इन्द्रभूति जी

## ( श्री गोतमस्वामी जी )

### देशादि

मगध देश में 'गोबर' नामक एक गांव था। वहाँ १. 'श्री इन्द्रभूति' नामक ब्राह्मण रहते थे। उनके पिता का नाम 'वसुभूति' तथा माता का नाम 'पृथ्वी' था। वे 'गोतम' गोत्रीय थे। उनके दो छोटे भाइयों का नाम क्रमशः २. 'श्री अग्निभूति' तथा ३. 'श्री वायुभूति' था।

तीनों भरे-पूरे शरीर वाले थे। शरीर का रूप-रंग देवताओं को भी लज्जित करने वाला था। शरीर शक्ति-सम्पन्न था, मानो वज्र का ही बना हो। पद्म-गर्भ के समान उनके शरीर का गोर-वर्ण देखते ही बनता था। उनके मुख पर बड़ी दिव्य प्रतिभा थी।

तीनों वैदिक-धर्म के उपाध्याय थे। वेद-वेदांग के रहस्य को जानने वाले थे। तीनों के ५००-५०० छात्र थे। श्री इन्द्रभूति उन सब में तेज थे। उस युग में उनके समान कोई विद्वान् न था। वे अपने युग के सभी विषयों के उच्च-स्तरीय जानकार थे। चर्चा में भी सदा ही उन्हीं की विजय हुआ करती थी।

### यज्ञ-प्रसंग

एक वार 'मध्य अपापा' नामक नगरी में 'सोमिल' ब्राह्मण ने यज्ञ करवाया। उसमें उसने श्री इन्द्रभूति आदि

तीनों भाइयों को निमंत्रित किया। तीनों अपने-अपने छात्रों के साथ सम्मिलित हुए। श्री व्यक्तभूति आदि आठ विद्वान् उपाध्यायों को भी वहां बुलाया गया था। ४. श्री व्यक्तभूति और ५. श्री सुधर्मा ५००-५०० छात्रों के साथ आये। ६. श्री मण्डितपुत्र व ७. श्री मौर्यपुत्र ३५०-३५० छात्रों के साथ आये। ८. श्री अकम्पित, ९. श्री अवलभ्राता, १०. श्रीमेतार्य व ११. श्री प्रभास जी ३००-३०० छात्रों के साथ आये।

यज्ञ बहुत ठाट-बाट के साथ आरम्भ हुआ। उसमें सहस्रों लोग आये। मंत्र पढ़े जाने लगे। आहुतियां दी जाने लगीं। यज्ञ के धुएं ने आकाश को घेरना आरंभ किया।

## देव-दर्शन

इधर केवलज्ञान उत्पन्न होने पर श्री भगवान् महावीर स्वामी उसी नगरी के बाहर महासेन नामक वन में पधारे। वहां उनका बड़ा भारी समवसरण लगा। ( सहस्रों-लाखों लोग उनके उपदेश को सुनने के लिए इकट्ठे हुए।) अगणित देव और इन्द्र भी उनकी वाणी सुनने के लिए सोमिल के यज्ञ-मण्डल की ओर से होते हुए भगवान् के समवसरण में आने लगे।

उन देवों और इन्द्रों को अपने यज्ञ-मण्डप की ओर आते देख कर श्री इन्द्रभूति आदि ११ ही उपाध्याय ब्राह्मण बड़े प्रसन्न हुए। वे कहने लगे— 'देखो! हमारे यज्ञ का कितना प्रभाव है! हमारा यज्ञ कितनी उत्तम विधि से किया जा रहा है कि आज उसे देखने के लिए और हवन लेने के लिये देव ही नहीं, साथ में इन्द्र भी आ रहे हैं!'

परन्तु कुछ ही समय में जब देवों और इन्द्रों को यज्ञ-मण्डप से आगे जाते देखा, तो वे सभी विचार में पड़ गये–'अरे, यह क्या हो रहा है? ये देव और इन्द्र कहां जा रहे हैं? यज्ञ तो यहां हो रहा है? कहीं ये यज्ञ के इस स्थान को भूल तो नहीं गये अथवा विमानों को अन्य स्थान पर छोड़ कर यहां आने के लिए तो कहीं नहीं जा रहे हैं?

## श्री गौतम को अहंकार की उत्पत्ति

लोगों से जब जानकारी हुई कि 'यहां भगवान् महावीर स्वामी पधारे हुए हैं। उनका उपदेश अनूठा है। उनकी वाणी बहुत मनोहर है। वे अद्वितीय अतिशय वाले हैं। उन्हें केवलज्ञान प्राप्त है। वे सर्वज्ञ हैं। ये देव और इन्द्र तुम्हारे लिए नहीं, किन्तु 'भगवान् महावीर स्वामी के दर्शन करने व वाणी सुनने के लिए आये हैं।' तब श्री इन्द्रभूति को इन शब्दों को सुन कर तत्काल तीव्र ईर्ष्या उत्पन्न हुई। उनसे 'सर्वज्ञ' शब्द तो मानो सुना ही नहीं गया। उन्हें अहंकार था कि 'इस विश्व में मैं अद्वितीय हूं। मेरी कोई समता नहीं कर सकता है। फिर कोई मुझ से बढ़ कर कैसे हो सकता है? इसलिए देव और इन्द्र मुझे छोड़ कर किसी दूसरे के पास जायें—यह नहीं हो सकता। लगता है, यह कोई महान् इन्द्रजालिक है। इसने सब को भ्रम में डाल दिया है। देवता और इन्द्र भी इसकी महामाया में आ गये हैं। परन्तु इससे क्या हुआ? मैं अभी जाता हूं। जब तक सूर्य का उदय नहीं होता, तब तक ही अन्धकार रह सकता है, सूर्योदय के बाद नहीं। चर्चा करके उसे

भगवान् के पास पहुंचने पर भगवान् ने उन्हें 'हे ! इन्द्रभूति गौतम !' कह कर बुलाया। गौतम ने यह संबोधन सुन कर सोचा—'लोग इन्हें सर्वज्ञ कहते थे—यह बात सच दिखती है। मेरा कभी इनसे परिचय नही, कभी इन्हें देखा भी नहीं, तो इन्हें मेरा नाम और गोत्र कैसे ज्ञात हुआ ? अथवा मैं तो जगत्प्रसिद्ध हूं। इस विश्व में मुझे कौन नहीं जानता ? इसलिए मात्र मेरा नाम और गोत्र बता देने से ही इन्हें सर्वज्ञ मान लेना भूल है। यदि ये मेरे मन में रहा संशय बता दें और दूर कर दें, तो मैं इन्हें सर्वज्ञ समझूं।'

श्री इन्द्रभूति आस्तिक थे। उन्हें जीव आदि का ज्ञान

था। परन्तु वे वेद पर विश्वास करते थे और वेद में आये हुए एक वाक्य का अर्थ उन्हें ऐसा समझ में आ गया था कि 'जीव नहीं है', इसलिए उन्हें संशय था कि 'जीव है या नहीं ?'

श्री इन्द्रभूति मन में ऐसा विचार कर ही रहे थे कि, भगवान् ने इन्द्रभूति के विचार को जान कर कहा - 'गौतम! तुम्हें जीव के विषय में संशय है, परन्तु उसे निकाल डालो। जीव के अस्तिव में सन्देह न करो।'

भगवान् के इन वचनों को सुनते ही गौतम को विश्वास हो गया कि 'सचमुच ये सर्वज्ञ हैं।' नहीं तो मेरे मन में छुपा संशय ये कैसे जान पाते ? मेरा नाम-गोत्र तो प्रसिद्ध है, परन्तु मेरे मन का संशय कोई नहीं जानता क्योंकि मैने उसे दूसरों को तो क्या, अपने भाइयों को भी नहीं बताया। इसलिए उसे सर्वज्ञ से अन्य कोई नहीं जान सकता। वे प्रभु के चरणों में नत मस्तक हो गये। फिर जब भगवान् महावीर स्वामी ने वेद के उस वाक्य का वास्तविक अर्थ बताया और जीव के अस्तित्व की सिद्धि करके बताई, तब उन्होंने अपने मन में भगवान् का शिष्य बनने का निर्णय करके अपने साथ आए हुए ५०० छात्रों से कहा— 'मैं तो भगवान् का शिष्य बनता हूँ। बोलो, तुम्हारी क्या भावना है ?' उन्होंने कहा—'हम तो आपके शिष्य हैं, जिनको आप गुरु मानेंगे, उनको हम भी गुरु मानेंगे।'

### प्रथम गणधर—प्रथम शिष्य

श्री इन्द्रभूति जी ने भगवान् से प्रार्थना की कि 'आप

मुझे और इनको दीक्षा दें।' भगवान् ने उन्हें दीक्षा दी। उसके पश्चात् गौतम को-'१. उत्पन्न, २. विगम और ३. ध्रुव'—ये तीन शब्द सुनाये, जिससे उन्हें संपूर्ण शास्त्र-ज्ञान (चौदह पूर्व का ज्ञान) हो गया। तीन शब्दों से सम्पूर्ण शास्त्र-ज्ञान हो जाने पर भगवान् से उन्हें गणधर पद दिया और वे ५०० छात्र उनके शिष्य बना दिये।

इधर जब अग्निभूति आदि १० उपाध्यायों ने देखा कि 'बहुत समय हो गया है, परन्तु अभी तक इन्द्रभूति लौटकर नहीं आये', तो सोचा कि 'क्या बात है? वे अब तक इस इन्द्रजालिक महावीर को हरा कर क्यों नहीं आये?' अग्निभूति ने कहा—'अस्तु, मैं जाता हूँ, देखता हूँ और अभी हरा कर आता हूं।' इस प्रकार विचार करके वे सभी क्रमशः भगवान् के चरणों में पहुंचते रहे और सभी की शंकाएं मिटती गईं। २. श्री अग्निभूति जी को कर्म के अस्तितत्व में, ३. श्री वायुभूति जी को जीव-शरीर की भिन्नता में, ४. श्री व्यक्तभूति जी को अजीव-जड़ के अस्तितत्व में, ५. श्री सुधर्मा स्वामी को योनि-परिवर्तन में, ६. श्री मन्डितपुत्र जी को कर्मों के बंध-मोक्ष में, ७. श्री मौर्यपुत्र जी को देवों के अस्तित्व में, ८. श्री अकम्पित जी को नारकी-जीवों के अस्तित्व में, ९. श्री अचलभ्राता जी को कर्मों के दो रूप १. पुण्य, २. पाप के अस्तित्व में, १०. श्री मैतार्य जी को परलोक के अस्तिव में तथा ११. श्री प्रभास जी को मोक्ष-प्राप्ति में सन्देह था।

सभी अपनी-अपनी शंकाएं मिटने पर अपने-अपने शिष्यों के साथ भगवान् के शिष्य बनते रहे। इस प्रकार

भगवान् महावीर स्वामी के पास एक ही दिन में ४४०० ( ५००+५००+५००+५००+५००+३५०+३५०+३००+३०० +३००+३००=४४०० ) शिष्यों की दीक्षा हुई और ग्यारह गणधर हुए । सब से बड़े शिष्य और प्रथम गणधर श्री इन्द्रभूति जी हुए ।

आये थे सभी भगवान् को हराने, परन्तु सभी भगवान् से हार गये। ऐसी हार सदा ही सब की हो । जिस हार से सत्य का प्राप्ति हो, वह हार 'हार' नहीं, सत्य की 'विजय' है।

## पुराना सम्बन्ध

भगवान् के चरणों में पहुँचने से पहले श्री गौतम स्वामी को भगवान् के लिए 'सर्वज्ञ' शब्द भी सहन नहीं हुआ था । परन्तु अब उन्हें भगवान् के प्रति परम-अनुराग उत्पन्न हो गया । वे सदा भगवान् की प्रशंसा करते । सदा उनके ही निकट परिचय में रहते, सेवा करते । प्रायः साथ-साथ विहार करते और भगवान् की आज्ञा का पूर्ण पालन करते । श्री इन्द्रभूति गौतम को भगवान् के साथ ऐसा परम अनुराग जुड़ने का कारण यह था कि वे कई भवों से भगवान् के साथ सारथि आदि नाना प्रकार के सम्बन्ध करते चले आ रहे थे ।

राजगृही की बात है । परिषद व्याख्यान सुन कर चली गई थी । तब भगवान् महावीर स्वामी ने स्वयं गौतमादि को बुला कर यह रहस्य प्रकट किया था । उन्होंने कहा—

"गौतम ! तुम बहुत पुराने समय से मुझ पर स्नेह रखते चले आ रहे हो। मेरी प्रशंसा, मेरा परिचय, मेरी सेवा, मेरा अनुगमन और मेरी आज्ञानुसार वर्ताव करते चले आ रहे हो। कई मनुष्य-भव और कई देव-भव तुमने मेरे साथ किये हैं। पिछले देव-भव में भी तुम मेरे साथ थे। अब यहाँ इस भव तक ही नहीं, भविष्य में भी सदा के लिए साथ रहोगे और काल करके हम दोनों ही मोक्ष में एक समान भी बन जायेंगे।'

—( भगवती शतक २४, उद्देशक ७ )।

## ज्ञान-रुचि

श्री गौतम स्वामी जी तीन शब्द सुन कर सम्पूर्ण शास्त्र-ज्ञान पा गये थे। उन्हें दीक्षा लेते ही चौथा 'मनः-पर्याय' ज्ञान भी उत्पन्न हो चुका था। फिर भी वे सदा भगवान् की वाणी सुनते और प्रश्न पूछते रहते। भव्य (मोक्ष पाने योग्य) जीवों के हित के लिए उन्होंने भगवान् से सहस्रों-लाखों प्रश्न पूछे। उनके वे प्रश्न उस समय विश्व के लिए बहुत उपकारी सिद्ध हुए। आज भी उनके वे प्रश्नोत्तर हम पर बहुत ही उपकार कर रहे हैं क्योंकि आज जो शास्त्र हैं उन में से कई और कई के बहुत से भाग श्री इन्द्रभूति जी के प्रश्न और श्री महावीर स्वामी जी के उत्तरों के संग्रह से ही बने हैं। इन प्रश्नोत्तरों का संग्रह पांचवें गणधर श्री सुधर्मा स्वामी जी ने किया था।

## तपस्वी और निस्पृह

श्री गौतम स्वामी जी ने जिस दिन दीक्षा ली, उस

दिन से ही उन्होंने यावज्जीवन वेले-वेले पारणे ( दो-दो उपवास के अन्तर से भोजन ) करने का अभिग्रह (निश्चय) किया और जीवन भर वेले-वेले करके निभाया । इस प्रकार श्री गौतम स्वामी बहुत ज्ञानी मात्र ही नहीं, घोर तपस्वी भी थे । ज्ञान का सार यही है कि— कषायों को जीते, इन्द्रियों का दमन करे और शक्ति अनुसार तप भी करे। तप के कारण उन्हें कई लब्धियां ( शक्तियाँ ) प्राप्त हो चुकी थीं । जैसे 'कटोरी भर बहराई हुई खीर में यदि उनका अंगूठा लग जाता, तो उस खीर से सैकड़ों सन्तों का पारणा हो जाता, फिर भी वह खीर अक्षय रहती ही थी । उनके अंगूठे में ऐसा अमृत प्रकट हो गया था ।' परन्तु फिर भी वे कभी अपनी ऐसी किसी लब्धि का प्रयोग नहीं करते थे। इस प्रकार गौतम स्वामी निष्पृह (इच्छा-रहित) भी थे ।

## निरभिमानी

ऐसे ज्ञानी, तपस्वी, भगवान् के सब से बड़े शिष्य और प्रथम गणधर होते हुए भी गौतम स्वामी को अभिमान का लवलेश भी छू तक नहीं गया था। वे अपना काम स्वयं करते थे ! जैसे वेले-वेले के पारणे में भी वे स्वयं गोचरी लाते थे । श्री गौतम स्वामी जी से कभी भूल हो जाती तो वे उसे तत्काल स्वीकार कर लेते थे । वाणिज्यग्राम नगर की वात है—एक वेले के पारणे में श्री गौतम स्वामी आनन्द श्रावक के घर पधारे थे। आनन्द श्रावक ने कहा— 'भन्ते ! मुझे वड़ा अवधि-ज्ञान हुआ है ।' तव गौतम स्वामी ने कहा— 'श्रावक को अवधि-ज्ञान हो सकता है, परन्तु इतना वड़ा नहीं ।'

जब भगवान् के पास लौटने पर भगवान् से जाना कि 'आनन्द श्रावक का कहना ठीक था, परन्तु उपयोग न पहुंचने के कारण मुझ से ही भूल हुई', तो वे बिना पारणा किये ही तत्काल आनन्द श्रावक को खमाने (क्षमा-याचना करने) गये। अहा ! कितने निरहंकारी और सरल बन गये थे, गौतम स्वामी।

## सब से मधुर

श्री गौतम स्वामी छोटों से भी बहुत मधुर बर्ताव करते थे। पोलासपुर की बात है। एक बार वे गोचरी गये। वहां छः वर्ष के बच्चे अतिमुक्त (एवंता) कुमार ने जब उन्हें देखा और पूछा—'आप घर-घर क्यों घूमते हैं?' तो स्वयं इतने बड़े होते हुए भी उस बालक तक को उत्तर दिया। उसका भी समाधान किया। उसने गौतम स्वामी से कहा—'आओ ! मैं तुम्हें भिक्षा दिलाऊँ'। इस प्रकार कह कर वह गौतम स्वामी की अंगुली पकड़ कर उन्हें अपने घर ले जाने लगा तो वे उसका विरोध न करते हुए उसके पीछे-पीछे चले गये। गोचरी लेकर भगवान् के पास लौटते समय उसने पूछा—'आप कहां रहते है?' तो कहा-'मेरे गुरु भगवान् महावीर बाहर बगीचे में पधारे हैं, मैं उनके चरणों में रहता हूं।' वह चलने को तैयार हुआ तो श्री गौतम स्वामी उसकी चाल चलते हुए लौटे। अतिमुक्त को ऐसे गौतम कितने मीठे लगे होंगे ? (ये अतिमुक्त दीक्षित होकर मोक्ष गये)।

## स्वधर्मी-वत्सल

श्री गौतम स्वामी को धर्म-प्रेम बहुत था। वे स्वधर्मी

बनने वाले का बहुत आदर करते थे। कृतंगला नगरी की बात है। एक बार भगवान् महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी से कहा—'गौतम! आज तुम अपने मित्र को देखोगे'।

गौतम—'कौन है वह?'

महावीर—'स्कन्दक सन्यासी।'

गौतम—'उसे कब, कहां, कितने समय से देखूंगा?'

महावीर—'बस, वह अभी आ ही रहा है।'

गौतम—'क्या वह दीक्षित बनेगा?'

महावीर—'हां।'

यह सुन कर श्री गौतम स्वामी जी को 'मित्र के नाते नहीं, परन्तु मेरा मित्र दीक्षित बनेगा'—इस नाते बहुत प्रसन्नता हुई। वे स्वयं स्कन्दक के सामने गये और उनका स्वागत किया तथा उन्हें अपने साथ में भगवान् के चरणों में लाये। स्वधर्मी बनने वाले के प्रति वे ऐसा आदर करते थे!

## मर्यादा-पालक

श्री गौतम स्वामी मर्यादा-पालक भी थे। एक बार वे स्वयं जिस श्रावस्ती नगरी में पधारे, उसी नगरी के दूसरे बगीचे में भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के आचार्य श्री केशीकुमार श्रमण भी पधारे हुए थे। उनसे श्री गौतम स्वामी कई अपेक्षाओं से बड़े थे, परन्तु उन्होंने सोचा कि 'मैं २४वें तीर्थंकर का शिष्य हूं और वे २३ वें तीर्थंकर की परम्परा

के हैं, इसलिए वे बड़े कुल के हैं और मैं छोटे कुल का हूं। इसलिए मुझे उनकी सेवा में जाना चाहिए।' इस प्रकार विचार कर वे स्वयं अपने शिष्यों सहित उनकी सेवा में गये। ऐसे थे गौतम स्वामी मर्यादा के पालक!

## आयु आदि

श्री इन्द्रभूति जी के कितने गुण बताये जायें? वे गुणों के भण्डार थे। जैन-साहित्य में उनके इतिहास के विषय में बहुत-कुछ लिखा गया है।

श्री इन्द्रभूति जी ५० वर्ष की आयु में दीक्षित हुए। ३० वर्ष तक छद्मस्थ (ज्ञानावरणीयादि चार कर्म सहित) रहे। भगवान् महावीर स्वामी का दीपावली की जिस रात्रि को निर्वाण हुआ, उसी रात्रि को गौतम स्वामी जी को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। वे बारह वर्ष तक केवलज्ञानी रहे। कुल ९२ (५०+३०+१२=९२) वर्ष की आयु भोग कर श्री गौतम स्वामी मोक्ष पधारे और मुक्ति में पहुंच कर श्री भगवान् महावीर स्वामी के समान बन गये।

श्री इन्द्रभूति जी को भगवान् महावीर स्वामी जी 'गौतम!' कह कर बुलाते थे, इसलिए ये गौतम स्वामी के रूप में प्रसिद्ध हुए। बोलो, श्री गौतम स्वामी की जय!

॥ इति २. गणधर श्री इन्द्रभूति जी की कथा समाप्त ॥

## शिक्षाएँ

१. तीर्थंकर के चरणों में सभी झुक जाते हैं।
२. जीवादि सभी तत्त्व वास्तविक हैं।
३, सदा ही ज्ञान-पिपासा बनाये रक्खो।
४. ज्ञान के साथ तप भी करो।
५. नम्र, मधुर, स्वधर्मी-वत्सल, मर्यादापालक आदि गुणयुक्त बनो।

## प्रश्न

१. श्री इन्द्रभूति के देशादि का परिचय दो।
२. श्री इन्द्रभूति जी भगवान् के शिष्य कब व कैसे बने ?
३. श्री गौतम स्वामी जी से मिलने वाली शिक्षाएं सप्रसंग लिखिये।
४. श्री गौतम स्वामी जी और भगवान् महावीर स्वामी जी का परस्पर संबंध बताओ।
५. श्री गौतम स्वामी जी के आयु-विभाग का वर्णन करो।

# ३. महासती श्री चन्दनबाला जी

## देशादि

'चम्पानगरी' में महाराजा 'दधिवाहन' राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम 'धारिणी' था। धारिणी की कुक्ष से एक पुत्री का जन्म हुआ। उसका नाम रखा गया 'वसुमति'।

वसुमति बड़ी हुई। वह बहुत सुलक्षणा थी। रूप भी उसका बहुत सुन्दर था। साथ ही वह शीलवती भी थी। गुणवती होने से वह सबको प्यारी लगती थी। राजा-रानी उसे अपना जीवन-धन समझते थे। 'वसुमति' का अर्थ ही होता है 'धनवाली'। प्रेम के कारण राजा-रानी वसुमति को बहुत सुख में रखते थे। उसे उष्ण वायु भी नहीं लगने देते थे।

## पिता का विरह

'कौशाम्बी' नगरी में 'शतानीक' राजा राज्य करता था। उसकी महारानी का नाम था 'मृगावती'। दधिवाहन, शतानीक राजा का सगा साढू था। दोनों की रानियां आपस में बहिनें थीं। फिर भी शतानीक ने एक समय छुपी तैयारी करके रात को (नौ सेना से) चम्पानगरी पर आक्रमण कर दिया। दधिवाहन को इस आक्रमण का पहले कुछ ज्ञान न हुआ। अचानक हुए आक्रमण का वे पूरा सामना नहीं कर सके। अन्त में युद्ध में उनकी हार हुई। इसलिए

दधिवाहन को वन में भाग जाना पड़ा । राजा शतानीक अपनी इस दुर्विजय से बहुत प्रसन्न हुआ । उसने अपने सैनिकों और सुभटों को इस विजय के उपलक्ष्य में घोषणा की कि—'तुम इस चम्पानगरी में जहां, जो पाओ, वह ले सकते हो । वह ली गई वस्तु तुम्हारी समझी जायेगी ।' सैनिकों और सुभटों ने यह घोषणा सुन कर चम्पानगरी को तेजी से लूटना आरम्भ कर दिया ।

## माता की मृत्यु

महारानी धारिणी और वसुमति ने देखा कि 'महाराजा वन में भाग गये हैं और नगरी तेजी से लूटी जा रही है, तो हमे भी अपनी रक्षा के लिए यहां से भाग कर चला जाना चाहिए । अब यहां ठहरना शील के लिए ठीक नहीं होगा ।' यह विचार कर वे राजप्रासाद को छोड़ कर भाग ही रही थीं कि एक सारथी ने उन दोनों को पकड़ लिया और वह अपने साथ ले जाने लगा । मार्ग में उसने अपने साथ चलने वाले लोगों से कहा कि 'इन दोनों मिली हुई स्त्रियों में से इस बड़ी सुन्दरी को तो मैं अपनी पत्नी बनाऊँगा तथा इसकी इस कन्या को कहीं बाजार में बेच कर पैसा कमाऊँगा ।'

धारिणी को यह सुन कर हृदय में बड़ा आघात लगा—'जिस पुत्री को जीवन-धन की भांति पाला, वह राजप्रासाद में रहने वाली पुत्री मार्ग में खड़ी करके बेची जायेगी'—यह उसे सहन न हुआ । फिर शील-नाश की शंका ने तो उसका हृदय पूरा कम्पा दिया । वन के मध्य

में पहुँचने पर एकान्त शून्य स्थान देख कर सारथी ने उन्हें रथ से नीचे उतरने को कहा। वे डरती हुई नीचे उतरीं। सारथी ने धारिणी के सामने अपनी मलिन भावना का प्रस्ताव रखा। धारिणी ने नमस्कार मंत्र की शरण लेकर सारथी को निर्भीकता से उत्तर दिया कि तुम्हारी इस मलिन-भावना का हमारे सामने प्रदर्शन करना बिलकुल योग्य नहीं है। चाहे हमारे प्राण भी चले जायँ, किन्तु हम अपने शीलव्रत से किंचित् भी नहीं डिगेंगी। इस दृढ़ उत्तर का भी सारथी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह अपनी भावना को कार्यरूप में परिणत करने के लिये जैसे ही आगे बढ़ा कि धारिणी ने वसुमति को सदाचार पालन में दृढ़ रहने की अंतिम शिक्षा देते हुए उनके देखते-देखते ही अपनी जवान को खींच कर अपने प्राण त्याग दिये।

## बाजार में बिक्री

वसुमति अब अपने आपको अनाथ अनुभव करने लगी। (१) पिताजी छोड़ कर चले गये। (२) राजप्रासाद छूट गया। (३) माता सिधा गई। अब उसके लिये कौन रहा? उसका मुंह कुम्हला गया, हाय! अब मेरी कैसी दशा होगी? यह दुष्ट मेरी मां को तो मार चुका, अब मुझे न जाने किसके हाथ बेचेगा? मेरे कुल-शील की रक्षा कैसे होगी? वह इन संकट की घड़ियों में धैर्य के साथ नमस्कार-मंत्र का स्मरण करने लगी।

सारथी वसुमति को लेकर कौशाम्बी पहुँचा। उन्हें देख कर सारथी-पत्नी ने क्रोधित होकर उसे कहा—मैं तो

समझती थी कि चम्पापुरी से बहुत-कुछ माल-असबाब लूट-कर आवोगे परंतु आये भी तो ऐसा माल लेकर आये जो मेरे घर को ही लूट ले। मैं ऐसा कभी नहीं होने दूंगी। मैं मर जाऊँगी, परंतु जब तक आप इसे बेच कर २० लाख मोहरें मुझे लाकर नहीं देगें, मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगी।'

सारथी ने अपनी पत्नी को बहुत समझाया परंतु वह टस से मस नहीं हुई। वह उलझन में पड़ गया। यह देख कर वसुमति ने उससे कहा—"पिताजी! माताजी पर नाराज होने की कोई बात नहीं है। चलिये, मैं आपके साथ बाजार चलती हूं। देर मत कीजिये। माता जी मुझ से दुःखित हो रही हैं। उन्हें जल्दी ही बीस लाख मोहरें देकर सन्तुष्ट कीजिये।

वसुमति सारथी को लेकर बाजार में आकर खड़ी हो गई। जो कोई भी बाजार से निकलता वसुमति की तरफ एक नजर उठा कर अवश्य देखता। वह सोचता—यह देवबाला-सी कौन खड़ी है? वसुमति उसके अभिप्राय को समझ कर कहती—"मैं दासी हूं और बिकने के लिये आई हूं।"

आगन्तुक पूछता—तुम्हारी कीमत?

वसुमति कहती—'बीस लाख मोहरें।'

कीमत सुन कर सब वापिस लौट जाते। वसुमति निराश हो फिर किसी ग्राहक का इन्तजार करती। सहसा इस बार एक वेश्या की सवारी इधर से गुजरी। ज्यों ही

वेश्या ने उसको सब्ज-बाग दिखाते हुए कहा-"बेटी! जब कुदरत को ही यह पसंद नहीं था कि वह तुम्हारे इस रूप को किसी एक व्यक्ति के हाथों में सौंप दे और उसी के हृदय-मंदिर में बंद कर दे तो फिर तुम क्यों अवहेलना करती हो ? क्यों नहीं मुक्त-हस्त हो रूप-दान करती ?" वेश्या ने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा—"बेटी! जहां प्रतिबंध होता है, वहां दुःख होता है । मेरे यहां न प्रति-बंध है, न दुःख है । जब चाहो ऐश-करो, आराम-करो । खाओ-पीओ और मौज उड़ाओ । यही तो जिंदगी है।"

वसुमति ने एक लम्बी सांस ली और बोली—"माताजी ! अधर्म फैलाने वाले कभी सुख-चैन से नहीं रह सकते । आप सच कहती हैं, कामी-हृदय प्रतिबंध-रहित होता है और वह उसी में भूला हुआ सुख समझ बैठता है। लेकिन मनुष्य के जीवन पर प्रतिबंध होना आवश्यक है। जहां प्रतिबंध होता है, वहां जीवन, जीवन बन जाता है। उसकी सौरभ मलयानिल से मिल कर दिग्दिगंत को सुर-भित कर देती है।"

वसुमति ने निश्वास लेते हुए फिर कहा—"माताजी! मनुष्य पर ही क्या, आकाश में विचरण करने वाले जानवरों पर भी प्रतिबंध है। अगर वे भी अपनी हद छोड़ कर उड़ जाते हैं तो दंड पाते हैं । मनुष्य भी अपनी मर्यादा त्याग कर स्वच्छन्द बनता है तो दंडित होता है । जिस जीवन को आप प्रतिबंध-रहित और सुख-सम्पन्न समझ रही हैं, तनिक उसके परिणाम को भी तो देखिये। शहद-भरी तल-वार को चाटने में सुख कहां होगा ? परिणाम में जीभ ही

तो कटेगी। अगर आपको कुछ भी आत्मा और परमात्मा का खयाल है तो आप अपने इस धंधे को छोड़ दीजिये।"

लोगों की भीड़ जमा हो गई थी। वेश्या ने क्रोध से उत्तेजित होकर कहा—"हूं, मुझे ही छलना चाहती है। नादान छोकरी! तुझ-सी कई लड़कियां मैं देख चुकी हूं। बोल, चलती है या नहीं? अगर न चलेगी तो मैं जबरदस्ती तुझे ले चलूंगी।" यह कह कर उसने वसुमति का हाथ पकड़ कर अपनी तरफ खींचा। लोगों की भीड़ खड़ी-खड़ी यह तमाशा देख रही थी, परन्तु किसी ने अपने मुंह से चूं तक न की। वेश्या ने फिर वसुमति से कहा—'जानती हो, तुम यहां बिकने के लिये आई हो। बीस लाख मोहरें देकर कोई भी तुम्हें खरीद सकता है और अपनी इच्छा के अनुसार काम ले सकता है।"

लोगों को भीड़ में से कुछ लोगों ने इसका समर्थन भी किया लेकिन वसुमति नहीं घबराई। उसे अपने धर्म पर विश्वास था। वह बचपन से ही जानती थी कि चाहे हिमालय पर्वत ही टूट कर क्यों नहीं गिर जाय, परन्तु धर्म का पलड़ा पाप से दब नहीं सकता। वह तो ऊपर उठेगा और उठ कर ही रहेगा।"

विचार-मग्न सारथी को अब तक कुछ पता न चला। परन्तु जब कोलाहल कुछ तीव्र हुआ तो उसका ध्यान टूटा और वह वसुमति की तरफ बढ़ा और वेश्या के दुष्ट आचरण का विरोध करते हुए क्रोध में आकर उसे मारने के लिये तलवार निकाली। उस समय वसुमति ने उस सारथी

से कहा—" पिताजी, आप यह क्या कर रहे हैं ? देखिये, धर्म के प्रताप से सब को सुख-शांति प्राप्त होती है। आप शांत रहिये । धर्म पर आस्था रखिये । धर्म पर आस्था रखने से सब के मनोरथ सफल होते हैं और कष्टों का निवारण होता है।

वसुमति के इस कथन से उस वेश्या ने सोचा कि वसुमति मेरे साथ चलने को तैयार है, इसलिये वह सारथी को रोक रही है । इससे उस वेश्या को और बल मिला और उसने अपने पक्ष को प्रबल समझ कर जैसे हीं अपना हाथ लम्बा कर वसुमति को खींचना चाहा, वैसे ही वृक्ष पर वैठे हुए कई वंदरों ने उस पर हमला बोल दिया। देखते ही देखते वंदरों ने उसके शरीर को नोंच डाला । वेश्या सहायता के लिये चिल्लाई, परन्तु मौत के मुंह में हाथ कौन दे ? सब लोग पहले ही भाग चुके थे। उसकी सहायता के लिये कोई नहीं आया । वह बुरी तरह से रोने लगी। लेकिन वंदरों ने उसे छोड़ा नहीं। परन्तु वसुमति से उसकी हालत देखी नहीं गई। उसने दौड़ कर वंदरों को भगाया और वेश्या की रक्षा की। वह दर्द के मारे रो रही थी। वसुमति सन्त्वना देती हुई उसके शरीर पर हाथ फेरने लगी।

जिस दर्द के मारे वेश्या रो रही थी, वसुमति का हाथ लगते ही उसकी वह सब वेदना दूर हो गई । वह कृतज्ञता भरी आंखों से वसुमति को देखती हुई वोली— " देवी, मेरी भूल हुई । मुझे माफ करो । मैंने आपको पहचाना नहीं । आप कोई साधारण स्त्री नहीं । आप स्त्री के

रूप में देवी हैं। मेरी अपवित्र आंखों ने तो आपको भी सदा की भांति अपने जैसा ही समझना चाहा। लेकिन आपने मेरा वह पर्दा दूर कर दिया। उसके दूर होते ही मैंने आज सर्व प्रथम पवित्र नारी का रूप देखा। जिस पर्दे की आड़ से मैं अपने जीवन-पथ को भूली हुई गोते खा रही थी, अब उसी पथ पर चलने को प्रेरित हो रही हूँ। मैं शपथ खाकर कहती हूँ कि अब मैं उसी पथ पर आगे बढ़ूंगी।

लोगों की भीड़ फिर जमा हो गई थी। वेश्या ने अपनी बात समाप्त की और वह भीड़ को चीरती हुई अपने परिजनों के साथ घर चली गई।

इधर वसुमति अपने नये ग्राहक का इन्तजार करने लगी। उधर से धनावह नामक सेठ निकले। उन्होंने वसुमति को विकते देखा। वसुमति के १. रूप-रंग को, २. वेश को, ३. लक्षणों को और ४. मुखाकृति को देख कर धनावह सेठ ने अनुमान लगाया कि 'यह कोई राजपुत्री अथवा सेठ की लड़की दीखती है। कहीं कोई हीन कुल वाला इसे खरीद न ले और इसके कुल-शील पर आपदा न आवे, इसलिये मैं ही इसे खरीद लूँ। हो सकता है कि कुछ दिनों तक यह मेरे घर रहे और उसके पश्चात् इसके माता पिता भी इसे आ मिलें।

## धनावह सेठ के घर में

धनावह सेठ ने इन विचारों से उस सारथी को मुंह

मांगा धन देकर वसुमति ले ली। धनावह सेठ उसे लेकर अपने घर पहुंचे। उनकी पत्नी का नाम 'मूला' था। मूला से कहा—"लो प्रिये! यह गुणवती कन्या। हमारे कोई संतान नहीं है, इससे अब हम अपनी सन्तान की भावना पूरी करें।" मूला ने भी वसुमति को पुत्री के रूप में स्वीकार कर लिया।

वसुमति को यह देख कर बहुत प्रसन्नता हुई। वह १. पिता का विरह, २. घर का छूटना, ३. माता की मृत्यु और ४. अपना बिकना, सब-कुछ भूल-सी गई। उसे संतोष हुआ कि 'अब मैं कुलीन घराने में हूं। यहां मेरे धर्म की समुचित रक्षा होगी तथा मैं धर्म-ध्यान कर सकूंगी।

## नया नाम— चन्दनबाला

धनावह सेठ ने वसुमति को पूछा—'बेटी! तुम्हारा नाम क्या है?' उसने कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी मधुर और ऊँची बोली, सबसे विनय-व्यवहार तथा सुशीलता ने सब लोगों को वश में कर लिया था। इसलिए लोग उसे चन्दन के समान अनेक गुणवाली देख कर 'चन्दना' (चन्दन-बाला) कहने लगे। उसका यही दूसरा नाम आगे चल कर अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ।

## सेवा और कृतज्ञता

उन्हाले के दिन थे। धनावह सेठ बाहर से चल कर थके हुए घर पर आये थे। उस समय उनके हाथ-पैर धुलाने

के लिए वहां कोई सेवक उपस्थित न था। इसलिए चन्दन-बाला ही पात्र में पानी लेकर सेठ के पास पहुंच गई। सेठ ने उसे बहुत निषेध किया कि 'बेटी! तुम रहने दो। मुझे कोई शीघ्रता नहीं है। अभी कुछ समय में कोई सेवक आ जायेगा। तुम मेरे पैर धोओ—यह ठीक नहीं है।'

चन्दना ने कहा—'पिताजी! यदि पुत्री पिता की सेवा करे तो उचित कैसे नहीं? आपने तो मुझे मानो दूसरा जीवन ही दिया है। आपदा की घड़ियों में आपने अपार धन देकर मुझे खरीदा और मेरे कुल-शील की रक्षा की। ऐसे महारक्षक पिताजी की तो मुझे सेवा अवश्य ही करनी चाहिए।' इस प्रकार कहते हुए चन्दना ने धनावह सेठ के निषेध करते हुए भी उनके पैर धोना आरम्भ कर दिया।

पैर धोते-धोते उसके केश खुल गये। चन्दना ने उन्हें सम्भालने का विचार किया, तब तक सेठ ने उन केशों को गीली मिट्टी वाली भूमि पर पड़ते हुए बचा लिया और अपने ही हाथों से पकड़ कर बांध दिया।

## मूला का दुष्ट विचार

नहीं है। इसके काले-काले मनोहर लम्बे केश प्रत्येक पुरुष को मोहित कर सकते हैं। इसलिए कहीं सेठ इसके साथ लग्न न कर लें! यदि ऐसा हो गया तो मेरी दासी से भी अधिक दुर्दशा हो जायेगी।'

आज जब उसने केवल यह दृश्य देखा तो उसकी यह असत्य शङ्का पक्की हो गई। उसने सोचा—'अवश्य ही इस लड़की पर सेठ की भावना बिगड़ी हुई है। मुंह से तो 'बेटी-बेटी' कहते हैं परन्तु मन में भावना कुछ दूसरी ही है। नहीं तो 'ये युवावस्था वाली इस लड़की के केशों को क्यों हाथ लगाते और क्यों उन्हें बांधते?' ऐसा कार्य करना इनके लिए सर्वथा अनुचित था, और इस लड़की की भावना भी बिगड़ी हुई ही दिखती है, नहीं तो 'यह सेठ के द्वारा केशों पर हाथ लगाना और चोटी बांधना कैसे सहन करती?' अस्तु, अब तक तो यह रोग छोटा ही है। जब तक यह रोग अधिक न बढ़े, उसके पहले ही इसकी औषधि कर लेना बुद्धिमानी होगी।'

## कष्ट के साथ तीन दिन तलघर में

एक समय सेठ बाहर गये हुए थे। मूला ने वह उचित अवसर समझा। उसने १. नाई को बुलवाया और चन्दना के केश कटवा डाले। २. आभूषण उतार कर हाथों में हथकड़ी तथा ३. पैरों में बेड़ी डाल दी और ४. कपड़े उतार कर उसे काछ पहना दी। इस प्रकार दुर्दशा करके तथा ५. उसे मार-पीट कर उसने चन्दनबाला को ६. भोंयरे में डाल दी और ऊपर ताला लगा दिया। घर के सब दास-दासियों से

कह दिया कि 'कोई भी सेठ को यह बात न बतावे। यदि कोई बतावेगा, तो मैं उसके प्राण ले लूंगी।' इतना सब करके वह अपने मायके ( पीहर ) चल दी।

## उड़द के बाकुले

सेठजी दुपहर को भोजन के लिए घर लौटे। दास-दासियों से पूछा—'सेठानी कहां है? और चन्दना कहां है?' उन्होंने 'सेठानी मायके गई है'—यह तो बता दिया, परंतु मृत्यु के भय से किसी ने भी चन्दना की स्थिति नहीं बताई। सेठजी ने सोचा—'ऊपर होगी या कहीं खेलती होगी।' वे भोजन करके चले गये। संध्या को फिर पूछा—'चन्दना कहां है?' पर किसी ने उत्तर नहीं दिया। सेठ ने सोचा—'आज शीघ्र सो गई होगी।' इस प्रकार सेठ को प्रश्न करते और सोचते तीन दिन बीत गये। चौथे दिन सेठजी से रहा न गया। उन्होंने दास-दासियों से कहा—'यदि कोई जानता हुआ भी चन्दना की स्थिति नहीं बताएगा, तो याद रखो, उसके प्राण नहीं रहेंगे।'

यह सुन कर एक बुड्ढी दासी ने सोचा—'दोनों ओर प्राणों का संकट है। बताऊं तो सेठानी की ओर से तथा न बताऊं तो सेठ की ओर से। अस्तु, मैं बुड्ढी हो ही गई हूं, यदि मेरी मृत्यु से भी चन्दना बच जाय, तो उस सुशील कन्या को बचा लेना चाहिए।' यह विचार कर उसने सेठ को सारी बात बता दी। वह स्थिति सुन कर सेठजी को बहुत ही दुःख हुआ। उन्होंने पत्थर से ताला तोड़ा और चन्दना को भोंयरे से बाहर निकाला, तथा उसके दुःख की

बात पूछने लगे। चन्दना ने कहा—'पिताजी! मुझे बड़ी भूख लगी है। मैं तीन दिन से भूखी हूँ, पहले मुझे कुछ भोजन ला दो।' उस समय केवल उड़द के बाकुले ही तैयार थे। सेठजी ने वे सूरड़े में रख कर भोजन के लिए उसे दे दिये और उसकी हथकड़ी-बेड़ी तुड़वाने के लिए लुहार को बुलाने स्वयं ही लुहार के यहां चल दिये।

## आँखों में आँसू

चन्दना सूप में रहे हुए उन उड़द के बाकुलों को लेकर देहली पर पहुँची। एक पैर देहली के भीतर तथा एक पैर देहली के बाहर रख कर बारसाख (द्वारशाखा) का सहारा लेकर खड़ी हो गई। उस दशा में उसे अपनी सारी पिछली बात स्मरण में आने लगी। 'कहां तो मेरी माता धारिणी और कहां यह मूला? कहां मेरा वह राजघराना और कहां यहां भोंयरे में तीन दिन तक कारागृह (जेल) जैसी मेरी यह दुर्दशा? अरे, रे! मैंने पूर्व भव में न जाने कैसे कर्म कमाये, जिनका मुझे ऐसा फल भुगतना पड़ रहा है। मैं सोचती थी कि—'अब यहां धनावह सेठ के घर पर पहुँच कर मेरे दुःख का अन्त आ गया है, परन्तु कर्म न जाने कितने कठोर हैं कि वे अधिक-से-अधिक दुःख दिखा रहे हैं।' यह सोचते-सोचते उसकी आंखों से आंसू बह चले।

## भगवान् का पारणा

इधर भगवान् महावीर स्वामी को दीक्षा लिये ग्यारह वर्ष हो चुके थे। अब उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न होने में एक

को अभिग्रह चल रहा है और अभिग्रह बहुत ही कठोर दिखता है, क्योंकि कई प्रयत्न होने पर भी वह फल नहीं पा रहा है। अब लगभग छह मास पूरे होने जा रहे हैं।' अतः वह सोचती थी कि ऐसा कठोर अभिग्रह मेरे हाथ से क्या फलेगा ? परन्तु फिर भी जब भगवान् द्वार पर पधारे, तो उसने सूप में रहे उड़द के बाकुलों को दिखाते हुए कहा– 'भगवन् ! यद्यपि ये आपको दान मे देने योग्य नहीं हैं, फिर भी यदि ये आपको कल्पते हों, तो इन्हें ग्रहण करें' भगवान् ने अवधि–ज्ञान से देख लिया कि मेरे अभिग्रह के सभी बोल इसमें मिल रहे हैं, तो उन्होंने अपने हाथों को खोभा बना कर (नाव की आकृति के बना कर) चन्दना के सामने किये। चन्दना ने अत्यन्त हर्ष के साथ भगवान् कों उन सभी उड़द के बाकुलों को वहरा दिया। अन्य मान्यतानुसार चन्दनबाला की आंखों में भगवान् पधारे तब तक आँसू नहीं थे। इसलिए अभिग्रह में एक बोल कम देख कर एक बार भगवान् लौट गये थे। जब भगवान् को फिरते देख कर चन्दनबाला की आंखों में आंसू आ गये, तब दुबारा भगवान् चन्दना के घर लौटे और अभिग्रह पूर्ण होने से आहार ग्रहण किया।

## दुःख का अन्त

भगवान् का अभिग्रह चन्दनबाला के हाथों पूरा हुआ देख कर देवता चन्दनबाला पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने देव–दुन्दुभि के साथ चन्दना के घर १२॥ करोड़ सोनैयों की वृष्टि बरसाई और चन्दना के शिर पर केश बनाये। उसका

काष्ठ हटा कर उसे सुन्दर वस्त्र पहनाए तथा उसकी हाथ-पैरों की हथकड़ी-बेड़ी तोड़ कर उसे मूल्यवान आभूषण पहनाये । देव-दुन्दुभि बजी हुई सुन कर और चन्दना के हाथों अभिग्रह फला जान कर महाराजा महारानी सहित सहस्रों पुरजन भी वहां आ पहुँचे । सभी ने चन्दना की बहुत प्रशंसा की ।

जब महारानी को जानकारी हुई कि 'यह मेरी बहन की सौत की लड़की वसुमति है', तथा राजा ने जाना कि 'मेरी साली की लड़की है, तो उन्हें बहुत दुःख हुआ कि इसकी ऐसी दशा हुई !' उन्होंने इसके लिए उससे बार-बार क्षमा याचना की और बहुत आग्रह करके उसे राजप्रासाद में ले गये । फिर शतानीक ने दधिवाहन की खोज कराई और उनका राज्य उन्हें पुनः लौटा दिया ।

चन्दनबाला अब शतानीक राजा के यहां कन्याओं के अन्तःपुर में रहने लगी । उसे अब वैराग्य हो चुका था । वह इसी प्रतीक्षा में संसार में रह रही थी कि 'जब भगवान् को केवल-ज्ञान उत्पन्न होगा, तब मैं दीक्षा ले लूंगी ।'

## दीक्षा

उस समय के एक वर्ष बाद जब भगवान् को केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब उसने राज्य-सुख को छोड़ कर कई स्त्रियों के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली । वे भगवान् की सब से बड़ी शिष्या हुई और उनकी शिष्याओं की ऊंची संख्या ३६,००० छत्तीस सहस्र तक पहुंची ।

## अनुशासन

महासती श्री चन्दनबाला जी का अनुशासन बहुत अच्छा था। कौशाम्बी की ही बात है। उनके पास उनकी मौसी मृगावती जी दीक्षित हो गई थीं। एक दिन वे कुछ महासतियों के साथ भगवान् महावीर स्वामी जी के दर्शन के लिए 'चन्द्रावतरण' नामक उद्यान में गई हुई थीं। वहाँ पर सूर्यास्त तक चन्द्र और सूर्य देवता उपस्थित थे। उनके प्रकाश से मृगावती जी को समय की जानकारी न रह सकी। जब वे देवता सूर्यास्त होने पर वहां से चले गये, तो मृगावती जी अन्य साध्वियों के साथ उपाश्रय (सन्त/सतियाँ जहां ठहरी हुई हों) पहुंची। वहां पहुंचते-पहुँचते अंधेरा हो चला था।

चन्दनबाला जी ने प्रतिक्रमण के पश्चात् मृगावती जी को मौसी होते हुए विलम्ब से आने के लिए योग्यतापूर्वक उपालम्भ देते हुए कहा—'आप जैसी उत्तम कुल-शीलवाली महासती को उपाश्रय के बाहर इतने समय तक ठहरना शोभा नहीं देता।'

## विनय

मृगावती जी ने अपने इस अपराध के लिए पैरों में पड़ कर क्षमा-याचना की। उसके बाद महासती जी श्री चन्दनबाला जी को तो शय्या पर सोते हुए नींद आ गई, परन्तु मृगावती जी उनके पैरों में ही पड़ी अपने अपराध पर बहुत पश्चात्ताप करती रहीं। अन्त मे इससे उन्हें केवल-ज्ञान उत्पन्न हो गया।

इधर सोती हुई चन्दनवाला जी का हाथ संथारे से ( बिछाये हुए बिस्तर से ) बाहर हो गया था। । उधर एक सर्प आ निकला । मृगावती जी ने केवलज्ञान से वह देख लिया । सर्प हाथ को काट न खावे, इसलिए उन्होंने हाथ को संथारे में कर दिया । इससे चन्दनवाला जी की नींद खुल गई। उन्होंने पूछा—'मृगावती जी, आप अब तक सोई नहीं ? आपने मेरा हाथ हटाया क्यों ?' मृगावती जी ने कहा—'हाथ को सर्प से बचाने के लिए ।

चन्दनवाला जी—'क्या आपको कोई ज्ञान पैदा हुआ है?'

मृगावती जी—'हां ।'

चन्दनवाला जी—'प्रतिपाति ( नाश होने वाला ) या अप्रतिपाति ( अमर ) ?'

मृगावती जी—'अप्रतिपाति ।'

चन्दनवाला जी यह सुनते ही मृगावती जी के चरणों में गिर पड़ीं । 'एक केवलज्ञान ही अमर-ज्ञान है । वह जिन्हें उत्पन्न हुआ, उन केवलज्ञानी की मुझसे आशातना हुई । मैंने उन्हें उपालम्भ दिया । अहो! कैसी भूल हुई ।' चन्दनवाला जी ने मृगावती जी से बार-बार क्षमा-याचना की । इस प्रकार चन्दनवाला जी में दूसरों पर अनुशासन के साथ स्वयं में महान् विनय भी था ।

## मोक्ष

चन्दनवाला जी अन्त समय में सभी कर्मों का क्षय करके मोक्ष पधारीं ।

॥ इति महासती श्री चन्दनवाला जी की कथा समाप्त ॥

## शिक्षाएं

१. पुण्य सदा का साथी नहीं ।

२. कर्त्तव्य से सच्चा नाम प्राप्त करो ।

३. सेवा और कृतज्ञता सीखो ।

४. भगवान् को भी कठिन तपश्चर्याएं करनी पड़ीं ।

५. जीवन में अनुशासन और विनय, दोनों सीखो ।

## प्रश्न

१. वसुमति का नाम चन्दनबाला क्यों पड़ा ?

२. चन्दनबाला जी को क्या-क्या कष्ट आये ?

३. भगवान् महावीर स्वामी को क्या अभिग्रह था ?

४. चन्दनबाला जी के दुःख का अन्त कैसे हुआ ?

५. श्री चन्दनबाला जी से क्या शिक्षाएं मिलती हैं ?
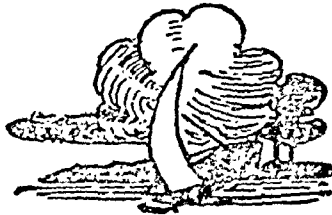
# ४. श्री मेघकुमार ( मुनि )

## माता-पिता आदि

मगध देश और 'राजगृह' के महाराजा 'श्रेणिक' के 'धारिणी' नामक एक रानी थी। शरीर, इन्द्रिय और मन के अनुकूल शय्या पर आधी नींद लेती हुई उस महारानी को किसी रात्रि की पिछली घड़ियों में एक ऐसा स्वप्न आया कि—'एक सुन्दर सुडौल 'हाथी' आकाश से उतर कर लीला के साथ मेरे मुख में प्रवेश कर गया।' पश्चात् वह जाग गई।

उसने यह स्वप्न अपने पति को जाकर सुनाया। राजा ने कहा—'तुम्हें एक कुलीन और भविष्य में राजा बनने वाला पुत्र प्राप्त होगा।' यह सुन कर रानी को हर्ष हुआ। उसने स्वप्न-जागरण किया।

प्रातःकाल स्वप्न-पाठकों (स्वप्न के फल बतलाने वालों) को पूछने पर उन्होंने कहा—"रानी को एक कुलीन और भविष्य में राजा या श्रेष्ठ मुनि बनने वाला पुत्र उत्पन्न होगा।" राजा-रानी को यह सुन कर बड़ी प्रसन्नता हुई। रानी यत्नपूर्वक अपने गर्भ का पालन करने लगी।

## 'मेघ' नाम का हेतु

गर्भ के तीसरे महीने में, जब कि मेघ-वर्षा का काल नहीं था, तब रानी को दोहला उत्पन्न हुआ कि 'वर्षाकाल

का दृश्य उपस्थित हो और मैं महाराज श्रेणिक के साथ हाथी पर चढ़ कर राजगृह के पर्वतों के पास वर्षाकाल का दृश्य देखूं।' यह दोहला पूर्ण होना असंभव समझ कर रानी दिनों-दिन सूखने लगी।

महाराजा श्रेणिक को दासियों के द्वारा जब यह जानकारी हुई, तो वे बहुत चिन्तित हुए। अन्त में श्रेणिक के ही पुत्र 'अभयकुमार' जो बड़े बुद्धिशाली और राजा के प्रधानमन्त्री भी थे, उन्होंने देव की सहायता से अपनी छोटी माता का यह असंभव दोहला पूरा कराया।

गर्भकाल पूर्ण होने पर महारानी ने एक सर्वांग सुन्दर बालक को जन्म दिया। महाराजा श्रेणिक ने उसका जन्म-दिवस बहुत उत्सव से मनाया और बारहवें दिन 'माता को अकाल में मेघ आदि का दोहला आया था,' इसलिए उसका नाम 'मेघकुमार' रक्खा।

## लग्न

आठ वर्ष के हो जाने पर, महाराजा ने मेघकुमार को कलाचार्य के पास भेज कर, उन्हें ७२ कलाएं सिखाईं। पश्चात् योग्य वय वाले हो जाने पर महाराजा ने आठ सुन्दरी कन्याओं के साथ उनका पाणिग्रहण कराया। युवक मेघकुमार अब अपनी अनुरागिनी रानियों के साथ अपने लिए स्वतन्त्र बनाये हुए राजभवन में अत्यन्त सुख के साथ रहने लगे।

## वैराग्य

कुछ समय के बाद भगवान् महावीर वहां राजगृही

में पधारे। मेघकुमार भी वन्दन-श्रवण के लिए समवसरण में गये। भगवान् का उपदेश सुन कर उन्हें वैराग्य हो गया। उन्होंने भगवान् से कहा—'भगवन् ! मैं माता-पिता को पूछ कर आपके पास दीक्षा लूंगा।' भगवान् ने कहा—'तुम्हें जैसे सुख हो, वैसा करो (अर्थात् जिस प्रकार के धर्म को निभाने में तुम आत्मग्लानि का अनुभव न करो, उसे स्वीकार करो), परन्तु इस धार्मिक कार्य में प्रतिबन्ध (किसी प्रकार की रुकावट या विलम्ब) मत करो।

## आज्ञा के लिए माता-पुत्र की चर्चा

मेघकुमार ने वहां से राजभवन में पहुंच कर माता-पिता से दीक्षा की आज्ञा मांगी। महारानी धारिणी अपने पुत्र के मुख से दीक्षा की आज्ञा के अप्रिय वचन सुन कर मूर्छित हो गई। दासियों के द्वारा चेतना लाने पर उसने कहा—'१. पुत्र ! जब हम काल कर जायें, तब तुम दीक्षा ले लेना ! हम तुम्हारा वियोग क्षण भर भी सहन नहीं कर सकते।' मेघकुमार ने कहा—'माता-पिता ! यह आयुष्य बिजली आदि के समान चंचल है। इसका कोई विश्वास नहीं कि 'यह कब तक रहेगा ?' कौन जानता है, माता-पिता ! कि कौन पहले जायगा और कौन पीछे ?'

माता-पिता ने कहा—'२. बेटा ! ये आठ तेरी नव-विवाहिता सुन्दरी स्त्रियां हैं, इन्हें पहले भोग ले, पीछे दीक्षा लेना।' मेघकुमार ने कहा—'माता-पिता ! मनुष्य के काम-भोग अत्यन्त अशुचिमय हैं और कौन जानता है कि कुछ वर्षों तक इन स्त्रियों के काम-भोगों को भोग कर मैं इन्हें छोड़ सकूंगा या ये पहले ही मुझे छोड़ कर चली जायेंगी ?'

माता-पिता ने कहा—'३. बेटा ! हमारे पास सात पीढ़ियों तक चले—इससे भी अधिक धन है और जनता में हमारा आदर-सत्कार भी बहुत है । पहले तू इस धन-सत्कार को भोग ले, फिर दीक्षा ले लेना ।' मेघकुमार ने कहा—'माता-पिता ! यह धन, अग्नि, बाढ़, चोर आदि किसी से कभी भी नष्ट हो सकता है और राजा सदा राजा ही बने नहीं रहते । कौन जानता है कि कुछ ही वर्षों तक धन-सत्कार भोग कर मैं इन्हें छोड़ सकूंगा या ये पहले ही मुझे छोड़ कर चले जायेंगे ?'

जब माता-पिता सांसारिक सुखों से मेघकुमार को लुभा नहीं सके, तो उन्होंने उसे दीक्षा के कष्टों को बताया । उन्होंने कहा—'मेघ ! दीक्षा पालन कोई खेल नहीं है । वह १. लोहे के चने चबाने के समान कठिन है । २. बालू फांकने के समान नीरस (स्वाद-रहित) है । ३. महासमुद्र को भुजाओं से तैरने के समान अशक्य है । ४. खड्ग की धार पर चलने के समान दुःखद है । उसमें पांच महाव्रत पालने होते हैं । रात्रि-भोजन त्यागना होता है । बावीस परीषह सहने होते हैं । उपसर्ग आने पर समता रखनी होती है । केश-लोच करना पड़ता है । नंगे पैर चलना होता है । अपने लिए बना भोजन काम में नहीं आता । रोग उत्पन्न होने पर सदोष औषधि नहीं ली जा सकती । तुम सुकुमार हो, सुख में पले हो, अतः तुमसे ऐसी दीक्षा नहीं पल सकेगी । इसलिए बेटा ! तुम दीक्षा न लो ।' मेघकुमार ने कहा—'माता-पिता ! ये सब बातें कायरों की है । जो वीर पुरुष मन में धार लेते हैं, उनके लिए कुछ भी कठिन नहीं होता ।'

## दीक्षा

जब माता-पिता अनुकूल या प्रतिकूल किसी भी प्रकार की बातों से पुत्र को रोकने में सफल नहीं हुए, तो उन्होंने मेघकुमार को अनिच्छापूर्वक आज्ञा दी और निष्क्रमण (दीक्षा) महोत्सव मनाया। एक लाख रुपये देकर नाई से मेघकुमार के दीक्षा के योग्य शिखा के केश रख कर शेष केश कट-वाये। उन केशों को महारानी ने मेघकुमार की अन्तिम स्मृति के रूप में अपने पास सुरक्षित रक्खा। फिर दो लाख रुपये देकर मेघकुमार के लिए रजोहरण और पात्र मोल लिये। फिर सहस्र पुरुष मिल कर उठावें— ऐसी शिविका ( पालकी ) में बिठा कर मेघकुमार की भव्य दीक्षा-यात्रा निकाली।

भगवान् के पास पहुंच कर बहुत रोते हुए माता-पिता ने मेघकुमार को भगवान् को शिष्य-रूप में सौंप दिया। तब मेघकुमार ने अत्यन्त वैराग्य के साथ स्वयं सभी बहुमूल्य सांसारिक अलंकार उतार दिये और साधु-वेष धारण किया। उस समय माता-पिता ने मेघकुमार को दीक्षा को भली-भांति दृढ़तापूर्वक पालने का उपदेश दिया और 'हम भी कभी दीक्षित बनें'—ऐसा शुभ मनोरथ (मन की अभिलाषा) प्रकट किया।

उसके पश्चात् मेघकुमार ने भगवान् से कहा—'भग-वन्! यह सारा ही संसार दुःख-अग्नि से अत्यन्त जल रहा है। जिस प्रकार गृहस्थ अपने घर में आग लगने पर उसमें से बहुमूल्य सार-वस्तुएं निकाल लेता है, उसी प्रकार मैं इस

जलते हुए संसार में से अपनी आत्मा को बचा लेना चाहता हूं। अतः आप कृपा करके स्वयं अपने हाथों से मुझे दीक्षा दें और स्वयं अपने श्रीमुख से संयम योग्य शिक्षा दें। भगवान् ने मेघकुमार की प्रार्थना स्वीकार कर के उसे स्वयं दीक्षा–शिक्षा दी।

## रात्रि का दुःखद प्रसंग

रात्रि का समय हुआ। भगवान् के सभी साधुओं ने छोटे–बड़े के क्रम से संथारे (बिछौने) लगाये। मेघमुनि का सब से अन्तिम संथारा (बिछौना) द्वार पर आया। रात्रि को समय होने पर मेघमुनि सोये, परन्तु उन्हें नींद नहीं आयी क्योंकि सन्तों का द्वार पर से आना–जाना होता रहता था। कभी कोई सन्त दूसरे स्थान पर रहे हुए किसी अन्य सन्त से कुछ सीखने के लिए बाहर निकलते, तो कोई सुनाने को निकलते, तो कोई पूछने को निकलते, तो कोई सन्त शरीर के कारण से भी बाहर निकलते। सन्त ध्यान रख कर आते–जाते थे, फिर भी अंधार और द्वार में ही संथारा होने के कारण कुछ सन्तों के द्वारा मेघकुमार मुनि को ठोकर लग ही जाती थी। किन्हीं सन्त के द्वारा संथारे को, तो किन्हीं के द्वारा पैर को, तो किन्हीं के द्वारा हाथ को, तो किन्हीं सन्त के द्वारा मेघकुमार के मस्तक तक को ठोकर लग जाती थी। साथ ही सन्तों के गमनागमन से मेघकुमार के संथारे में और शरीर पर धूल भी भरती रही। इसलिए मेघमुनि की आंखों की पलकें क्षण भर भी सुखपूर्वक आपस में मिल न सकीं।

## 'तब और अब'

मेघकुमार संसार में राजप्रासाद में सोते थे । वहां उनके लिए–१. राजशय्या मक्खन-सी चिकनी और फूलों-सी कोमल हुआ करती थी । शय्या-भवन में, २. अगर-तगर की सुगन्ध चारों ओर मंडराती रहती । दासियों के द्वारा, ३. पंखों से मन्द-मन्द वायु भी प्राप्त होती रहती । किसी भी आवश्यकता के होने पर उसे पूरी करने के लिए, ४. दास भी पैरों पर जगे खड़े रहते थे ।

किन्तु आज सब में परिवर्तन था । भगवान् जहां विराजे थे, वहीं— १. बगीचे के स्थान में सोना पड़ा, वह भी धरती पर । आज २. सुगन्ध के स्थान पर धूल थी और ३. वायु के झोंकों के स्थान पर थीं ठोकरें । संयोग की बात है, ४. किसी साधु ने उनसे इस संबन्ध में सुख-दुःख भी न पूछा । उन्हें वह दीक्षा की पहली रात बहुत ही बड़ी लगी । वे अपने-आपको मानो ' मैं नरक में हूं '— ऐसा अनुभव करने लगे ।

## गृहस्थ बनने का निर्णय

उन्होंने विचार किया कि—' जब मैं गृहस्थवास में था, तब सभी साधु मेरा आदर करते थे । मधुरता से प्रश्नोत्तर करते थे । शिष्ट व्यवहार करते थे । परन्तु आज मैं ठुकराया जा रहा हूं ! मेरी कूड़े-कर्कट के ढेर-सी अवस्था बनाई जा रही है ! जब प्रथम ही दिन की यह अवस्था है, तो आगे और न-जाने क्या होगा ? यह जीवन भर का प्रश्न है और

मुझ से सदा ऐसा सहन न होगा । अच्छा है, प्रातःकाल होते ही मैं भगवान् से पूछ कर पुनः गृहस्थ बन जाऊँ ।' इस प्रकार विचार करके बड़े कष्ट के साथ उन्होंने उस वैरिणी रात्रि को पूरा किया ।

प्रातःकाल होने पर मेघमुनि भगवान् महावीर स्वामी के चरणों में पहुंचे । उन्होंने भगवान् को वन्दना-नमस्कार किया । अब भी उनके हृदय में रात्रि में किया हुआ निर्णय दृढ़ था ।

जब उन्होंने माता-पिता से आज्ञा मांगी थी, तब उनके हृदय में ज्ञान-वैराग्य की ज्योति तेजी से चमक रही थी । माता-पिता ने सांसारिक — १. शरीर, २. स्त्री, ३. धन-सत्कार आदि का प्रलोभन बताया, तो ज्ञान-वैराग्य के कारण निष्पृह ( इच्छा-रहित ) होकर उन्हें ठुकरा दिया । इसी प्रकार जब माता-पिता ने दीक्षा के दुःख बताये, तो ज्ञान-वैराग्य के कारण धैर्य धारण कर उन्हें सह लेने का साहस प्रकट किया । परन्तु इस रात्रि में ज्ञान-वैराग्य की ज्योति मन्द हो जाने से उन्हें राजप्रासाद के सुख स्मरण आ गये तथा रात्रि का नगण्य कष्ट भी नरक-सा लगा ।

## जघन्य पुरुष और उत्तम पुरुष

ज्ञान-वैराग्य की ज्योति जब मन्द हो जाती है, तब ऐसा ही होता है । जघन्य पुरुष (हीन कक्षा के प्राणी) ऐसी अवस्था में दूसरे को देख कर उसके ज्ञान-वैराग्य का उपहास करते हैं । उसकी की हुई प्रतिज्ञा पर हँसी करते हैं ।

ऐसा करने से ज्ञान-वैराग्य की मन्द हुई ज्योति चमकती नहीं है, परन्तु और अधिक मन्द पड़ जाती है। कुछ जघन्य पुरुष ऐसे भी होते है, जो ऐसे उदाहरणों को लेकर व्रतादि को लेने वाले का उत्साह मन्द कर देते हैं। 'चले हो दीक्षा लेने! ज्ञान-वैराग्य की वातें छांटना सरल है, परन्तु उसे निभाना हँसी-खेल नहीं है।' उनकी ऐसी वातें भी दीक्षार्थी को हानि पहुँचाती है।

भगवान् तो उत्तम पुरुष ही नहीं, सब से अधिक उत्तम पुरुष थे। उन्होंने मेघकुमार को उपालम्भ भी दिया, परन्तु मधुर उपालम्भ दिया, जिसमें मेघमुनि की मन्द हुई ज्ञान-वैराग्य की ज्योति फिर से तेज हुई और जीवन भर के लिए तेज हो गई।

उन्होंने मेघमुनि को मधुर स्वर में कहा—'मेघ! क्या साधुओं के आवागमन आदि के कारण तुम्हें आज नींद नहीं आई? क्या उस कष्ट से तुम्हारे विचार गृहस्थ बनने के हुए? क्या मुझ से यही कहने के लिए तुम मेरे पास आये हो?' मेघमुनि ने कहा—'हां।'

## मेघकुमार के पहले दो भव

भगवान् ने तब उनका पूर्व-भव सुनाना आरंभ किया—'मेघ! तुम्हारे इस भव से तीसरे भव की बात है। तुम श्वेत रङ्ग के, छह दांत वाले, सहस्र हथिनियों के स्वामी, सुमेरुप्रभ नामक हस्तिराज थे। एक बार उष्ण ऋतु में वृक्षों के आपस में टकराने से वन में आग लगी। तब तुम उससे बचने के लिए भागते हुए थोड़े पानी और अधिक कीचड़

वाले एक सरोवर में पहुँचे । बचने और पानी पीने की इच्छा से तुम उसमें घुसने लगे परन्तु कीचड़ में फँस गये। न पानी के पास पहुँच सके, न पुनः तीर पर पहुँच सके। बहुत ही सङ्कट की स्थिति उत्पन्न हो गई।

उस प्रसंग से पहले तुमने अपने यूथ के एक छोटे बालक हाथी को निरपराध मार कर अपने हाथी-समूह से निकाल दिया था । वह उस समय बालक था और तुम युवा थे। इस समय वह युवा था और तुम वृद्ध थे। तुम्हारे प्रति उसके हृदय में रहा हुआ पुराना वैर तुम्हें देख कर जग गया। क्रुद्ध होकर उसने पुराना वैर निकालने के लिए तुम्हें तीखे दांतों से बार-बार प्रहार करके घायल कर किया। उससे तुम्हारे शरीर में अत्यन्त वेदना हुई और पित्तज्वर उत्पन्न हो गया। उससे सात रात्रि में मृत्यु प्राप्त कर तुम दूसरे भव में पुनः विंध्याचल में एक हथिनी के पेट से लाल रंग के चार दांत वाले 'मेघप्रभ' नामक हाथी के रूप में उत्पन्न हुए और युवक होने पर स्वयं ७०० हथिनियों के स्वामी बन गये।

एक बार वहां भी उष्ण ऋतु में वन में आग लगी। उसे देख कर विचार करते-करते तुम्हें जाति-स्मरण (पूर्व भव का स्मरण) हो आया। तब भविष्य में आग से बचने के लिए तुमने एक क्षेत्र चुना और हथिनियों की सहायता से वहां के सभी वृक्ष और घास का तिनका-तिनका उखाड़ डाला। वर्षा से जब-जब वहां पुनः वनस्पति उगती, तो पुनः-पुनः हथिनियों से मिल कर उन्हें उखाड़ कर एक ओर डाल देते।

उसके बाद पुनः एक बार वन में आग लगी। तब तुम और तुम्हारी हथिनियां आदि उस आग से बचने के लिए पहले बनाए हुए तृण-काष्ठ रहित सुरक्षित स्थान पर पहुँचे। वन के दूसरे—सिंह से शृगाल तक—अनेक पशुओं ने भी वह स्थान पहले देख रक्खा था। वे तुम सभी से पहले आग से बचने के लिए वहां पहुंच गये थे। उन सबसे वह क्षेत्र बहुत भर चुका था। सभी छोटे-से बिल में ठूंस, ठूंसकर भरे हुए चूहों की भांति वहां सिकुड़ कर बैठे हुए थे। तुम भी किसी भांति हथिनियों के साथ वहां एक ओर स्थल बना कर आग से सुरक्षित खड़े हो रहे।

## शश ( खरगोश ) की रक्षा

वहां खड़े रहते-रहते तुम्हारे शरीर में खुजाल चली। तब तुम अपना एक पैर उठा कर शरीर खुजालने लगे। इसी बीच एक शश ( खरगोश ) दूसरे-दूसरे बलवान पशुओं से धक्के खाता हुआ, तुम्हारे पैर के उठाने से खाली हुए स्थान पर आकर बैठ गया। शरीर खुजला कर जब तुम पैर रखने लगे, तो वहां नीचे तुमने वह शश ( खरगोश ) बैठा पाया। उस समय तुम्हें जीव-अनुकम्पा (प्राणी-दया) की भावना उत्पन्न हुई और उस से तुमने उसकी रक्षा के लिए पैर को बीच में रोक लिया। हे मेघ! उस समय उस जीव-अनुकम्पा की भावना और क्रिया से तुम्हारा संसार परित्त ( कम ) हुआ।

जिससे संसार घटे, ऐसी उत्कृष्ट अनुकम्पा आदि की भावनाएं बहुत श्रेष्ठ और विशुद्ध होती है। यदि उनमें से

किसी उत्कृष्ट, विशुद्ध भावना में आयु का बंध हो, तो वह जीव वैमानिक बनता है ( विमान में देवता बनता है )। परन्तु हाथी को उस समय आयु बंध नहीं हुआ। पीछे जब कुछ समय के लिए उसमें मिथ्यात्व उदय मे आ गया, तब हे मेघ ! तुम्हें मनुष्य-आयु का बंध हुआ।

अढ़ाई रात-दिन के पश्चात् जब उस दावानल के बुझ जाने पर सभी पशु आग के भय से मुक्त हो गये, तब वे भूख-प्यास के मारे चारे-पानी आदि के लिए सभी दिशाओं में इधर-उधर बिखर गये। शश भी वहां से चला गया। तब तुमने भी वहां से चले जाने के लिए वह उठाया हुआ पैर नीचे रखना आरम्भ किया। परन्तु अढ़ाई दिन-रात तक एक सरीखा ऊँचा रहने से वह अकड़ गया था। अतः वह पैर तो टिका नहीं, परन्तु तुम पर्वत की भांति 'धड़ाम' शब्द करते हुए सारे अंगों से नीचे गिर पड़े। वहां तुम्हें तीव्र वेदना हुई और पित्तज्वर हो गया। उससे तुम्हारी तीन दिन-रात में मृत्यु हो गई।

वहां से मर कर तुम महाराजा श्रेणिक की धारिणी रानी के यहां हाथी-स्वप्न के साथ जन्मे और क्रमशः बड़े होने के बाद वैराग्य आने पर मेरे पास दीक्षित हुए।

## भगवान् की मेघकुमार को शिक्षा

इस प्रकार मेघकुमार के दोनों पूर्व जन्मों की घटनाओं को सुना कर भगवान् उन्हें शिक्षा देने लगे—'मेघ! पूर्व जन्म में तुम पशु थे। उस समय तुम्हें सम्यक्त्व ( धर्म-श्रद्धा )

नई-नई ही आई थी। उस पशु और नई श्रद्धा की अवस्था में भी तुमने उस जीव की रक्षा के लिए अढ़ाई रात-दिन तक अपने एक पैर को उठाये ही रक्खा और महान् कष्ट सहा।

परन्तु— १. आज तुम पशु नहीं, ऊँचे राजघराने में जन्मे हुए मनुष्य हो। २. तुम्हारे अंदर नई धर्म-श्रद्धा नहीं है, परन्तु पुरानी श्रद्धा के साथ ज्ञान-वैराग्ययुक्त दीक्षा-अवस्था भी है। फिर भी तुम साधुओं के द्वारा सावधानी रखते हुए भी पहुंचे हुए कष्ट को सहन न कर सकें? ३. कहां तो उस दशा में तुमने अपनी ओर से पशु के लिए महान् कष्ट सहा, कहां आज साधुओं की ओर से आये सामान्य कष्ट न सह सके? फिर ४. पूर्व जन्म में तुमने कहां तो अढ़ाई रात-दिन तक कष्ट सहा और कहां इस समय तुम एक रात्रि में ही अन्य विचार कर बैठे? सोचो, मेघ! आज तुम्हारे अन्दर कितने उच्च विचार होने चाहिएं? कितनी अधिक कष्ट-सहिष्णुता होनी चाहिए?'

## पुनः स्थिरता

इस निर्णय को मेघकुमार ने जीवन-भर निभाया। बीच में थोड़े समय के लिए हुई चंचलता उनके जीवन में एक कहानी मात्र बन गई। वे फिर कभी विचलित नहीं हुए। वरन् उन्होंने सन्तों की सेवा के साथ ही साथ बड़ी-बड़ी उग्र ( कठोर ) तपश्चर्याएं भी कीं। अन्तिम समय में उन्होंने भगवान् की आज्ञा लेकर संथारा संलेखना भी किया और समाधि-पूर्वक काल किया। वे काल करके अनुत्तर (सबसे बढ़ कर) देवलोक में उत्पन्न हुए। आगे वे मनुष्य बन कर, दीक्षा लेकर और कर्म क्षय करके सिद्ध बनेंगे।

धन्य हैं, भगवान् महावीर जैसे कुशल धर्माचार्य ! और धन्य है, मेघकुमार जैसे विनीत अन्तेवासी !!

॥ इति ४. मेघकुमार ( मुनि ) की कथा समाप्त ॥

— श्री ज्ञातासूत्र, प्रथम अध्ययन के आधार पर।

## शिक्षाएं

१. स्वयं कष्ट सहकर भी अनुकम्पा-भाव से दूसरों की रक्षा करो।
२. अनुकम्पा ( दया ) धर्म का मूल है।
३. उत्कृष्ट वैरागी के भाव भी गिर जाते हैं।

४. गिरे हुए को और मत गिराओ, न उसका दृष्टांत दो ।
५. उसे मधुरता और कुशलता-पूर्वक शिक्षा देकर पुनः ऊपर उठाओ ।

## प्रश्न

१. मेघकुमार का परिचय दो ।
२. मेघकुमार की दीक्षा से एक दिन पहले और एक दिन पीछे की स्थिति बताओ ।
३. मेघमुनि के पूर्व जन्म बतलाओ ।
४. भगवान् ने उन्हें कैसी शिक्षा देकर स्थिर किया ?
५. मेघमुनि के जीवन से तुम्हें क्या शिक्षाएं मिलती हैं ?

# ५. श्री अर्जुन माली ( अनगार )

## परिचय

'राजगृह' नामक नगर में 'अर्जुन' नामक एक माली रहता था। माली जाति में वह धनवान, दैदीप्यमान और बहुत प्रतिष्ठित था। उसकी 'बन्धुमती' नामक स्त्री थी। वह बहुत ही सुरूपवती और सुन्दरी थी।

## यक्ष-पूजक

राजगृह के बाहर अर्जुनमाली का फूलों का एक बड़ा बगीचा था। उस बगीचे से कुछ दूरी पर 'मुद्गरपाणि' नामक यक्ष का मन्दिर था। उस यक्ष के पाणि (हाथ) में हजारपल (३¾ मन) का एक भारी लौह मुद्गर था। इसलिए उसे लोग 'मुद्गरपाणि' कहते थे।

अर्जुनमाली की सातों पीढ़ियां और दूसरे भी सहस्रों लोग उसे वर्षों से पूजते चले आ रहे थे। अर्जुनमाली भी बचपन से ही उसे पूजता चला आ रहा था। उसको मुद्गरपाणि यक्ष पर बहुत श्रद्धा-भक्ति थी। वह उसे भगवान् मानता था। नित्य प्रातःकाल वह सुन्दर-सुन्दर बड़े-बड़े सुगन्धित फूलों के ढेर से पहले उसकी पूजा करता और फिर बाजार में फूलों को बेचने जाता था।

## उत्सव का दिन

एक बार जब अगले दिन राजगृह में उत्सव होने

वाला था, तव अर्जुनमाली को लगा कि 'कल फूलों की बहुत बिक्री होगी।' इसलिए वह दूसरे दिन सूर्य उदय से पहले अंधेरे रहते-रहते बगीचे में पहुँचा। फूल अधिक-से-अधिक चूंटे जा सकें—इसलिए वह अपनी स्त्री वन्धुमती को भी साथ ले गया। पहले वह यक्ष-पूजा के योग्य फूल चूंट कर यक्ष की पूजा करने चला। वन्धुमती भी उसके साथ हो गई।

## ललितागोष्ठी का दुर्व्यवहार

उस राजगृह नगरी में ललिता नामक एक मित्रमंडली रहती थी। उस मण्डली के सदस्य नाग जैसे दुष्ट स्वभाव वाले बहुत ही क्रोधी, भयावने और विषैले थे। उनके माता-पिता और राजगृही की जनता भी उनसे बहुत भय खाती थी। कोई उन्हें कुछ कह-सुन भी नहीं पाता था। वे जो कुछ करते, सब उसे सुकृत (अच्छा किया, यों ही) मानते थे। कुछ लोग कहते हैं कि, उन्हें बचपन में राजा से वर-दान मिला था कि 'तुम जो कुछ करोगे, वह अच्छा माना जायगा।' इस वरदान के बाद वे बिगड़ गए थे।

उस मण्डली के छः पुरुष उस दिन मुद्गरपाणि यक्ष के मंदिर के पास हास्य-विनोद आदि कर रहे थे। उन्होंने अर्जुन के साथ वन्धुमती को आते देखा। उसके सौंदर्य और रूप के लोभी बन कर उन्होंने परस्पर यह निर्णय किया कि 'हम अर्जुनमाली को बांध कर इस सुन्दरी को अवश्य भोगेंगे।' पापी लोग सदा ही जहां-कहीं कुछ ऐसा देखते हैं, पाप का निश्चय कर लेते हैं। वे छहों अपने निर्णय को

पूर्ति के लिए मन्दिर के कपाटों के पीछे लुक-छिपकर चुप-चाप खड़े हो गए।

अर्जुनमाली को इसकी कुछ भी जानकारी नहीं हुई। उसके हृदय में एकमात्र मुद्गरपाणि यक्ष की पूजा का ही विचार चल रहा था। जब वह मन्दिर में प्रवेश करने लगा, तब वे छहों एक साथ बड़ी शीघ्रता से कपाटों से बाहर निकल आए और सबने मिल कर अर्जुनमाली को पूरा पकड़ लिया। फिर उन्होंने अर्जुनमाली के हाथ-पैर तथा सिर को उल्टा घुमा कर बांधा और उसे एक ओर डाल दिया। पीछे वे छहों बन्धुमती को भोगने लगे। अपने पति को कष्ट में और अपने शील को भंग होता देख कर बन्धुमती चिल्लाई नहीं, जिससे कि दूसरे लोग सहायता के लिए आकर अर्जुनमाली को और उसे छुड़ा सकें। वह स्वयं अपनी शील-रक्षा के लिए भागी भी नहीं, परन्तु वह व्यभि-चारिणी उन व्यभिचारियों के साथ व्यभिचार में लग गई।

## अर्जुनमाली को क्रोध

अर्जुनमाली को यह देख कर बहुत क्रोध आया। 'अरे! ये दुष्ट कितने पापी हैं कि छहों ने मिल कर मुझे पकड़ कर, बांध कर एक ओर डाल दिया और मेरी ही आंखों के सामने इस प्रकार सब मिल कर नग्न व्यभिचार कर रहे हैं!' उसे अपनी स्त्री पर भी बहुत क्रोध आया। यह कैसी कुलटा है! मैं जो इसका पति हूं, मेरे कष्ट का इसे कुछ भी दुःख नहीं? इसे अपने शील का भी विचार नहीं? कितनी निर्लज्ज है कि 'मेरी ही आंखों के सामने

व्यभिचार-सेवन करते हुए इसकी आंखों में भी कुछ लज्जा नहीं ?

उसे सबसे अधिक क्रोध उस मुद्गरपाणि यक्ष पर आया। "अरे ! जिस मूर्ति की मेरी सात पीढ़ियां श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा करती चली आई हैं, मैं भी बचपन से जिसकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा करता चला आया हूं, वह मुद्गरपाणि अपने ही मंदिर में अपनी ही मूर्ति के सामने मेरी यह दुरवस्था देख रहा है ? और वह मेरी सहायता, मेरी रक्षा नही करता ? लगता है, सचमुच यह केवल लकड़ा है ! (मूर्ति लकड़े की बनी हुई थी।) परन्तु इसमें मुद्गरपाणि भगवान् निवास नहीं करते।"

## छह पुरुष और पत्नी की हत्या

मुद्गरपाणि यक्ष ने अर्जुन के ये विचार जाने। वह अर्जुनमाली के शरीर में घुसा और उसके सारे बंधन तड़ा-तड़ करके उसी समय तोड़ डाले। अर्जुन बंधन-मुक्त हुआ, उसकी आपत्ति-अवस्था दूर हुई। अब जिन पर अर्जुनमाली को क्रोध था, उन्हें नाश करना था। इसलिए मुद्गरपाणि यक्ष ने मूर्ति के हाथ में रहा ३६ मन का लौह मुद्गर उठाया और उन छहों मित्रों और बंधुमति पर चला कर उन्हें मार डाला।

शक्ति या वरदान का दुरुपयोग करने के कारण उन छहों पुरुषों की मृत्यु हुई तथा शील-भङ्ग करने के कारण बंधुमति की हत्या हुई। इसलिए कभी भी अधर्म का सेवन नहीं करना चाहिए तथा धर्म को नहीं छोड़ना चाहिए।

जो अधर्म-सेवन करते हैं और धर्म को छोड़ देते हैं, उन्हें परभव में तो कष्ट मिलता ही है, कभी-कभी इस भव में भी मृत्यु तक का कष्ट उठाना पड़ता है।

## नित्य का हत्यारा

अर्जुनमाली ने जिस काम के लिए यक्ष को बुलाया था, वह काम समाप्त हो चुका था, परन्तु फिर भी यक्ष अर्जुनमाली के शरीर में पैठा हुआ राजगृह नगरी के चारों ओर घूमने लगा और नित्य छह पुरुषों और स्त्री की हत्या करने लगा।

श्रेणिक को इस बात की सूचना मिली। उन्होंने सारे नगर में घोषणा करवाई कि 'कोई भी बिना सावधानी रक्खे बार-बार नगर के बाहर जाना-आना नहीं करें।' तथा नगर के बड़े-बड़े द्वार भी बंद करवा दिए। नगर में अर्जुन-माली की इस नित्य हत्या-क्रिया का बहुत भय छा गया। कोई भी नगरी के बाहर जाता नहीं था। यदि कोई बिना इच्छा भी किसी काम आदि के लिए बाहर चला जाता और अर्जुनमाली की आंखों में आ जाता, तो वह मारा जाता था।

इस प्रकार दिन बीतते-बीतते पांच महीने और तेरह दिन हो गये। इतने दिनों में ९७८ पुरुषों ( १६३×६=९७८ ) और १६३ स्त्रियों ( १६३×१=१६३ ) की हत्याएं हुईं। सब हत्याएं ११४१ ( ९७८+१६३=११४१ ) हुईं।

## कुदेव और सुदेव की श्रद्धा का अन्तर

इनमें पहले की सात हत्याएं मुख्य रूप से अर्जुनमाली के कारण हुई तथा पिछली ११३४ हत्याएं मुख्य रूप से मुद्गरपाणि यक्ष के कारण हुई। मुद्गरपाणि यक्ष लौकिक देव था। वह अज्ञानी, अव्रती, मिथ्यात्वी, रागी और द्वेषी था। निर्दोष अरिहंतदेव को छोड़ कर ऐसे सदोष अन्य देव-देवियों की श्रद्धा करने का, भक्ति करने का व पूजा करने का कई बार ऐसा दुष्फल होता है। ये देव वस्तुतः हमारी कोई सहायता नहीं करते। यदि पूर्व में हमारे ही कुछ शुभ पुण्य कर्म कमाये हुए हों, तो ये कुछ सहायता करते हैं। परन्तु दुःख देने वाले मूल कारण जो कर्म हैं, उन्हें ये नष्ट नहीं कर सकते तथा नये आने वाले कर्मों को ये रोक भी नहीं सकते। वरन् कई बार ये नये पापों में डाल कर अधिक पापी बना देते है, जैसा कि अर्जुनमाली के लिए हुआ। यदि अर्जुनमाली मुद्गरपाणि यक्ष की पूजा न करता, तो उसे हत्यारा बनना नहीं पड़ता।

एक अरिहंत ही ऐसे देव हैं—'जिनकी श्रद्धा, भक्ति व पूजा हमारे पुराने कर्मों का क्षय करती है और नये आते हुए पाप-कर्मो को रोकती है।' जब पुराने कर्मों का धीरे-धीरे क्षय हो जाता है और नये पाप-कर्म का बंध नहीं होता, तो आत्मा निर्मल बन जाती है, और उस पर कभी कष्ट नहीं आता। सामान्य मनुष्य तो क्या, देव-शक्ति भी उस पर वार नहीं कर पाती। यही आगे इस दृष्टान्त बतलाया जायगा।

अर्जुनमाली के द्वारा हत्या चलते-चलते जब १६३ दिन हो गये, तब राजगृही में अरिहंतदेव श्री भगवान् महावीर स्वामी का पधारना हुआ। वे गुणशील नामक चैत्य (व्यन्त-रायतन) में विराजे। राजगृह में ये समाचार पहुंचे, परन्तु कोई अरिहंत-दर्शन का साहस नहीं कर सका। सभी अर्जुन-माली के मुद्‌गर से डरते थे। सभी को धर्म से अपने प्राण अधिक प्यारे थे।

## अरिहंत-भक्त 'सुदर्शन'

उसी राजगृह में सेठ 'सुदर्शन' नामक एक अरिहन्त के श्रावक रहते थे। उन्हें प्राण से धर्म अधिक प्यारा था। वे जानते थे कि—'प्राण तो अनन्त बार लुट चुके हैं। प्राणों की रक्षा करते-करते कभी प्राणों की रक्षा नहीं हुई। अन्त में मृत्यु आ ही जाती है। धर्म ही हमारी वस्तुत: रक्षा कर सकता है और मोक्ष पहुँचा कर पूर्ण अमरता दे सकता है।' उन्होंने माता-पिता से हाथ जोड़कर कहा—"माता-पिता! भगवान् महावीर स्वामी अपने नगर के बाहर ही पधार गये हैं। मैं उनके दर्शन करने जाना चाहता हूं।" माता-पिता बोले—"बेटा! तुम्हारी भावना बहुत उत्तम है, हम भी भगवान् का दर्शन करना चाहते हैं, परन्तु बाहर हत्यारा अर्जुनमाली घूमता है। तुम दर्शन के लिए जाते हुए कहीं उससे मारे न जाओ, अत: तुम यही से भगवान् को वंदन-नमस्कार कर लो।"

सुदर्शन ने कहा—'माता-पिता! भगवान् तो अपनी नगरी में पधारें और मैं घर ही बैठा रहूं? यहीं से वन्दन

के शरीर में रहे हुए यक्ष ने उन्हें आते हुए देखा । देखते ही वह क्रुद्ध हुआ और मृद्गर उछालता-घुमाता हुआ उनकी ओर बढ़ा ।

सुदर्शन ने भी अर्जुन को आते देख लिया, परन्तु उनका हृदय दृढ़ था । वे न इधर-उधर भागे, न पीछे मुड़े । जहाँ थे, वहीं खड़े रह गये । नीचे की भूमि का प्रतिलेखन किया ('जीव आदि हैं या नहीं ?' यह देखा) । सिद्धों की और अरिहंतदेव श्री भगवान् महावीर स्वामी की स्तुति की (दो नमोत्थुणं दिये) । फिर अट्ठारह पाप त्याग कर सागारी ('बच जाऊँ, तो खुला हूं' यह आगार सहित) यावज्जीवन (जीवन भर के लिए) अनशन कर लिया ।

## कुदेव की हार

मुद्गरपाणि यक्ष ने सुदर्शन के पास पहुँच कर उन पर मृद्गर-प्रहार करना चाहा, पर उसे अरिहंत-भक्त सुदर्शन श्रावक का तेज सहन नहीं हुआ । तब उसने उनके चारों ओर मुद्गर घुमाते हुए तीन चक्कर लगाये, फिर भी वह सुदर्शन पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सका । तब उसने सुदर्शन को टकटकी लगा कर बहुत देर तक देखा, परन्तु सुदर्शन की आंखों में कोई अन्तर न आया । तब अन्त में वह मुद्गरपाणि यक्ष निराश होकर अर्जुनमाली के शरीर को छोड़ कर चला गया । साथ में अपना मुद्गर भी लेता गया ।

यह हुआ अरिहंतदेव पर श्रद्धा का फल ! जन्म-जन्म

और भव-भव तक अरिहंतदेव पर श्रद्धा रखने के फल में आज सुदर्शन की शक्ति कितनी बढ़ गई? जिसे अर्जुनमाली भगवान् मानता था, आपत्ति से छुड़ाने वाला मानता था, जिसने सैकड़ों की हत्याएं की, वह यक्ष भी अरिहंत-भक्त सुदर्शन श्रावक के सामने हाथ चलाना तो दूर रहा, ठहर भी न सका। उसे अपना मुद्गर लेकर लौट जाना पड़ा।

## सुदर्शन का सुयोग

अर्जुनमाली का शरीर अब तक यक्ष की शक्ति से चलता था। उसकी निजी शक्ति निष्क्रिय थी। अतः यक्ष के चले जाते ही अर्जुनमाली धड़ाम करता हुआ सारे अंगों से नीचे गिर पड़ा।

यह देख कर सुदर्शन ने सोचा कि अब 'उपसर्ग' (संकट) दूर हो गया है।' इसलिए उन्होंने अनशन पार लिया। कुछ समय में अर्जुनमाली स्वस्थ हुआ। उसने खड़े होकर सुदर्शन से पूछा—'तुम कौन हो? कहां जा रहे हो? सुदर्शन बोले—'मैं अरिहंतदेव भगवान् महावीर का श्रावक हूं और उन्हीं के दर्शन के लिए तथा वाणी सुनने के लिए जा रहा हूं।' अर्जुन ने कहा—'मैं भी तुम्हारे साथ भगवान् के दर्शन के लिए चलना चाहता हूं।' सुदर्शन ने कहा—'बहुत सुन्दर विचार है तुम्हारा! चलो, साथ चलो, बहुत प्रसन्नता की बात है। भगवान् के चरणों में पहुंच कर तुम्हारा उद्धार हो जायगा। भगवान् सभी को तारने वाले हैं। वे वीतराग हैं। उन्हें किसी के प्रति राग-द्वेष नहीं होता।'

सुदर्शन ने अर्जुनमाली के प्रति घृणा नहीं की। घृणा की भी क्यों जाय ? कौन ऐसा है, जो किसी भी भव में हत्यारा न रह चुका हो ? फिर अर्जुनमाली तो स्वयं इस भव का हत्यारा भी न था । जो ७ हत्याएं अर्जुनमाली करना चाहता था, वे तो अर्जुनमाली के अपराधी ही थे। अपराधी की हत्या करने वाला हत्यारा नहीं माना जाता। शेष हत्याएं तो मुख्य करके यक्ष के कारण ही हुई थीं। साथ ही अर्जुनमाली के सुधार की संभावना भी थी। जिसकी सुधार की संभावना हो, उसके प्रति घृणा करने से वह सुधरता हुआ रुक जाता है । 'मैं पाप करता हूं, इसलिए ये मुझ पर घृणा करते हैं'—इस प्रकार पापी के हृदय में पाप के प्रति घृणा उत्पन्न करने के लिए कदाचित् पापी पर घृणा की जाय. तो वह कार्य किसी अपेक्षा उचित भी है, परन्तु जो सुधर ही रहा हो, उस पर घृणा करना तो व्यर्थ ही है। यह बात सुदर्शन भली-भांति जानते थे। इसलिए उन्होंने अर्जुनमाली से घृणा नहीं की, वे प्रेम से अर्जुनमाली को साथ में लिए भगवान् महावीर स्वामी के चरणों में पहुंचे ।

## दीक्षा : जीवन-परिवर्तन

भगवान् महावीर स्वामी केवल-ज्ञानी थे, घट-घट के अन्तर्यामी थे। उन्होंने अर्जुनमाली के उद्धार के योग्य ही हिंसा-अहिंसा, बन्ध-निर्जरा आदि पर मार्मिक उपदेश सुनाया । सुन कर अर्जुनमाली को अपने पापों पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसे वैराग्य आ गया । उसने भगवान् से प्रार्थना की कि 'भगवन् ! आप मुझे दीक्षा दें । मुझे पापों से उबारें।' भगवान् ने उसे दीक्षा दे दी ।

## आदर्श क्षमा

अब अर्जुनमाली अर्जुन अनगार ( मुनि ) बन गये। उन्हें अपने बन्धे हुए कर्मों को क्षय कर डालने की बहुत लगन लगी। उन्होंने इसके लिए दीक्षा के ही दिन भगवान् से अभिग्रह लिया कि—'भगवन्! मैं आजीवन बेले-बेले पारणा करूंगा।' भगवान् की आज्ञा पाकर वे अभिग्रह के अनुसार बेले-बेले पारणा करने भी लग गये।

अर्जुनमुनि गोचरी लेने स्वयं नगर में जाते। कुछ नासमझ लोग मुनि बन जाने के बाद भी उनसे घृणा करते। कोई कहता 'अरे! इस हत्यारे ने मेरे बाप को मार डाला!' कोई चिल्लाती—'अरे! इस निर्दय ने मेरी मां मार डाली!' इस प्रकार पृथक्-पृथक् लोग भाई, बहन, बेटी, बहू आदि के विषय में कहते। कोई उन्हें अपशब्द कहता ( गाली भी देता )। कोई उन पर थूक भी देता। कोई उन पर कंकर-पत्थर आदि भी फेंक देता। कोई मार्ग में चलते उन्हें मार भी देता था। परन्तु अर्जुनमुनि आंख उठा कर भी उन्हें नहीं देखते थे, मन में भी उनके प्रति द्वेष नहीं लाते थे। जो-कुछ होता, सब सह लेते थे।

कहीं उन्हें कुछ रोटी का भाग मिल जाता, तो पानी नहीं मिलता। कहीं किसी घर कुछ पानी मिल जाता, तो आहार नहीं मिलता। परन्तु वे उदास नहीं होते थे। वे सोचते—'मुझ पर पहले यक्ष चढ़ा था, इसलिए घोर हत्यारा बन कर मैंने बहुत पाप किये। इन पर अज्ञान का भूत चढ़ा है, इसलिए ये ऐसा करते हैं। जब अपना आपा नहीं

रहता, तब ऐसा ही हुआ करता है। इसलिये मुझे खेद नहीं होना चाहिए। मुझे तो मेरा अपना पाप देखना चाहिए। मैं ११४१ स्त्री-पुरुषों की हत्या का निमित्त बना। यदि मैं मिथ्यादेव की श्रद्धा-भक्ति-पूजा न करता, तो इतनी हत्याएँ क्यों होतीं? इत्यादि विचारों के साथ मुझे समता रखनी चाहिये। इससे मेरे कर्मों की निर्जरा होगी।'

## मोक्ष

इस प्रकार निर्जरा की भावना करते हुए और उन उपसर्गों को सहन करते हुए अर्जुनमुनि जी को साढ़े पांच महीने हो गये। उन्होंने जितने दिनों में पाप कमाये, प्रायः उतने ही दिनों में उनकी निर्जरा भी कर डाली। जब उनका शरीर थक गया, तो उन्होंने भगवान् की अनुमति लेकर संथारा कर लिया। संथारा १५ दिन चला। अन्तिम श्वासोच्छवासों में उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, आठों कर्म क्षय हुए। अन्तिम समय में काल करके अर्जुनमुनि मोक्ष पधार गये।

कहां सदोषी सरागी मुद्गरपाणि यक्ष! जिसने स्वयं व्यर्थ ११३४ हत्याएं कीं और निष्पाप अर्जुन को भी पापी बनाया और कहां निर्दोष वीतराग अरिहंतदेव! जिनके उपदेश ने पापी अर्जुन को पाप से उबारा।

धन्य हैं, ऐसे अरिहंतदेव भगवान् महावीर! धन्य हैं, ऐसे अरिहंत-उपदेशानुसार चलने वाले अर्जुनमुनि!! और धन्य है, ऐसे अरिहंत पर श्रद्धा रखने वाले सुदर्शन श्रावक!!!

॥ इति ५. श्री अर्जुनमाली (अनगार) की कथा समाप्त ॥

— श्री अन्तकृत सूत्र, वर्ग ६, अध्ययन ३ के आधार से।

## शिक्षाएं

१. सच्चे भगवान् (देव) अरिहंत ही हैं ।

२. अरिहंत के भक्त को किसी से भय नहीं ।

३. घृणा मत करो, उद्धार में सहायक बनो ।

४. पश्चात्ताप और तप से पापी भी मोक्ष पाते हैं ।

५. अधर्मी और धर्म-त्यागी इस लोक में भी दुःख पाता है ।

## प्रश्न

१. कुदेव-श्रद्धा और सुदेव-श्रद्धा के फल में अन्तर बताओ ।

२. कुदेव-श्रद्धा से अर्जुनमाली का पतन कैसे हुआ ?

३. सुदेव-श्रद्धा से सुदर्शन की रक्षा और अर्जुनमाली का उत्थान कैसे हुआ ?

४. सिद्ध करो कि 'अर्जुनमाली आदर्श क्षमावान थे ।'

५. पापी से घृणा करें या नहीं ?

# ६. श्री कामदेव श्रावक

## परिचय

चम्पानगरी में 'कामदेव' नामक बहुत प्रतिष्ठित सर्वमान्य सेठ रहते थे। उनकी 'भद्रा' नामक सुरूपा भार्या (पत्नी) थी। उनके कई छोटे-बड़े सुयोग्य पुत्र भी थे। पत्नी और पुत्र सभी कामदेव के अनुकूल थे। कामदेव के पास १८ करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं का धन था। उनमें से छह करोड़ कोष में, ६ करोड़ वृद्धि (व्याज, व्यापार) में तथा ६ करोड़ स्वर्ण-मुद्राएं घर-विस्तार में लगीं थी। कामदेव के छह गोकुल थे। प्रति गोकुल में १०,००० दस सहस्र पशु थे।

इस प्रकार कामदेव गृहस्थ परिवार, सम्पत्ति, सुख, प्रतिष्ठा, मान्यता आदि सब से संपन्न थे।

## धर्म-ग्रहण

एक बार भगवान् महावीर स्वामी उस नगरी के बाहर पूर्णभद्र नामक चैत्य (व्यन्तरायतन) में पधारे। ये समाचार पाकर कामदेव गृहस्थ भगवान् के दर्शन करने तथा वाणी सुनने गये। भगवान् की वाणी सुन कर उनकी जैन-धर्म पर श्रद्धा हुई। उन्हें लगा कि 'परिवार, धन, प्रतिष्ठा आदि की यह मेरी सारी सम्पन्नता वास्तविक सुख-दायी नहीं है, न यह परभव में साथ ही चलेगी। विश्व में प्राणी के लिए केवल एक धर्म ही सच्चा सुखदायी है और

भव-भव का साथी है । इसलिए मुझे संसार त्याग करके दीक्षा ग्रहण करना उचित है। परन्तु अभी मुझ में वैसी तीव्र भावना नहीं है, अतः दीक्षा नहीं तो मुझे श्रावत-व्रत तो ग्रहण करना ही चाहिए ।' यह सोच कर उन्होंने भगवान् से सम्यक्त्व और श्रावक के १२ व्रत अंगीकार किये। पीछे नवतत्त्व की जानकारी आदि करके वे २१ गुण-सम्पन्न श्रेष्ठ श्रावक बन गये । यहां तक कि 'भगवान् के श्रावकों में वे नामांकित मुख्य श्रावकों में गिने जाने लगे ।'

चौदह वर्ष तक उन्होंने गृहस्थ व्यवहार चलाते हुए श्रावकत्व का पालन किया । फिर उन्हें लगा कि 'गृहस्थी के झंझटों से धर्म-चिन्तन और धर्म-करणी में बहुत बाधा पड़ती है ।' तब उन्होंने गृहस्थी का सारा भार अपने बड़े पुत्र पर डाल कर निवृत्ति ले ली । वे अपनी पौषधशाला में ही जाकर रहने लगे । वहीं वे पौषध आदि धर्म-ध्यान करते और जातीय कुलों से भिक्षा मांग कर अपना काम चलाते थे ।

## पिशाच का पहला उपसर्ग

एक बार की बात है । उन्होंने पौषध किया था । दिन तो बीत गया, परन्तु जब आधी रात का समय हुआ, तब उनकी पौषधशाला के बाहर एक 'मिथ्यादृष्टि देव' आया । उसने भयंकर पिशाच का रूप बनाया । टोकरे-सा सिर, बाहर निकली हुई लाल-लाल आंखें, सूपड़े-से कान, भेड़ का सा नाक, घोड़े की पूंछ-सी मूंछे, ऊँट के जैसे लम्बे-लम्बे होठ, फावड़े से दांत, लपलपाती जीभ— इस

# ६. श्री कामदेव श्रावक

## परिचय

चम्पानगरी में 'कामदेव' नामक बहुत प्रतिष्ठित सर्वमान्य सेठ रहते थे। उनकी 'भद्रा' नामक सुरूपा भार्या (पत्नी) थी। उनके कई छोटे-बड़े सुयोग्य पुत्र भी थे। पत्नी और पुत्र सभी कामदेव के अनुकूल थे। कामदेव के पास १८ करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं का धन था। उनमें से छह करोड़ कोष में, ६ करोड़ वृद्धि (व्याज, व्यापार) में तथा ६ करोड़ स्वर्ण-मुद्राएं घर-विस्तार में लगीं थीं। कामदेव के छह गोकुल थे। प्रति गोकुल में १०,००० दस सहस्र पशु थे।

इस प्रकार कामदेव गृहस्थ परिवार, सम्पत्ति, सुख, प्रतिष्ठा, मान्यता आदि सब से संपन्न थे।

## धर्म-ग्रहण

एक बार भगवान् महावीर स्वामी उस नगरी के वाहर पूर्णभद्र नामक चैत्य (व्यन्तरायतन) में पधारे। ये समाचार पाकर कामदेव गृहस्थ भगवान् के दर्शन करने तथा वाणी सुनने गये। भगवान् की वाणी सुन कर उनको जैन-धर्म पर श्रद्धा हुई। उन्हें लगा कि 'परिवार, धन, प्रतिष्ठा आदि की यह मेरी सारी सम्पन्नता वास्तविक सुख-दायी नहीं है, न यह परभव में साथ ही चलेगी। विश्व में प्राणी के लिए केवल एक धर्म ही सच्चा सुखदायी है और

पौषधशाला से बाहर निकला । इस दूसरी बार में उसने अपना पर्वत-सा लम्बा-चौड़ा, तीखे-तीखे दांत वाला, लम्बी-सी सूंडवाला, मेघ-सा काला और मदमाते भयंकर हाथी का रूप बनाया तथा पौषधशाला में आकर कहा—' अरे ! कामदेव ! मृत्यु के चाहने वाले !—इत्यादि । यदि तू धर्म से नहीं डिगता, व्रतों को नहीं छोड़ता, तो मैं अभी तुझे सूंड से पकड़ कर पौषधशाला से बाहर ले जाऊँगा । वहां तुझे आकाश में उछाल कर फिर तीखे दांतों पर झेलूंगा । फिर भूमि पर डाल कर पैरों तले तीन बार रौदूंगा, जिससे तू अकाल में ही बहुत दुःख पाता हुआ मर जायगा ।'

कामदेव, हाथी के इन वचनों को सुन कर भी न डरे, वरन् पहले के समान ही निर्भय, निश्चल चुपचाप धर्म-ध्यान करते रहे । यह देख कर उस हाथीरूप-धारी देव ने कामदेव को अपनी उपर्युक्त बात दूसरी और तीसरी बार भी कही । परन्तु कामदेव के तन-मन में कोई अन्तर नहीं आया । तब देव ने क्रुद्ध होकर सचमुच ही कामदेव को सूंड से पकड़ कर पौषधशाला से बाहर निकाला, आकाश में उछाला, तीखे-तीखे दांतों पर झेला और भूमि पर डाल कर तीन बार पैरों से बहुत रौंदा । उससे भी कामदेव को बहुत कष्ट पहुँचा । फिर भी कामदेव उस कठिन वेदना को बहुत शान्ति से ही सहन करते रहे ।

## सर्प का तीसरा उपसर्ग

यह देख कर उस देव को बहुत निराशा हुई । उसका दूसरा उपसर्ग भी कामदेव को डिगा नहीं सका । तब वह

प्रकार पिशाच का रूप बहुत ही विकृत था। ताड़-सा लंबा, कपाट-सा चौड़ा, कांख में सर्प लपेटे, वह पिशाच हाथ में चमचमाता नीला खड्ग (तलवार) लेकर भयानक शब्द करता हुआ पौषधशाला में कामदेव के पास आया और बोला—'अरे! कामदेव! मृत्यु के चाहने वाले! कुलक्षण! अशुभ दिन के जन्मे! लज्जादि रहित! धर्म-मोक्ष के चाहने वाले! धर्म-मोक्ष के प्यासे! तुझे पौषध आदि व्रत से डिगना उचित नहीं। परन्तु आज यदि तू धर्म से नहीं डिगता है, उसे नहीं छोड़ता है, तो मै आज इस खड्ग से तेरे खण्ड-खण्ड कर दूंगा, जिससे तू अकाल में ही बहुत दुःख पाता हुआ मर जायगा।'

पिशाच-रूपी देव के ऐसा कहने पर कामदेव भयभीत नहीं हुए, क्षुब्ध नहीं हुए, भागे भी नहीं, परन्तु उपसर्ग समझ कर सागारी संथारा (अनशन) ग्रहण कर लिया और चुपचाप धर्म-ध्यान करते रहे। ऐसा देख कर उस देव ने कामदेव को अपनी उपर्युक्त बात दूसरी और तीसरी बार भी कही, परन्तु कामदेव के तन-मन में कोई अन्तर नहीं आया। तब देव ने क्रुद्ध होकर, भौंहें चढ़ा कर सच-मुच ही खड्ग से कामदेव के खण्ड-खण्ड कर दिये। उससे कामदेव को बहुत कष्ट पहुँचा। सुख का लेश भी नहीं रहा। ऐसी उस वेदना को सहन करना बहुत कठिन था, फिर भी कामदेव बहुत ही शान्ति से उस वेदना को सहन करते रहे।

## हाथी का दूसरा उपसर्ग

यह देख कर उस देव को कुछ निराशा हुई। वह

पौषधशाला से बाहर निकला। इस दूसरी बार में उसने अपना पर्वत-सा लम्बा-चौड़ा, तीखे-तीखे दांत वाला, लम्बी-सी सूंडवाला, मेघ-सा काला और मदमाते भयंकर हाथी का रूप बनाया तथा पौषधशाला में आकर कहा—'अरे! कामदेव! मृत्यु के चाहने वाले!—इत्यादि। यदि तू धर्म से नहीं डिगता, व्रतों को नहीं छोड़ता, तो मैं अभी तुझे सूंड से पकड़ कर पौषधशाला से बाहर ले जाऊँगा। वहां तुझे आकाश में उछाल कर फिर तीखे दांतों पर झेलूंगा। फिर भूमि पर डाल कर पैरों तले तीन बार रौंदूंगा, जिससे तू अकाल में ही बहुत दुःख पाता हुआ मर जायगा।'

कामदेव, हाथी के इन वचनों को सुन कर भी न डरे, वरन् पहले के समान ही निर्भय, निश्चल चुपचाप धर्म-ध्यान करते रहे। यह देख कर उस हाथीरूप-धारी देव ने कामदेव को अपनी उपर्युक्त बात दूसरी और तीसरी बार भी कही। परन्तु कामदेव के तन-मन में कोई अन्तर नहीं आया। तब देव ने क्रुद्ध होकर सचमुच ही कामदेव को सूंड से पकड़ कर पौषधशाला से बाहर निकाला, आकाश में उछाला, तीखे-तीखे दांतों पर झेला और भूमि पर डाल कर तीन बार पैरों से बहुत रौंदा। उससे भी कामदेव को बहुत कष्ट पहुँचा। फिर भी कामदेव उस कठिन वेदना को बहुत शान्ति से ही सहन करते रहे।

## सर्प का तीसरा उपसर्ग

यह देख कर उस देव को बहुत निराशा हुई। उसका दूसरा उपसर्ग भी कामदेव को डिगा नहीं सका। तब वह

पौषधशाला से बाहर निकला । तीसरी बार उसने मसी (स्याही) सा काला, चोटी-सा लम्बा, लपलपाती दो जीभ वाला, लोही-सी आंखों वाला, बहुत बड़े फण वाला, आंखों में भी विष वाला, महा-फूंकार करता, भयंकर सर्प का रूप बनाया और पौषधशाला में आकर कहा—'अरे! कामदेव! मृत्यु को चाहने वाले !— इत्यादि । यदि तू धर्म से नहीं डिगता, व्रतो को नहीं छोड़ता, तो मैं अभी सर-सर करता तेरी काया पर चढ़ जाऊँगा । पिछली ओर से फांसी के समान तीन बार तेरी ग्रीवा (गले) को लपेटूंगा । फिर विष वाली तीखी दाढ़ों से तेरे हृदय पर ही कई दश दूंगा। जिससे तूं अकाल में ही बहुत दुःख पाता हुआ मर जायगा।

कामदेव सर्प के इन वचनों को सुन कर भी पहले के समान ही निर्भय और निश्चल हो चुपचाप धर्म-ध्यान करते रहे। यह देख कर उस सर्प-रूपधारी देव ने अपनी उपर्युक्त बात दूसरी और तीसरी बार भी कही, परन्तु कामदेव के तन-मन में कोई अन्तर नही आया। तब देव क्रुद्ध होकर सचमुच ही सर-सर करता कामदेव की काया पर चढ़ा। पिछली ओर से फांसी के समान ग्रीवा को तीन बार लपेटा, फिर विप वाली तीखी दाढ़ों से हृदय पर कई दंश दिये। उससे भी कामदेव को बहुत कष्ट पहुँचा, फिर भी कामदेय उस कठिन वेदना को बहुत शान्ति से ही सहन करते रहे ।

यह देख कर देव पूरा निराश हो गया। वह पिशाच, हाथी और सर्प के तीन-तीन बड़े-बड़े उपसर्ग करके भी

कामदेव को धर्म और व्रत से डिगा नहीं सका । तब वह पोषधशाला से बाहर निकला । इस बार उस देव ने अपना वास्तविक देव का ही रूप बनाया । चमकता सुनहरा शरीर, उज्ज्वल बहुमूल्य वस्त्र, भांति-भांति के उत्कृष्ट कोटि के हार आदि आभूषणयुक्त तथा दसों दिशाओं को प्रकाशित करने वाला दिव्य वह देव-रूप था । फिर उसने पोषधशाला में आकर कहा—

## देव-प्रशंसा

'हे कामदेव ! श्रमणोपासक ! (साधु की उपासना करने वाले !) तुम धन्य हो । तुम बड़े पुण्यवान हो, तुम कृतार्थ हो, तुम सुलक्षण हो, तुम्हारा जन्म और जीवन सफल है, क्योंकि तुम्हारी निर्ग्रन्थ प्रवचन ( जैनधर्म ) में ऐसी दृढ़ श्रद्धा है कि देवता भी तुम्हें डिगा नहीं सकते ।

'हे देवानुप्रिय ! (यह आर्य सम्बोधन है) पहले देवलोक के इन्द्र ने अपनी लम्बी-चौड़ी सभा के बीच तुम्हारी प्रशंसा करते हुए कहा था कि कामदेव श्रमणोपासक निर्ग्रन्थ प्रवचन में इतने दृढ़ हैं कि उन्हें देव-दानव कोई भी धर्म से डिगा नहीं सकता ।' परन्तु मुझे उस बात पर विश्वास नहीं हुआ । इसलिए मैं तुम्हारी धर्म-दृढ़ता की परीक्षा लेने के लिये यहां आया था' । तीन बड़े-बड़े उपसर्ग देकर अब मैंने आज प्रत्यक्ष ही देख लिया है कि आपकी निर्ग्रन्थ प्रवचन ( जैनधर्म ) में अचल श्रद्धा है । हे देवानुप्रिय ! मैंने जो आपको उपसर्ग दिये, उसके लिये मैं आपसे बार-बार क्षमा चाहता हूँ । आप क्षमा करें । आप क्षमा करने योग्य हैं ।

अब मैं पुनः इस प्रकार कभी आपको उपसर्ग नहीं दूंगा।'

इस प्रकार उस देव ने कामदेव की स्वयं प्रशसा की और उन्हें इन्द्र द्वारा की गई प्रशंसा सुनाई। उनको अपने यहां आने का और उपसर्ग देने का कारण बताया तथा उनको उपसर्ग में भी धर्म-दृढ़ रहने वाला बता कर उनके पैरों में पड़ कर उनसे बार-बार क्षमा-याचना की। फिर वह देवता जहां से आया था, उधर ही चला गया।

## समवसरण में

कामदेव ने अपने को निरुपसर्ग ( उपसर्ग रहित ) जान कर अपना सागारी संथारा पार लिया। दिन उगने पर उन्होंने अपनी नगरी में भगवान् को पधारे हुए जाना। इसलिए वे पौषध पालने के पहले ही भगवान् के दर्शन करने तथा वाणी सुनने के लिए गये।

भगवान् ने सबको पहले धर्म-कथा सुनाई। फिर धर्म-कथा समाप्त होने पर सबके सामने कामदेव से कहा— 'क्यों कामदेव! क्या इस पिछली रात को तुम्हें देवता के द्वारा पिशाच, हाथी और सर्प-रूप से तीन-तीन बार भयंकर उपसर्ग हुए? इत्यादि। देवता के आने से लेकर चले जाने तक का बीतक वृत्तान्त सुना कर भगवान् ने कहा— 'कामदेव! क्या यह सच है?' कामदेव ने कहा— 'हां, सच है।'

## साधु-साध्वियों को शिक्षा

कामदेव के द्वारा हां भरने पर भगवान् ने बहुत-से

पहले देवलोक में देव-रूप से उत्पन्न हुए। वहां से वे मनुष्य बन कर तथा दीक्षा लेकर सिद्ध बनेंगे।

॥ इति ६. श्री कामदेव की कथा समाप्त ॥

## शिक्षाएं

१. साधु नहीं तो श्रावक तो अवश्य बनो।

२. स्वयं गृहस्थी चलाते हुए धर्म अधिक नहीं हो सकता।

३. देवादि उपसर्ग आने पर भी धर्म में दृढ़ रहो।

४. धर्म में दृढ़ रहने वाले की देव, इन्द्र व भगवान् भी प्रशंसा करते हैं।

५. छोटे के उदाहरण से भी शिक्षा लेनी चाहिए।

## प्रश्न

१. कामदेव की लौकिक सम्पन्नता का परिचय दो।

२. कामदेव को आये हुए उपसर्गों का वर्णन करो।

३. कामदेव को उपसर्ग देने देव क्यों आया ?

४. उपसर्ग समाप्ति के पश्चात् क्या-क्या हुआ ?

५. कामदेव के कथानक से आपको क्या शिक्षाएं [illegible] हैं ?

# ७. श्री सुलसा श्राविका

## परिचय

'राजगृह' में 'नाग' नामक सारथी रहता था। उसकी पत्नी का नाम था 'सुलसा'। वह श्राविका थी। भगवान् महावीर स्वामी की ३ तीन लाख १८ अट्ठारह हजार श्राविकाओं में उसका नाम पहला था, क्योंकि वह सम्यक्त्व में दृढ़ थी तथा उसमें दान आदि कई विशिष्ट गुण थे।

## पुत्र के अभाव में

सुलसा को कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था परन्तु उसने इसका कोई विचार नहीं किया। प्रायः स्त्रियां पुत्र न होने पर देव-देवियों की शरण लेती हैं, उनकी मनोती करती हैं, मंत्र-तंत्र करवाती है। परन्तु उसने देव-देवी की शरण लेने का या मंत्र-तंत्र करने का मन में विचार भी नहीं किया। उसकी यह दृढ़ता थी कि—'पुत्र चाहे हो, चाहे न हो, परन्तु मैं अरिहंतदेव के अतिरिक्त अन्य किसी देव को मस्तक नहीं झुकाऊँगी। नमस्कार-मंत्र के अतिरिक्त दूसरा मंत्र कभी स्मरण नहीं करूँगी।'

सुलसा के पति नाग को पुत्र की बहुत अभिलाषा थी। उसने पुत्र-प्राप्ति के लिए अन्य देव-देवियों को पूजना आरंभ किया व अन्य मंत्र-तंत्रों का स्मरण चालू किया।

## सुलसा-नाग की चर्चा

जब सुलसा को यह जानकारी हुई, तो उसने अपने

पति को समझाया—'पतिदेव ! इन देव-दवियों की पू
छोड़ो। मंत्र-तंत्र का स्मरण छोड़ो। हमें एक-मात्र अरिहं
देव और नमस्कार-मंत्र पर ही श्रद्धा रखनी चाहिए
अरिहंत को ही झुकना चाहिए । नमस्कार-मंत्र का
स्मरण करना चाहिए । अन्य देव-देवियों और अन्य मंत्र
तंत्रों पर श्रद्धा रखना मिथ्यात्व है।'

नाग ने कहा—'सुलसे ! मैं अरिहंतदेव और नमस्कार
मंत्र पर ही श्रद्धा रखता हूं । मुझे अन्य देव-देवियों औ
अन्य मंत्रों पर श्रद्धा नहीं है । मैं उन्हें ससार-तारक य
मोक्ष देने वाला नहीं मानता। परन्तु ये लौकिक देव औ
लौकिक मंत्र हैं । पुत्र की आशा लौकिक आशा है । ये
लौकिक आशा पूर्ण करने में सहायता दे सकते है, इसलि
मैं इन्हें पूजता हूँ और स्मरण करता हूँ।'

सुलसा ने कहा—'स्वामी ! यदि अन्य देवों और मंत्रों
पर हमारी श्रद्धा नहीं है, तो हमारे हृदय में भले ही सम्यक्त्व
रहे परन्तु उन्हें पूजने और उनके स्मरण करने की प्रवृत्ति तो
मिथ्यात्व की ही है। हमें मिथ्यात्व की प्रवृत्ति से भी बचना
ही अच्छा है ।

दूसरी बात यह है कि यदि पूर्व-जन्म में हमने पुण्य
नहीं कमाये हैं, तो ये अन्य देव-देवियां और मंत्र-तंत्र हमें
कुछ भी नहीं दे सकते । हमारी कुछ भी सहायता नहीं
कर सकते।'

नाग ने कहा—'सुलसे ! तुम्हारा कहना सत्य है ।
परन्तु मान लो कि हमने पूर्व-जन्म में कुछ पुण्य कमाये हों

और वे अभी उदय में न आये हों तथा पाप ही उदय में आये हों, तब तो ये देवता और मंत्र हमारी सहायता कर सकते हैं क्योंकि वे वर्तमान पाप को दबा सकते हैं और दबे हुए पुण्य को खींच कर शीघ्र बाहर ला सकते हैं। यह भी हो सकता है कि हमें पुत्र-प्राप्ति का पुण्य उदय में आने वाला हो और उसके लिए देव-देवी या मंत्र-तंत्र के निमित्त की भी आवश्यकता हो। यह सोच कर भी मैं अन्य देवों को नमस्कार करता हूँ और अन्य मंत्रों का स्मरण करता हूँ। पुत्र होने से तुम पर चढ़ा हुआ बांझ का कलंक भी धुल जायगा।'

सुलसा ने कहा—'नाथ ! आपका यह कहना असत्य नहीं है, परन्तु मैं इसके लिए मिथ्यात्व की प्रवृत्ति अपनाना नहीं चाहती। यदि मान लो कि पूर्व में हमारे कमाये हुए पुण्य नहीं हैं, तो दोनों ओर हमारी हानि ही है। पुत्र की प्राप्ति भी नहीं होगी और मिथ्यात्व-प्रवृत्ति का पाप भी पल्ले बंध जायगा।

यदि आपको पुत्र की ही अधिक अभिलाषा हो तो आप अन्य स्त्री से लग्न कर लीजिए, परन्तु मिथ्यात्व की प्रवृत्ति का सेवन मत कीजिए। लोग जो मुझे बाँझ कहते हैं इसका आप कोई विचार मत कीजिए। जो सम्यक्त्व-दृढ़ता का महत्व जानते हैं, वे तो हमारी प्रशंसा ही करेंगे, निन्दा नहीं करेंगे तथा जो सम्यक्त्व-दृढ़ता का महत्व नहीं जानते, उनकी बात हमें सुनना ही क्यों चाहिए ?'

नाग ने कहा—'सुलसे ! मैं तुम्हारा कहा मान कर

मिथ्यात्व की प्रवृत्ति छोड़ देता हूं, परन्तु मैं तुम्हारे
सौत लाऊँ—यह कभी नहीं हो सकता। मैं पुत्र चाहता
परन्तु तुम्हारी कूंख से उत्पन्न पुत्र चाहता हूं। मेरा तुम्
पर प्रेम है। मैं तुम्हें अपने जीवन से भिन्न नहीं कर सकता

सुलसा ने कहा—'धन्य हैं, आर्यपुत्र! आपने मिथ्यात्व प्रवृत्ति छोड़ने का अच्छा निश्चय किया। धर्म पर दृढ़ रहने से अशुभ कर्मों का क्षय होता है, वे शुभकर्म के रूप में बदलते हैं और नये पुण्यों की महान् वृद्धि होती है। कभी शीघ्र, तो कभी विलम्ब से अनिष्ट का विनाश होता है और इष्ट-प्राप्ति होती है। कई बार देवता तक आकर हाथ जोड़ कर प्रार्थना करते हैं कि 'धन्य हैं, आप! मुझे कुछ सेवा का अवसर दीजिए!' ऐसे अवसर पर उनसे सहायता मांगी जा सकती है। इससे पूजा आदि को पाप भी नहीं लगता और कार्य-पूर्ति भी हो जाती है।' नाग ने इस कथन को सहर्ष स्वीकार किया।

धन्य है, सुलसा! जिसने बांझ रहना स्वीकार किया, अपने ऊपर सौत का आना स्वीकार किया, परन्तु मिथ्यात्व की प्रवृत्ति करना स्वीकार नहीं किया। स्वयं ने मिथ्यात्व त्यागा और पति को भी मिथ्यात्व से दूर हटाया।

## शक्रेन्द्र द्वारा प्रशंसा

सुलसा की इस दृढ़ता और तत्त्वज्ञान की देवलोक में भी प्रशंसा हुई। शक्र नामक पहले देवलोक के इन्द्र ने देवताओं की भरी सभा के बीच कहा—'राजगृह नगर के

नाग सारथी की पत्नी सुलसा श्राविका धन्य है ! क्योंकि उसका सम्यक्त्व बहुत ही दृढ़ है। कोई देव-दानव भी उसे सम्यक्त्व से नहीं डिगा सकता ।

वह अरिहंतदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और केवली-प्ररूपित धर्म में इतनी दृढ़ है कि वह संसार का सुख छोड़ देती है, परंतु मिथ्यात्व की प्रवृत्ति कभी नहीं अपनाती ।

अरिहंत को ही देव, निर्ग्रन्थ को ही गुरु तथा केवली-प्ररूपित तत्त्व को ही धर्म मानते हुए यदि उसे कितनी भी हानि पहुंचे, कितना भी कष्ट पहुँचे, फिर भी वह श्रद्धा से नहीं डिगती। उसके मन में थोड़ी भी चंचलता नहीं आती।

ऐसी सुलसा श्राविका को वारम्वार नमस्कार है ।

## देव द्वारा परीक्षा

एक मिथ्यादृष्टि देव को यह वात सहन नहीं हुई । वह सुलसा की परीक्षा के लिए साधु का रूप वना कर सुलसा के घर पहुंचा । सुलसा नें उसको साधु समझ कर वंदन-नमस्कार करके पूछा—' भन्ते ! इस समय आपका मेरे यहां कैसे पधारना हुआ ?' देव ने कहा—' श्राविके ! मेरे वृद्ध गुरुदेव के शरी में वहुत पीड़ा है । उनकी औषधि के लिए वैद्यों ने मुझे लक्षपाक तैल वतलाया है । इसलिए मुझे उस तैल की आवश्यकता है । यदि वह तुम्हारे घर शुद्ध ( सूझता ) हो, तो वहराओ ।' सुलसा ने कहा-'भन्ते ! अवश्य कृपा कीजिए । आज का दिन धन्य है कि मेरे पदार्थ सन्तों की सेवा में काम आयेंगे ।'

यह कह कर वह लक्षपाक तैल लेने गई। लक्षपाक तैल लाख वस्तुएं, लाख बार तपाने पर बनता है। उसके बनने में लाख रुपये व्यय होते हैं। लक्षपाक तैल की उसके घर में तीन शीशियां थीं। वे जहां थीं. वहां पहुँच कर वह पहली शीशी उतारने लगी कि शीशी फिसल कर नीचे गिर गई और फूट गई। दूसरी और तीसरी शीशी की भी यही स्थिति हुई। तीसरी बार में उसके पैर में कांच का टुकड़ा भी चुभ गया।

इस प्रकार उसके लाखों रुपये मिट्टी में मिल गये। शीशी के कांच का टुकड़ा पैर में लग गया, सो अलग। परन्तु उसके मन में इन दोनों बातों का कोई खेद नहीं हुआ। उसे यह विचार ही नहीं आया कि 'ये कैसे साधु हैं, जिन्हें दान देते हुए मेरे मूल्यवान पदार्थ नष्ट हों। यह कैसा दान-धर्म है, जिसे करते हुए शरीर में पीडा हो ?' वरन् उसे इस बात का खेद हुआ कि—'मेरी ये वस्तुएं सन्तों के काम नहीं आ सकीं। मेरे हाथों से दान नहीं हो सका। सन्त मेरे यहां कष्ट करके पधारे, परन्तु उन्हें आवश्यक वस्तु नहीं मिल सकी। जो इनके वृद्ध गुरु सन्त है, उनकी पीड़ा कैसे दूर होगी ? आह ! वे मुनिराज कितना कष्ट पाते होंगे ? मुझ अभागिन ने ध्यानपूर्वक शीशियां नहीं उतारीं। ऐसे समय में मुझ से सावधानी क्यों नहीं रही ? धिक्कार है मुझे !' यह सोचते-सोचते उसका मुंह कुम्हला गया। आंखें डबडबा आईं।

देवता यह सारा दृश्य देख रहा था। अवधि (अज्ञान) से सुलसा के मन के विचार को भी देख रहा था। उसे

प्रत्यक्ष हो गया कि शक्रेन्द्र जो कह रहे थे, वह सर्वथा सत्य था। सचमुच यह सम्यक्त्व में बहुत दृढ़ है। देवता ने सुलसा के सामने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया और सुलसा से कहा—'श्राविके! खेद न करो, यह तो मेरी देव-विकुर्व्वणा (देवमाया) थी जो मैंने तुम्हारी सम्यक्त्व-दृढ़ता की परीक्षा के लिए की थी। धन्य है तुम्हें कि 'तुम ऐसी दृढ़ हो, जिस कारण इन्द्र भी तुम्हारी प्रशंसा करते हैं।'

## पुत्र-प्राप्ति

'सुलसे! मैं तुम पर प्रसन्न हुआ। मांगो, जो तुम्हारी इच्छा हो, वही मांगो। मैं उसकी पूर्ति करूँगा।' सुलसा ने कहा—'देव! मेरी तो यही इच्छा है कि मेरी सम्यक्त्व पर दृढ़ता बनी रहे। मेरा सम्यक्त्व-रत्न सुरक्षित रहे। परन्तु यदि आप कुछ देना चाहते हैं तो मेरे पति को पुत्र की अभिलाषा है, वह आप पूरी करें।'

देवता ने उसे पुत्र-उत्पत्ति सहायक ३२ गोलियां दीं और समय पड़ने पर 'मुझे स्मरण करना'— यह कह कर वह देवलोक में लौट गया। समय से सुलसा को इच्छित पुत्र उत्पन्न हुए।

## भगवान् द्वारा प्रशंसा

'चम्पानगरी' की बात है। भगवान् महावीर स्वामी वहां विराज रहे थे। वहां 'अम्बड़' नामक एक श्रावक आया। वह विद्याधर (विद्याओं का जानकार) था। उसने

भगवान् महावीर स्वामी की वाणी सुन कर उन्हें वन्दन-नमस्कार करके कहा—'भन्ते! आपके उपदेश सुन कर मेरा जन्म सफल हो गया। अब मैं राजगृह जा रहा हूं।'

भगवान् ने कहा—'अम्बड़! तुम जिस नगरी में जा रहे हो, वहां सुलसा श्राविका रहती है। वह सम्यक्त्व में बहुत दृढ़ है।'

## अम्बड़ विद्याधर द्वारा परीक्षा

अम्बड़ ने सोचा—'भगवान् जो कुछ कह रहे हैं, वह सत्य ही है, क्योंकि वीतराग भगवान् किसी की असत्य प्रशंसा नहीं करते। किन्तु मैं परीक्षा करके प्रत्यक्ष देखूं तो सही कि 'वह सम्यक्त्व में किस प्रकार दृढ़ है?'

राजगृह पहुंच कर विद्या के बल से उसने सन्यासी का रूप बनाया और सुलसा के घर जाकर कहा-'आयुष्मति! (लम्बी आयुष्य वाली) मुझे भोजन दो। इससे तुम्हें धर्म होगा, मोक्ष की प्राप्ति होगी।'

सुलसा ने उत्तर दिया—'सन्यासी जी! अनुकम्पा के लिए मैं प्रत्येक को भोजन दे सकती हूं और लो, आपको भी देती हूं, परन्तु निर्दोष धर्म और मोक्ष तो जिन्हें देने से होता है, उन्हें ही देने से होगा, आपको देने से नहीं हो सकता। 'किन्हें देने से निर्दोष धर्म और मोक्ष होता है?'—यह आपको बताने की आवश्यकता नहीं क्योंकि मैं उन्हें जानती हूं।

यह उत्तर सुन कर अम्बड उसके घर से बिना भिक्षा लिए लौट गया और नगर के बाहर आया। वहां उसने आकाश में अधर-कमल का आसन लगाया और उसके ऊपर बैठ कर वह तपश्चर्या करने का दिखावा करने लगा। लोग उसे अधर-कमल के आसन पर तपश्चर्या करते देख कर चकित होने लगे।

सैंकड़ों-सहस्रों लोग उसके दर्शन के लिए आने-जाने लगे। उसकी पूजा-भक्ति होने लगी और पारणे के लिए निमन्त्रण पर निमन्त्रण आने लगे। परन्तु वह सबको निषेध करता रहा।

लोगों ने पूछा—'योगीराज! आपश्री पारणे के लिए किसी का भी निमन्त्रण स्वीकार नहीं करते, तो क्या हमारा गांव अभागा है? आप जैसे महान् अतिशय वाले तपस्वी, हमारे यहां से आहार लिए बिना भूखे ही पधार जाएंगे? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। हमारे गांव में कोई न कोई तो ऐसा पुण्यशाली अवश्य ही होगा, जो आपको पारणा कराकर कृतार्थ बनेगा। आप कृपया उस भाग्यशाली का नाम बतावें, हम अभी उसे सूचित करते हैं।'

दिव्य योगी-रूपधारी अम्बड ने कहा—'पुरजनों! आपके यहां सुलसा नामक नाग-पत्नी है। वह यदि पारणा करावेगी तो मैं उसके यहां पारणा करूंगा।' यह सुन कर लोग सुलसा के घर पहुंचे।

कुछ स्त्रियों, जो उस अम्बड को देख कर लौटती थीं वे सुलसा के पास अम्बड के अधर कमलासन, उस

तपश्चर्या और निमन्त्रण के प्रति उपेक्षा भाव की प्रशंसा करतीं। उसके अतिशय का बखान करतीं, और सुलसा को उसके दर्शन की प्रेरणा करतीं, परन्तु वह इन आडंबरों के चक्कर में नहीं आई।

जब इस समय सब लोगों ने आकर सुलसा से कहा—'बधाई है, सुलसा ! बधाई है ! वे अपूर्व योगीराज तुम्हारे यहां पारणा करना चाहते हैं। उन्हें पारणा कराओ और भाग्यशाली बनो।' तो उसने अंबड की उस विकुर्व्वणा को जान कर उत्तर दिया—'पुरजनों ! मैं अरिहंत को ही देव, निग्रन्थ को ही गुरु और केवली प्ररूपित तत्त्व को ही धर्म मानती हूँ। मुझे इन जैसे साधुओं पर कोई श्रद्धा नहीं है। सच्चे साधु लोग अपने अतिशय का दिखावा और तप की प्रसिद्धि नहीं करते। 'मैं उस घर पारणा करूंगा'— ऐसा नहीं कहते। एक घर पर भोजन नहीं करते। वे अपनी लब्धियों (ऋद्धियों) को गुप्त रखते है, तपश्चर्या को अप्रकट रखते हैं। बिना सूचना दिये घर में प्रवेश करते हैं और नाना घरों से गोचरी लेकर संयम-यात्रा चलाते हैं। उन्हें पारणा कराने से ही आत्मा सच्ची भाग्यशाली बनती है। ऐसे मिथ्या साधुओं को पारणा कराने से नहीं बनती। यह उत्तर सुन कर बहुत-से पुरजन बहुत खिन्न हुए। कुछ ने यह उत्तर उस दिव्य-योगीरूपधारी अंबड को ले जाकर सुनाया। इस उत्तर को सुन कर अंबड को प्रत्यक्ष हो गया कि 'सुलसा सम्यक्त्व में कितनी दृढ़ है? वह आडम्बर और लोकमत से किस प्रकार अप्रभावित रहती है।'

उसने अपना वेष बदला और उन सभी लोगों के

साथ नमस्कार-मंत्र का उच्चारण करते हुए सुलसा के घर पर आकर सुलसा के घर में प्रवेश किया। सुलसा ने उस समय अम्बड को स्वधर्मी समझ कर उठ कर उसे सत्कार सम्मान दिया। अम्बड ने भी भगवान् द्वारा की गई प्रशंसा सुलसा को सुनाई और अपने द्वारा की गई परीक्षा बता कर उसकी स्वयं भी बहुत प्रशंसा की।

लोगों ने भी यह सब देख कर सुलसा की सम्यक्त्व-दृढ़ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की और जो पुरजन सुलसा पर खिन्न हुए थे, वे पुनः सुलसा पर प्रसन्न हो गये।

॥ इति ७. श्री सुलसा श्राविका की कथा समाप्त ॥

## शिक्षाएँ

१. दृढ़ सम्यक्त्वी की देव तो क्या, भगवान् भी प्रशंसा करते ।
२. दृढ़ सम्यक्त्वियों की कसौटियां भी होती रहती हैं।
३. मिथ्यादृष्टि के साथ मिथ्यात्व-प्रवृत्ति भी छोड़ो।
४. दृढ़ सम्यक्त्वी दूसरों को भी दृढ़ बनाता है।
५. दृढ़ सम्यक्त्वी की भी लौकिक आशाएँ पूर्ण होती हैं।

## प्रश्न

१. सुलसा श्राविका का परिचय दो ?
२. सुलसा और नाग की पारस्परिक चर्चा बताओ ?
३. सुलसा की किस-किस ने प्रशंसा की ?
४. सुलसा की किस-किस ने कैसी-कैसी परीक्षा की ?
५. सुलसा श्राविका से क्या शिक्षाएँ मिलती हैं ?

# ८. श्री सुबाहुकुमार (मुनि)

## परिचय

'हस्तिशीर्ष' नामक नगर में 'अदीनशत्रु' नामक राजा राज्य करते थे। उनकी 'धारिणी' नामक रानी थी। उस रानी को रात्रि में 'सिंह-स्वप्न' आया। ६ मास और साढ़े सात (कुछ अधिक सात) रात के पश्चात् एक पुत्र जन्मा। उसका नाम 'सुबाहुकुमार' रक्खा गया। राजा-रानी ने क्रमशः उसे ७२ कलाए सिखाईं और उनका ५०० राजकन्याओं से लग्न किया। वह रानियों के साथ राज-प्रासाद में सुखपूर्वक रहने लगा।

## समवसरण में

एक वार उस नगर के ईशान कोण में रहे 'पुष्पकरंडक' नामक उद्यान में भगवान् महावीर स्वामी पधारे। लोगों को उनके दर्शनार्थ वड़े समूह से जाते देख कर सुवाहुकुमार ने कंचुकी (अंतःपुर के सेवक) को बुला कर पूछा कि—'ये लोग आज इतने बड़े समूह से कहां जा रहे है?' कंचुकी ने उत्तर में कहा—'भगवान् पधारे है, इसलिए लोग वड़े समूह से उनके दर्शन करने, उन्हें वन्दन करने व उनकी वाणी सुनने के लिए जा रहे हैं।' सुवाहु भी इस समाचार को पाकर भगवान् के दर्शन आदि के लिए भगवान् के समवसरण में पहुंचे।

## धर्म-कथा

भगवान् ने सुवाहुकुमार आदि वहुत वड़ी सभा को

को वन्दन-नमस्कार करके पूछा कि—'भन्ते ! यह सुबाहु-कुमार बहुत लोगों को बहुत ही प्रिय लगता है। यहां तक कि यह बहुत-से साधुओं को भी प्रिय लगता है, इसका क्या कारण है ? १. यह पूर्व भव में कौन था ? २. इसका पूर्व भव में क्या नाम-गोत्र था ? ३. तब इसने कौन-सा अभयदान, अनुकम्पादान या सुपात्र दान दिया ? ४ इसने कौन-सा आयम्बिलादि में नीरस आहारादि भोगा ? ५. इसने कौनसे शील या उपवासादि तप का आचरण किया ? ६. अथवा इसने ऐसा कौन-सा एक भी आर्यवचन (धर्मवचन) सुना और सुन कर उस पर श्रद्धा की, जिससे इसने ऐसी ऋद्धि और प्रियता आदि प्राप्त की ?'

## पूर्व भव कथन

भगवान् ने कहा—'गौतम ! कुछ वर्षों पहले की बात है। 'हस्तिनापुर' नामक नगर में, 'सुमुख' नामक १. एक धनवान्, सुखी और प्रतिष्ठित गृहस्थ रहता था। उस नगर में 'धर्मघोष' नामक आचार्य पधारे। उनके 'सुदत्त' नामक एक मुनि बड़े ही तपस्वी थे। वे एक मास तक उपवास करते, फिर एक दिन पारणा करते और एक मास तक उपवास करते, फिर एक दिन पारणा करते, इस प्रकार वे लगातार मास-क्षमण (तप) करते थे।

एक बार जिस दिन उनके मास-क्षमण का पारणा था, उस दिन उन्होंने पहले प्रहर (दिन के पहले चौथाई भाग) में स्वाध्याय किया (शास्त्र-वांचन किया), दूसरे प्रहर मे ध्यान (शास्त्र-चिन्तन) किया और तीसरे प्रहर में

गुरुदेव की आज्ञा लेकर गोचरी के लिए (जैसे गाय उगे हुए घास का थोड़ा-थोड़ा भाग चरती है, वैसे प्रत्येक घर से थोड़ी-थोड़ी भिक्षा लेने के लिए) निकले। धनवान्-निर्धन सभी कुलों में गोचरी लेते हुए ये मुनिराज, सुमुख गृहस्थ के यहां पधारे।

## अहोदान

१. सुमुख गृहस्थ मुनिराज को अपने घर गोचरी पधारे हुए देख कर बहुत हर्षित हुआ। २. वह आसन छोड़ कर नीचे उतरा। ३ पगरखी छोड़ी। ४. मुंह पर उत्तरासंग लगाया और ५. मुनिराज का स्वागत करने के लिए सात-आठ पैर (कुछ पैर) सामने गया। ६. तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया। फिर अपने रसोईघर में बहुमान सहित ले गया और ८ अपने हाथों से अपने घर मे जो मुनियों के योग्य निर्दोष भोजन के उत्तम से उत्तम पदार्थ थे, वे मुनिराज को बहुत मात्रा में बहराये (दान में दिये)।

सुमुख को १. दान देने के पहले 'मैं मुनिराज को दान दूंगा'—इस विचार से बहुत प्रसन्नता थी। २. दान देते हुए 'मुनिराज को दान दे रहा हूं'— इस विचार से भी बहुत प्रसन्नता थी तथा ३. दान देने के पश्चात् 'मुनिराज को दान दिया'—इस विचार से भी बहुत प्रसन्नता थी।

## दान का फल

सुबाहु ने १. निर्दोष दान दिया था, २. शुद्ध भाव से

दिया था तथा ३. महातपस्वी जैसे शुद्ध-पात्र को दान दिया था । इस प्रकार १. दान, २. दाता और ३. पात्र तीनों उत्तम थे और दान के समय सुबाहु के १. मन, २. वचन और ३. काया ये तीनों भी शुद्ध थे । इस कारण सुबाहु ने सम्यक्त्व प्राप्त की व संसार घटाया (मोक्ष को निकट बनाया)।

सुमुख के इस दान से प्रसन्न होकर देवताओं ने ये पांच दिव्य बातें प्रकट कीं— १. सुवर्ण ( सोना ) बरसाया। २. पांचों रंग वाले फूल बरसाये । ३. ध्वजाएँ फहराईं (अथवा वस्त्र बरसाये) । ४. दुन्दुभियां ( एक प्रकार का उत्तम बाजा ) बजाईं और ५. अहोदान ! अहोदान !! इस प्रकार घोषणा की । (अर्थात् 'यह दान प्रशंसनीय है' ऐसी बार-बार प्रशंसा की ।)

हस्तिनापुरवासी भी यह देख कर परस्पर में सुमुख की प्रशंसा करने लगे कि—'धन्य है ! धन्य है !! देवानु-प्रियो ! सुमुख गृहस्थ धन्य है !!! जिसने ऐसा देव-प्रशंसित सुपात्र दान दिया।

कालान्तर से उसे मिथ्यात्व में मनुष्य आयु का बंध हुआ । वह आयुष्य समाप्त होने पर काल करके अदीनशत्रु की महारानी धारिणी के कुक्षि में आया और क्रमशः आज मेरे पास आया ।

हे गौतम ! इस सुबाहुकुमार ने पूर्व भव में ३. उन महातपस्वी को, जो निर्दोष, उत्तम भाव से महान् सुपात्र दान दिया, उसके प्रभाव से यह सुबाहु ऐसा ऋद्धि-वैभवादि

संपन्न तथा बहुत लोगों को और साधुओं को भी प्रिय बना है।

## दीक्षा

तब गौतम स्वामी ने पूछा— क्या भगवन् ! यह सुबाहुकुमार आपके पास दीक्षा लेगा ? भगवान् ने कहा-'हां'।

कुछ दिनों बाद भगवान् का वहां से विहार हो गया। उसके पश्चात् की बात है— एक बार सुबाहुकुमार को तीन दिन का पौषध करते हुए रात्रि को विचार आया कि—'भगवान् यदि यहां पधारें, तो मैं दीक्षित बनूं।' अन्तर्यामी भगवान् सुबाहुकुमार के इन विचारों को जान कर वहां पधारे। सुबाहुकुमार भगवान् का उपदेश सुन कर दीक्षित बने। उन्होंने दीक्षित बन कर कई सूत्रों का अभ्यास किया और बहुत तपश्चर्यायें कीं। अन्त में संथारापूर्वक काल करके वे पहले देवलोक में गये। वहां से वे १४ भव तक क्रमशः मनुष्य और देव बनते हुए १५ पन्द्रहवें भव में मनुष्य बन कर तथा दीक्षा लेकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होंगे।

॥ इति ८. श्री सुबाहुकुमार (मुनि) की कथा समाप्त ॥

— श्री सुखविपाक सूत्र, अध्ययन १ के आधार से।

## शिक्षाएं

१. पात्र का योग मिलने पर भावपूर्वक अपने हाथों से निर्दोष दान दो।

२. सुपात्र-दान से संसार घटता है ( मुक्ति निकट बनती है )।

३. सुपात्र-दान से आत्मा की क्रमशः उन्नति होती रहती है।

४. सुपात्र दानी को लौकिक सुख भी मिलता है।

५. सुपात्र दानी लोगों का व साधुओं का भी प्रिय बनता है।

## प्रश्न

१. भगवान् ने धर्म-कथा में कितनी मुख्य बातें बतलाईं?

२, श्री गौतम स्वामी ने सुबाहु के सम्बन्ध में क्या-क्या प्रश्न किये ?

३. सुपात्र-दान देने आदि की विधि बताओ।

४. सुमुख गृहस्थ के सुपात्र दान से क्रमशः क्या-क्या फल हुए ?

५. सुबाहुकुमार से आपको क्या शिक्षाएँ मिलती हैं ?

# १. छोटी बहू : रोहिणी

## परिचय

पुराने समय की बात है । 'राजगृह' नामक नगर में 'धन्य' (धन्ना) नामक सार्थवाह (परदेश में व्यापार के लिए जाते हुए साथ में चलने वाले लोगों को पालने वाला) रहता था। उसके १. धनपाल, २. धनदेव, ३. धनगोप और ४. धनरक्ष—ये चार पुत्र थे । उन चारों पुत्रों की क्रमशः ये चार पुत्र-वधुएं थीं— १. उज्झिता (फेंकने वाली), २. भोगवती (भोगने वाली), ३. रक्षिता (रक्षा करने वाली) और ४. रोहिणी (बढ़ाने वाली) ।

## परीक्षा-विचार

धन्ना सार्थवाह को एक बार पिछली रात्रि को कुटम्ब के विषय में सोचते हुए यह विचार आया कि—' मेरे ये चारों पुत्र अयोग्य है, इनसे मेरे कुल का काम नहीं चल सकेगा, अतः इन चारों पुत्र-वधुओं की परीक्षा लूं, जिससे जानकारी हो जाय कि मेरे यहां न रहने पर या असमर्थ हो जाने पर या काल कर जाने पर मेरे कुल का काम कौन चला सकेगी ?'

## पांच शालि का प्रदान

दूसरे दिन उन्होंने अपने परिवार को, जाति वालों को, मित्रों को और बहुओं के पीहर वालों को निमन्त्रण दिया । उनको भोजन देने के पश्चात् जब वे कुछ विश्राम

कर चुके तब उन सभी के सामने १. सबसे बड़ी बहू उज्झिता को बुलाया और उसे पांच शालि अक्षत (चावल के बीज) देते हुए कहा—'पुत्री ! मेरे हाथ से इन पांचों चावल के बीजों को लो और इनका संरक्षण करते हुए (हानि से बचाते हुए) तथा संगोपन करते हुए (हानि न हो, ऐसे गुप्त स्थान में रखते हुए) इन्हें अपने पास रक्खो।' यह कह कर धन्ना ने उसके हाथों में वे पांचों बीज दे दिये और उसे स्वस्थान पर भेज दिया।

उज्झिता ने उन बीजों को एकान्त में ले जाकर सोचा—'मेरे ससुर के बहुत-से कोठार, शालि (चावलों के बीजों) से ही भरे पड़े हैं। जब ससुरजी पांच शालि मांगेंगे, तब मैं उन कोठारों में से पांच शालि ले जाकर उन्हें दे दूंगी। इन शालियों का संरक्षण-संगोपन करना वृथा है।' यह सोच कर उसने वे बीज एक ओर फेंक दिये और अपने काम में लग गई। उसका जैसा नाम था, वैसा ही उसने काम किया।

धन्ना ने २. दूसरी बहू भोगवती को भी बुला कर पांच शालि दिये। उसने भी एकान्त में जाकर बड़ी बहू के समान सोचा। परन्तु उसने शालि फेंके नहीं, किन्तु उनके छिलके उतार कर उन्हें खा लिया। उसने भी अपने नाम के अर्थ के अनुसार काम किया।

धन्ना ने ३. तीसरी बहू रक्षिता को भी बुला कर पांच शालि दिये। उसने एकान्त में जाकर सोचा—'ससुरजी ने आज परिवार, जाति, मित्र, पीहर वाले आदि सबके सामने

ये शालि के बीज दिये हैं, इसलिए अवश्य ही इसमें कोई कारण होना चाहिए।' यह विचार कर उसने एक नये स्वच्छ वस्त्र में उन्हें बांधा और अपने आभूषणों की पेटी में रख दिया और नित्य १. प्रातः, २. मध्याह्न और ३. संध्या तीनों समय उनको देखती रहती और पुनः संभाल कर रख देती। इसने भी अपने नाम के अर्थ के अनुसार काम किया।

## रोहिणी द्वारा वृद्धि

धन्ना ने अन्त में ४. सबसे छोटी बहू को भी बुला कर पांच शालि दिये। उसने भी एकान्त में जाकर तीसरी बहू के समान सोचा। परन्तु उसने संरक्षण-संगोपन के साथ संवर्द्धन (बढ़ाना) भी सोचा। यह सोच कर उसने अपने पीहर वालों को बुला कर कहा—'इन पांचों शालि के बीजों का संरक्षण-संगोपन करना और प्रति वर्ष वर्षा-ऋतु में इन्हें बो-कर इनकी वृद्धि करते रहना।' इस प्रकार चौथी ने भी अपने नाम के अर्थ के अनुसार किया।

पीहर वालों ने रोहिणी की बात स्वीकार कर ली। प्रथम वर्ष की वर्षा-ऋतु में उन्होंने पांचों शालियों के लिए एक स्वतन्त्र छोटा-सा क्यारा बना कर उन्हें बो दिया। पहली बार में ही वे पांच शालि सैकड़ों शालि बन गये। पक जाने पर उन्हें काट कर हाथ से मल कर फिर साफ किया। फिर उन्हें घड़े में डाल कर और उन पर छाप आदि लगा कर उन्हें सुरक्षित कर दिया गया।

दूसरी वर्षा में उन्हें बोने पर वे इतने बन गये कि

उन्हें पैरों से मल कर साफ करना पड़ा । तीसरी वर्षा में वे कई घड़े जितने और चौथी वर्षा में वे कई सैकड़ों घड़े जितने बन गये ।

## पाँचवां वर्ष

धन्ना सार्थवाह को पांचवें वर्ष की एक पिछली रात्रि में विचार आया—'अब देखना चाहिए कि उन शालियों का किस बहू ने क्या किया । किसने उनकी रक्षा की ? किसने उनको गुप्त रक्खा ? किसने उनकी वृद्धि की ?

दूसरे दिन उन्होंने पहले के समान सबको इकट्ठे करके भोजन जिमा कर विश्राम के समय सब के सामने बड़ी बहू उज्झिता को बुला कर कहा—' बेटी ! पिछले पांचवें वर्ष में मैंने जो तुम्हें पांच श लि दिये थे, वे मुझे लाकर दो ।'

१. तब उस बड़ी बहू ने कोठार में से पांच बीज निकाल कर उन्हें ससुर को लाकर दिया । तब धन्ना ने शपथ दिला कर उसे पूछा—' बेटी ! सच-सच बता, क्या ये वे ही बीज हैं, जिन्हें मैंने पांचवें वर्ष तुम्हें दिये थे ?' तब उसने सब बात सच-सच कह दी । बीजों के फेंकने की बात सुन कर धन्ना को बहुत क्रोध आया । उन्होंने सब के सामने उस उज्झिता को घर की दासी का काम सौंप दिया। इससे उज्झिता को बहुत पश्चात्ताप हुआ ।

२. दूसरी बहू भोगवती की भी यही स्थिति हुई । परन्तु उसने बीज फेंके नहीं थे, परन्तु खाकर काम में ही लिये थे । इसलिए धन्ना ने भोगवती को दासी न बना कर रसोईन का काम सौंपा ।

३. तीसरी बहू रक्षिता से बीज मांगने पर उसने अपनी आभूषणों की पेटी में रक्खे हुए रक्षित व गुप्त पांच शालि लाकर दिये। धन्ना द्वारा शपथपूर्वक सच-सच बात पूछने पर रक्षिता ने 'ससुर द्वारा शालि मिलने पर, उसे क्या विचार हुए? तथा उसने किस प्रकार उनका संरक्षण-संगोपन किया'—वे सारी बातें ससुर को बताईं और कहा—'पिताजी! इसलिए ये बीज वे ही हैं, जो आपने मुझे दिये थे।'

धन्ना यह सब सुन कर रक्षिता पर प्रसन्न हुए। रक्षिता में संरक्षण और संगोपन की योग्यता देख कर उन्होंने उसको घर की स्वामिनी बना दी।

## रोहिणी का उत्तर

४. सब से छोटी बहू रोहिणी से बीज मांगने पर उसने कहा—'पिताजी! आप मुझे गाड़ियां दीजिए ताकि मैं आपके पांच शालि आपको लौटा सकूं।' धन्ना ने पूछा—'बेटी! पांच बीज लौटाने के लिए गाड़ियों की क्या आवश्यकता है? तब रोहिणी ने 'वे पांच शालि गाड़ियों जितने कैसे बने?' इसकी कहानी सुनाई। यह सुन कर धन्ना ने उसे गाड़ियां दीं। रोहिणी उन गाड़ियों को लेकर पीहर गई और जो पांच शालि सैकड़ों घड़े जितने बन गए थे, उनको उन गाड़ियों में भरा। गाड़ियां भर कर वह उन्हें ससुराल लाई और लाकर ससुर को दे दीं। धन्ना यह देख कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने रोहिणी में संरक्षण-संगोपन के साथ संवर्द्धन की भी योग्यता देख कर उसे घर की संचालिका बना दी।

यह देख कर वहां पर बैठे हुए सभी परिवार, जाति मित्र आदि लोग रोहिणी पर प्रसन्न हुए और उन्होंने उसकी बुद्धि की प्रशंसा की तथा सार्थवाह की भी प्रशंसा की कि- 'धन्ना सार्थवाह बड़े ही चतुर हैं, जिन्होंने अपनी बहुओं की परीक्षा करके उन्हें उनकी योग्यता के अनुसार काम सौंप दिया।'

जब नगर में यह बात फैली तो नगरवासियों ने भी रोहिणी और धन्ना सार्थवाह की प्रशंसा की। धन्ना भी बहुओं को योग्यतानुसार काम सौंप कर निश्चित हो गए।

## शिक्षा

बालको! आप कैसे बनना चाहते हो? उज्झिता के समान? नहीं, नही। यह जो ज्ञान पा रहे हो, वह कहीं फेंक न देना, भूल न जाना या आधा स्मरण रक्खा, आधा बिसर गए ऐसा भी मत करना। अथवा जो व्रत धारण करो, उन्हें छोड़ न देना या उनमे दोष भी मत लगाना। क्योंकि जो ऐसा करता है, वह निन्दनीय बनता है। इसलिए चाहे ज्ञान हो चाहे व्रत, उन्हें स्थिर रखना।

बालको! ज्ञान या व्रत को लज्जा से या भय से भोगवती के समान टिकाना भी कुछ प्रशंसनीय नहीं है या इच्छा के साथ भी टिकाया, परन्तु केवल सांसारिक (लौकिक) सुख के लिए टिकाया, तो भी प्रशंसनीय नहीं है। धार्मिक ज्ञान या धार्मिक व्रतों का उद्देश्य लौकिक नहीं है, किन्तु उनका उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है।'

तो क्या आप तीसरी वहू रक्षिता के समान बनोगे? हां, उसके समान बनना अच्छा है। ऐसा पुरुष धन्यवाद व प्रशंसा का पात्र बनता है। जो सीखा, वह स्मरण रक्खा, जो व्रत लिया, वह निभाया। परन्तु आप उद्यम करो और चौथी वहू रोहिणी के समान बनो।

जब चौथी वहू ने पांच शालि गाड़ियों से लौटाये, तब तीसरी वहू को कितना पश्चात्ताप हुआ होगा? अरे! मैं भी यदि इसके समान शालि कीं वृद्धि करती, तो मैं संचालिका बनती!' यदि आप में योग्यता है, तो आप तीसरी वहू के समान रह कर खेद का अवसर मत आने देना। जो ज्ञान सीखा, वह दूसरों को सिखाना और जो व्रत स्वयं ने धारण किये है, वे दूसरों को भी धराना जिससे आपका व दूसरों का भी जीवन मंगलमय बने।

॥ इति ९. छोटी वहू : रोहिणी की कथा समाप्त ॥

— श्री ज्ञाता धर्मकथांग सूत्र, अध्ययन ७ के आधार से।

## शिक्षाएं

१. बड़ों के द्वारा दी गई वस्तु छोटी न समझो।

२. प्राप्त वस्तु का संरक्षण, संगोपन और संवर्द्धन करो।

३. ऐसा करने वाला उन्नति प्राप्त करता है ।

४. फल पाने में धीरज रक्खो ।

## प्रश्न

१. रोहिणी आदि नाम के अर्थ बताओ ।

२. रोहिणी सब से अच्छी बहू क्यों कहलाई ?

३. रोहिणी आदि को क्या-क्या कार्य सौंपे गये ?

४. धन्ना ने सब के सामने परीक्षा क्यों की ?

५. आपको रोहिणी से क्या शिक्षाएं मिलती हैं ?

❀ कथा-विभाग समाप्त ❀

# आध्यात्मिक जीवन के नियम

१. प्रत्येक कार्य में समय की पाबन्दी ( टाइम टेबल के अनुसार ) अवश्य ही होनी चाहिए ।

२. रात्रि को नियमित समय पर शयन की तैयारी ।

३. शय्या पर पर्यंकासन से एकाग्रतापूर्वक ग्यारह नमस्कार मंत्र का ध्यान करना ।

४. तत्पश्चात् कम से कम १५ मिनिट का चिंतन करना । मन, वचन, काया की एकाग्रता की साधना ।

५. जागरण समय का मन को आदेश देते हुए सागारी संथारे का प्रत्याख्यान करना ।

६. उत्तम निद्रा के लिए अंग-प्रत्यंग की शिथिलतापूर्वक श्वासोश्वास की गणना ।

७. प्रातः उठकर शय्या पर ही अपने वस्त्र तथा शरीर को भी न देखते हुए आंखें बन्द कर पर्यंकासन से बैठ कर एकाग्रतापूर्वक ग्यारह नमस्कार मंत्र का ध्यान करना ।

८. तत्पश्चात् शय्या से नीचे उतर कर पूर्व या उत्तर दिशा में मुंह कर सुदेव, सुगुरु, सुधर्म के प्रति अटूट श्रद्धापूर्वक तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार विधिपूर्वक घुटने टेक कर वन्दन करना ।

९. अपने से बड़े सभी पारिवारिक सदस्यों को चरण छूकर नमस्कार करना ।

१०. गांव में संत-सतियां जी विराजमान हों तो प्रतिदिन

दर्शन एवं विधिपूर्वक वंदन करना।

११. धर्मगुरुओं के सम्मुख खुले मुंह वार्तालाप नहीं करना।

१२. दारू, मांस, जुआ, चोरी, शिकार, परस्त्रीगमन (वेश्यागमन) व मादक द्रव्यादि सप्त कुव्यसनों का त्याग करना।

१३. चवदह नियम का प्रतिदिन स्मरण तथा प्रत्याख्यान यथाशक्ति करना।

१४. गांव में जो भी सदस्य मिले, उसका 'जयजिनेन्द्र' पूर्वक अभिवादन करना।

१५. प्रातःकाल नियत समय पर घन्टा, आधा घन्टा या १५ मिनिट का नियमित स्वाध्याय करना।

१६. इसके पूर्व निम्न तीन बातों पर अवश्य ही ध्यान देना (१) स्वाध्याय के लिए समय की पाबन्दी अति आवश्यक है। यह आत्मिक खुराक है। (२) सामायिक का वेश (यूनिफार्म) बदलना अति आवश्यक है। बने जहां तक वस्त्र अलग ही रखना। (३) घर में रहे हुए वृद्ध तपस्वी रोगी की देखभाल करने वाला दूसरा न हो तो उनकी शारीरिक बाधाओं की समय के पूर्व निवृत्ति कराना अति आवश्यक है। ( धर्म से कर्तव्य बड़ा )

१७. स्वाध्याय के पचास मिनिटों का दस, पन्द्रह व पच्चीस मिनिटों में विभाजन करना। ( १ ) प्रथम के दस मिनिटों में मन की एकाग्रता के लिए हाथ की अनानुपूर्वी के माध्यम से साधना करना। (२) सधे हुए मन में बाद के पन्द्रह मिनिट के चिन्तन-मनन में

पूर्व दिवस के दैनिक कार्यों का बारीकी से निरीक्षण करते हुए एक-एक त्रुटि को एक-एक माह के अभ्यास से सर्वथा दूर करना। (३) शेष पच्चीस मिनिटों में महापुरुषों के जीवन-चरित्र व उनके द्वारा रचित साहित्य को मनन पूर्वक पढ़ते हुए एक-एक गुण को एक-एक माह के अभ्यास से जीवन में धारण करना, अन्य बातें न करना।

१८. क्रिया में कर्म, उपयोग में धर्म व परिणाम में बन्ध के सिद्धांत को सदैव स्मरण कर व्यावहारिक जीवन सुधारना।

१९. व्याख्यान में नियत समय पर उपस्थित होना व वहां पर मौन रखना।

२०. पाक्षिक प्रतिक्रमण व आलोचना करना।

२१. प्राणीमात्र पर मैत्रीभाव रखना। पानी छान कर पीना।

२२. सद्गुणी आत्माओं के प्रति आदरभाव व गुण ग्रहण का चाव रखना।

२३. दुःखी प्राणियों पर सहृदयतापूर्वक अनुकम्पा भाव रख उनके दुःखों को यथाशक्ति दूर करना।

२४. विरोधी प्रवृत्ति करने वालों पर तथा शत्रुओं पर भी समभाव रखना। (घृणा पाप से करना, पापी से नहीं)

२५. जड़ चैतन्य के भेद ज्ञानपूर्वक आत्मिक शक्ति पर अटल निष्ठा रखना।

२६. मोह ममत्व के परिहार पूर्वक सात्विक प्रेमभाव का विस्तार करना।

२७. क्रोध, मान, माया, लोभ, रागद्वेष, अज्ञान व पापाकारी प्रवृत्तियों के त्यागपूर्वक जीवन में क्षमा, नम्रता, सरलता व निर्लोभता आदि सद्गुणों को धारण कर जीवन का विकास करना।

२८. धार्मिक पर्वों में सम्मिलित रूप से धार्मिक अनुष्ठान करना।

२९. प्रतिदिन कुछ न कुछ नया ज्ञान सीखते हुए सीखे हुए ज्ञान की पुनरावृत्ति करना।

३०. उत्पन्न शंकाओं का समुचित समाधान प्राप्त करना। ( संशयात्मा विनश्यति )

३१ वार्तालाप में नम्रता का व्यवहार करते हुए सदैव मीठे वचन का उच्चारण करना।

३२. अपने पुत्रवधू व जमाता के प्रति पुत्री व पुत्र का सा व्यवहार करना।

३३. अपने सास-श्वसुर के प्रति माता-पिता का सा व्यवहार करना।

३४. अपनी जेठानी व जेठ को माता-पिता व देवर-देवरानी को पुत्र व पुत्री समझना।

३५. अपने बड़ों के सामने नहीं बोलना। उस समय उनकी बात सुनकर बाद में यदि कोई आवश्यक समाधान हो तो नम्रतापूर्वक निवेदन करना।

३६. अपनी स्त्री के प्रति भी कभी अपमानजनक शब्दों का व्यवहार नहीं करना। भारी अपराध हो जाने पर भी शांति से उसे समझाना।

(यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:)

३७. अपने आश्रित तथा पड़ोसियों के साथ सदैव सद्भावनापूर्ण व्यवहार करना।

३८. दूसरों के प्रति कोई कार्य करने के पूर्व यह ख्याल करना कि यदि यही कार्य दूसरा मेरे प्रति करे तो मुझे कैसा लगे। यदि वह मुझे पसन्द न हो तो वह कार्य दूसरों के प्रति नहीं करना।

३९. अन्य की निन्दा व आत्म प्रशंसा कदापि नहीं करना। देखना हो तो अन्य के गुण व स्वयं के दोष देखना।

४०. अपने बालक-बालिकाओं को बचपन से धार्मिक शिक्षण नियमित रूप से प्राप्त कराने हेतु जैन शाला भेजना। जहां जैन शाला न हो, वहां उचित व्यवस्था करना।

४१. आगंतुक का यथोचित स्वागत सत्कार करते हुए नम्र व मीठे शब्दों से वार्तालाप करना।

४२. जहां कहीं भी जावे वहां रहन-सहन, खान-पान में सादगी का ध्यान रखना। बने जहां तक घर में भी सादगी हो।

४३. सभा-सोसायटी आदि में उपस्थित सज्जनों का अभिवादन करते हुए यथोचित स्थान पर बैठने का ध्यान रखना।

# सिगरेट से कैंसर

## तम्बाकू में २४ घातक विष

(भारत सरकार द्वारा प्रकाशित पत्रिका ११-२-६५)

(१) निकोटीन विष—से कैंसर पैदा होता है।

(२) कार्बन मोनोक्साइड विष—से दिल की बीमारी, सांस रोग, दमा और आंखों की रोशनी धीरे-धीरे समाप्त होने लगती है।

(३) मार्श गैस विष—से शक्ति नष्ट होकर नपुंसकता प्राप्त होती है।

(४) अमोनिया विष—से पाचन शक्ति और जिगर विगड़ जाते हैं।

(५) कोलीडिन विष—से सिर चकराने लगता है, नसें कमजोर पड़ जाती हैं।

(६) पायरीडिन विष—से आंतों में खुश्की और पेट में कब्ज रहने लगता है।

(७) कार्बोलिक एसिड विष—से अनिन्द्रा, स्मरण शक्ति का विनाश और चिड़-चिड़ेपन का स्वभाव बनता है।

(८) परफेरोल विष—से दांत पीले, मैले और कमजोर बनते है।

(९) एजालिन विष और सायनोजन विष—से खून खराब हो जाता है।

(१०) फुरफरल विष और प्रसिक एसिड विष—से थकान, जड़ता और उदासी पैदा होती है।

इसी प्रकार के तम्बाकू में और भी बहुत से विष पाए गए हैं, जिनके कारण टी. वी., लकवा, खांसी, अंदरुनी सूजन और खून का पानी तक बन जाता है।

## एक ही सिगरेट से मौत

यदि एक ही सिगरेट का धुंआ बाहर न निकाल दिया जाय तो मौत तक हो सकती है।

एक सिगरेट से १४॥ मिनिट आयु कम होती है।

डा० रेमाण्ड पर्ल—जान हापकिन्स विश्वविद्यालय
(आरोग्य—फरवरी १९७०)

अमरीका में २,१०, ००००० (दो करोन दस लाख) व्यक्तियों ने धूम्रपान को कैंसर की जड़ समझ कर छोड़ दिया। इनमें से १,००००० (एक लाख) तो डाक्टर ही हैं। अतः धूम्रपान नहीं करना चाहिए।

सारांश—(हिन्दुस्तान समाचार पत्र २२-१०-६८)

जी० एस० मेडिकल कॉलेज, बम्बई के डा० मंगलदास जे० शाह लिखते हैं—

## शराब एक भयंकर विष

## शराब से टी० बी०

शराब से बुखार, टी. बी., पीलिया, सांसरोग, लकवा आदि भयानक रोग उत्पन्न होते हैं।

## शराब से हार्ट फेल

शराब से दिल कमजोर होकर–हार्ट फेल तक हो जाता है। इसके सेवन से दिमाग व गुरदे तबाह हो जाते हैं।

## शराब से खून तक की उल्टी

शराब के सेवन से तिल्ली बढ़ जाती है। पेट सूज जाता है। पेट में फोड़ा, व जख्म हो जाने के कारण कभी-कभी खून की उल्टी आकर मौत तक हो जाती है।

एक्सरे विभाग नई दिल्ली के अध्यक्ष प्रो० पी० के० हलदार लिखते हैं।

(हिन्दुस्तान समाचार पत्र, २१ अक्टूबर १९६८)

## शराब से कैंसर का प्रकोप बढ़ा

आज जैसे–जैसे शराब का सेवन बढ़ता जा रहा है। वैसे-वैसे कैंसर का प्रकोप भी बढ़ता जा रहा है। सरकार और जनता को चाहिए कि वे शराब पर तुरन्त पाबन्दी लगाएं।

## रूस में शराब का प्रचार करने वाले को ५ वर्ष तक की कैद

( ट्रिब्यून–८ जुलाई १९६५ )

शराब के कारण ही द्वारिकापुरी जलकर राख का ढेर हो गई। शराब के नशे में चूर शांब और यादवों ने द्वीपायन ऋषि को मार-पीट कर बहुत सताया। अकेले द्वीपायन ऋषि क्या कर सकते थे, बदले की भावना से देह

त्याग कर अगले जन्म में ऋषि, अग्निकुमार देव बने और अपने अवधिज्ञान से पूर्वभव का वृत्तांत जान कर अपमान का बदला लेने के लिए सारी द्वारकापुरी को ही जला दिया।

## वैज्ञानिक एवं डाक्टरी खोजों का परिणाम

## अण्डे विष से भरे हैं

### अण्डों में डी० डी० टी० विष

१८ महीनों के परीक्षण के बाद अण्डों में ३०% डी. डी. टी. मिला।

—कृषि विभाग—फ्लोरिडा—अमरीका, हैल्थ बुलेटिन—अक्तूबर १९६७

अण्डों में कोलैस्टरोल जैसे हानिकारक तत्व की अधिकता के कारण अण्डों से सैकड़ों बीमारियां पैदा होती हैं।

### अण्डों से दिल की बीमारी

अण्डों में कोलैस्टरोल की मात्रा इतनी अधिक होती है कि जिसके कारण अण्डों से दिल की बीमारी, हाई ब्लड प्रैशर, गुरदों की बीमारी, पित्त की थैली में पथरी आदि रोग पैदा होते हैं। फलों, सब्जियों और वनस्पति तेलों में कोलैस्टरोल बिल्कुल नहीं होता।

—डा० रोबर्ट ग्रास निम्मो, डी. सी. आर. एन., लोनिवर्टो, कैलीफोर्निया (यू. एस. ए.)

### अण्डों से धमनियों में जख्म

रासायनिक परीक्षण सिद्ध करता है कि

जरदी में कोलैस्टरोल नामक भयानक तत्व पाया गया है, जो कि एक चिकना एल्कोहल ( शराब ) होता है। वह जिगर में जमा हो जाता है और फिर रगों ( धमनियों ) में जख्म और कड़ापन पैदा करता है।

—डा० जे० ऐमन विल्किन्ज

## अण्डों से पित्ताशय में पत्थरी

एक अण्डे में लगभग ४ ग्रेन कोलैस्टरोल होता है। जब अण्डे खाये जाते हैं तो खून में कोलैस्टरोल की मात्रा बढ़ जाती है जिसके कारण पित्ताशय में पत्थरी और दूसरी बीमारियां पैदा हो जाती है।

—डा० रोबर्ट ग्रांस और प्रो० इरविंग डैविडसन

## अण्डों से ऐग्जिमा और लकवा

अण्डे की सफेदी अण्डे का सबसे अधिक खतरनाक भाग है। जिन जानवरों को अण्डे की सफेदी खिलाई गई, उन्हें लकवा मार गया और चमड़ी सूज गई।

—डा० रोबर्ट ग्रास

अण्डे की सफेदी में 'एवीडिग' नामक हानिकारक तत्व होता है, जो एग्जिमा का कारण होता है।

—डा० आर० जे० विलियम्स

## अण्डों से पेट में सड़ान

अण्डों में कैलशियम की कमी और कार्बोहाइड्रेट्स

का बिल्कुल अभाव होता है। इस कारण ये बड़ी आंतों में जाकर सड़ान मारते हैं।

—डा० ई० वी० मैक्कॉलम—बड़ी भारी डाक्टरी राय
न्यूअर नोलेज आफ न्यूट्रिशन, पृष्ठ १७१

## अण्डे मनुष्य के हाजमे के प्रतिकूल है

पित्त और लबलबा का रस अण्डे की सफेदी के साथ नहीं मिलते हैं। अण्डे की सफेदी का ३० से ५० प्रतिशत भाग भोजन प्रणाली से विना हजम हुए ही निकल जाता है।

—प्रो० आकोड़ा

## संसार में अण्डों से बढ़कर कोई हानिकारक पदार्थ नहीं

अण्डों की उत्पत्ति और विकास उन पदार्थों के मेल से होना है जो कि बड़े गन्दे और नफरत से भरे हैं। इन पदार्थों को छूना ही मनुष्य के लिए घृणा की बात है, खाना तो दूर रहा। मनुष्य की सेहत को बिगाड़ने के लिए इनमें बढ़कर और क्या वस्तु हो सकती है? मनुष्य अपना स्वास्थ्य विभिन्न फलों, शाकों व सूखे मेवों से प्राप्त कर सकता है और इन्हीं से जीभ के स्वाद की पूर्ति भी अच्छी तरह से हो सकती है।

—डा० कामताप्रसाद, अलीगंज, एटा, इण्डिया

आज के वैज्ञानिक युग में अण्डों जैसे अभक्ष्य पदार्थों का त्याग कर अमृत तुल्य दूध, फल, मेवा, ग्रहण करने चाहिए।

दूध के पौष्टिक तत्व बहुत ही ऊंचे दरजे के होते हैं

क्योंकि इनमें बढ़िया किस्म के प्रोटीन पाये जाते हैं । ऐसा कोई पौष्टिक तत्व नहीं जो अण्डे से मिल सकता हो परन्तु दूध में न मिले । इस वैज्ञानिक युग में विशेष रूप से विटा-मिन और खनिज लवण बनावटी तौर पर मिल सकते हैं और वे जहां आवश्यक हों दूध के साथ सहायक रूप में लिए जा सकते हैं । मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि सन्तुलित शाकाहारी भोजन उतना ही पोषणकारी है, जितना कि मांस और अण्डे । अत: विटामिन और खनिज लवणों के लिए अण्डे और मास पर निर्भर रहना व्यर्थ है ।

—डा० आनन्द विमल सूरिया

## मांस में विष

लन्दन के सर्व प्रसिद्ध डाक्टर हेग ने अपने प्रयोगों और अनुभवों के वाद मांस के एक पौण्ड में यूरिक एसिड विप और उसका प्रभाव नीचे लिखा है—

### विष की मात्रा

| | |
|---|---|
| कॉड मछली में | ४ ग्रेन |
| यलीस ,, ,, | ५ ग्रेन |
| सूअर मुर्दा ,, | ६ ,, |
| भेड़ बकरी ,, | ६ ,, से कुछ अधिक |
| बछड़े में ,, | ८ ,, |
| सूअर की कमर रान में | ८ ,, से कुछ अधिक |
| चूज़े में | ६ ,, |

| | |
|---|---|
| गाय की पीठ तथा पीछे के अंग में | ९ ग्रेन |
| गाय की भुनी बोटी में | १४ ,, |
| गाय के जिगर में | १९ ,, |
| मांस के शोरवे में | ५० ,, |

## विष का प्रभाव

यह विष जब खून में मिलता है तो दिल की जलन, जिगर की खराबी, टी० बी०, सांमरोग, खून की कमी, गठिया, हिस्टीरिया, सुस्ती, नींद आदि का आना, अजीर्ण रोग, शरीर में तरह-तरह के दर्द, जुकाम, एंफ्लूएंजा, मलेरिया, न्यूमोनिया आदि सैकड़ों रोग पैदा हो जाते हैं।

सेहत बनाने के लिए विषपूर्ण मांस त्याग कर शाकाहारी बनो।

## भारत सरकार का फैसला

( हैल्थ बुलैटिन नं० २३ )

अण्डे, मछली, मांस की अपेक्षा सोयाबीन, मूंगफली, मेथी, चोला, मटर, मूंग, उड़द, चने, मसूर आदि शाकाहारी पदार्थ अधिक शक्ति देने वाले हैं और अधिक सस्ते भी हैं।[1]

---

१. भारत सरकार को अपने फैसले के अनुसार सस्ते और शक्तिवर्धक शाकाहारी खाद्यों का ही खूब जोर शोर से प्रचार करना चाहिए। मंहगे हानिकारक अण्डे, मछली, मांस का बहिष्कार करना चाहिए।

मांसाहारियो, सावधान

१९६८ की नई वैज्ञानिक खोज

मांस–भक्षण से हड्डियां कमजोर

हार्वर्ड मैडिकल स्कूल अमेरिका, के डा० ए० वाचमैन और डा० डी० एस० बर्नस्टीन लैंसेट १९६८ बौल्यूम १, पृष्ठ ९५८ में अपनी महत्वपूर्ण वैज्ञानिक खोजों का परिणाम लिखते हैं—

मांसाहारी लोगों का पेशाब प्रायः तेजाव युक्त होता है इस कारण शरीर के रक्त का तेजाव और क्षार का अनुपात ठीक रखने के लिए हड्डियों में से क्षार के नमक खून में मिलते हैं और इसके विपरीत शाकाहारियों का पेशाव क्षार–वाला होता है। इसलिए उनकी हड्डियों का क्षार खून में नहीं जाता और हड्डियां मजबूत रहती हैं। उनकी राय में जिन व्यक्तियों की हड्डियां कमजोर हों उनको विशेष तौर पर अधिक फल, सब्जियां, सब्जियों के प्रोटीन और दूध का सेवन करना चाहिए और मांस एकदम छोड़ देना चाहिए।

—साइंस न्यूज—(दिल्ली विज्ञान शैक्षिक संघ से उद्धृत)
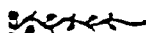
# महापुरुषों की अमृत वाणी

१. जीवों को बचाने में धर्म है, मारने में पाप है।

—गौतम बुद्ध

२. मनुष्य प्रकृति से शाकाहारी प्राणी है। यदि मनुष्य का धर्म मांस खाना होता तो उसके दांत व नाखून मांस खाने वाले शेर आदि जानवरों की तरह नुकीले और तीक्ष्ण होते और वह उनकी तरह पानी जीभ से चप चप कर पीता।

—सभी वैज्ञानिकों एवं धर्माचार्यों का सर्वसम्मत फैसला

३. मांस का प्रचार करने वाले सब राक्षस हैं। मांस खाने वाले और शराब पीने वालों के हाथ का भी खाने-पीने में महान् दोष है।

—स्वामी दयानंद

४. जैसा खाए अन्न, वैसा होवे मन। शाकाहार से चित्तवृत्तियां सात्विक बनती हैं, जबकि मांसाहार से पाशविक एवं क्रूर बनती हैं।

—संसार के सभी महापुरुषों की सर्वसम्मत राय

५. गौ आदि पशुओं के विनाश से राजा और प्रजा दोनों का विनाश होता है।

—दयानंद सरस्वती

६. मांसाहारियों के पेट चलते-फिरते कब्रस्तान हैं।

—जॉर्ज बर्नार्ड शा

७. देश के कर्णधारो! देश में सुख समृद्धि लाने के लिए जीव-हिंसा बंद करो। —जैनाचार्य

# प्राकृत-गाथा

जहा किंपाग-फलाणं, परिणामो न सुन्दरो ।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुन्दरो । उ. सू. ।

अर्थ—जैसे किंपाक फलों का परिणाम अच्छा नहीं होता, उसी प्रकार भोगे हुए भोगों का परिणाम भी अच्छा नहीं होता ।

खणमेत्त सोक्खा बहुकाल दुक्खा,
पगामदुक्खा अणिकाम सोक्खा ।
संसार मोक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा । उ. सू. ।

अर्थ—काम-भोग क्षणभर सुख और चिरकाल तक दुःख देने वाले हैं। अल्प सुख और दुःख बहुत देने वाले हैं। ये संसार से मुक्त आत्मा के विपक्षी हैं तथा अनर्थों की खान हैं ।

सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा ।
कामे पत्थेमाणाय अकामा जन्ति दोग्गइं । उ. सू. ।

अर्थ—काम-भोग शल्य है, विष है और सर्प के सम है । काम-भोग की चाह करने वाले उनका सेवन न करते हुए भी दुर्गति को प्राप्त होते हैं ।

# संस्कृत-श्लोक

लालयेत् पंचवर्षाणि, दशवर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्तेषु षोडशे वर्षे, पुत्रं मित्रवदाचरेत् ।

अर्थ—पांच वर्ष तक पुत्र का लालन-पालन करे दस वर्ष तक ताड़ना करे । (डरा धमका कर शिक्षित करे) और सोलह वर्ष का होने पर पुत्र के साथ मित्र जैसा व्यवहार करे ।

माता शत्रुः पिता: वैरि, याभ्यां बालो न पाठितः ।
न शोभते सभा मध्ये, हंस–मध्ये वको यथा ।

अर्थ—जो बालक को शिक्षण नहीं देते हैं, वे माता-पिता उस बालक के शत्रु और वैरी हैं । ऐसा मूर्ख लड़का हंसों के बीच में बुगले की तरह अशोभित होता है ।

वरमेको गुणीपुत्रो, न च मूर्ख–शतान्यपि ।
एकश्चन्द्र स्तमो हन्ति, न च तारागणोऽपि च ।

अर्थ—सौ मूर्ख पुत्रों से एक गुणी पुत्र श्रेष्ठ है । जैसे अनेक तारों का समुदाय अंधकार को नहीं मिटा पाता है और केवल एक चन्द्रमा ही अंधकार को नष्ट कर देता है ।

# धर्म और नीति के दोहे

रण सहस्र योद्धा लड़े, जीते युद्ध हजार ।
पर जो जीते स्वयं को, वही शूर सरदार ।
वैर-वैर से ना मिटे, बढ़े द्वेष दुष्कर्म ।
वैर मिटे मैत्री किये, यही सनातन धर्म ।
सतत प्रवाहित हो रही, तन की मन की धार ।
यहां न स्थिर कुछ दीखता, यह नश्वर संसार ।
धर्म देशना सहज है, बड़ा सरल व्यापार ।
पर चलना तो कठिन है, ज्यों खांडे की धार ।
राग-द्वेष अरु मोह की, जब तक मन में खान ।
तब तक सुख का शांति का, जरा न नाम निशान ।
मान रहा जो सत्य को, आस्तिक वही सुजान ।
न माने जो सत्य को, नास्तिक वही अजान ।
नन्ही सी तृष्णा जगी, बनी गहन आसक्ति ।
जब तक मन आसक्त है, कहां दुखों से मुक्ति ।
जो चाहे सुख ना घटे, होय दुखों का नाश ।
दासी बन तृष्णा रहे, बन मन तृष्णा-दास ।
सुन रे भोला मानवी, कहूं धर्म रो सार ।
आस पराई छोड़ दे, अपणो चित्त सुधार ।

# आत्म-जागरण

उठ जाग मुसाफिर भोर भई,
भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु ।
अब नींद अविद्या त्याग सही,
भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु । १ ।
जग जाग उठा तू सोता है,
अनमोल समय यह खोता है ।
तू काहे प्रमादी होता है,
भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु । २ ।
यह समय नहीं है सोने का,
है वक्त पाप मल धोने का ।
अरु सावधान चित्त होने का,
भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु । ३ ।
तू कौन ? कहाँ से आया है,
अब गमन कहां मन भाया है ।
टुक सोच यह अवसर आया है,
भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु । ४ ।
रे चेतन ! चतुर हिसाब लगा,
क्या खाया खरचा लाभ हुआ ?
निज ज्ञान जगा तू संभाल हिया,
भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु । ५ ।
गति चार चौरासी लाख रुला,
यह कठिन-कठिन शिवराह मिला ।
अब भूल कुमार्ग विषे मत जा,
भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु । ६ ।

# प्रार्थना

श्रेयांश जिनन्द सुमर रे।
चेतन आण कल्याण करन को आन मिल्यो अवसर रे।
शास्त्र प्रमाण पिछान प्रभु गुण, मन चंचल थिर कर रे।
सास उसास विलास भजन को, दृढ़ विश्वास पकर रे।
अजपाभ्यास प्रकाश हिये विच, सो सुमरन जिनवर रे।
कंद्रप, क्रोध, लोभ, मद, माया, ये सब ही परहर रे।
सम्यक् दृष्टि सहज सुख प्रकटे, ज्ञान दशा अनुसर रे।
झूठ प्रपंच जोवन तन, धन, अरु, सजन, सनेही घर रे।
छिन में छोड़ चले पर भव को, बांध शुभाशुभ थर रे।
मानस जनम पदारथ जाकी, आसा करत अमर रे।
ते पूरब सुकृत कर पायो, धरम-मरम दिल धर रे।
विश्वसेन विश्वारानी को, नंदन तू न विसर रे।
सहज मिटे अज्ञान अविद्या, मुक्ति पंथ पग भर रे।
तू अविकार विचार, आतम गुण, भव जंजाल न पर रे।
पुद्गल चाह मिटाय 'विनयचन्द' ते जिन तू न अवर रे।